



# आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कबीर की प्रासंगिकता: एक अनुशीलन

ADHUNIK PARIPREKSHYA MEIN KABIR KI PRASANGIKTA :  
EK ANUSHEELAN

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-सार

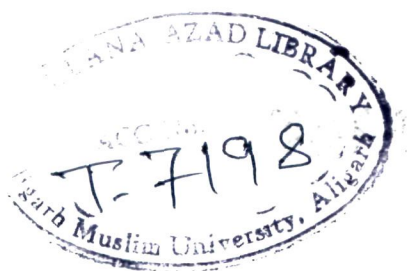
निर्देशक

डॉ अब्दुल अलीम  
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग  
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय  
अलीगढ़

शोधकर्ता

अफसर अली  
एम०एम० (हिन्दी)

हिन्दी विभाग  
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय  
अलीगढ़  
2008



03 MAR 2011

शोध-सार

---

शोध-सार

### शोध-सार

इस संसार में मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिये जिन-जिन महापुरुषों ने इस धराधाम पर जन्म लेकर संघर्ष किया और अपने लक्ष्य में सफल हुए उनकी प्रासंगिकता प्रत्येक युग में बनी रहती है और तब तक बनी रहेगी जब तक मानव जाति का अस्तित्व बना रहेगा। पैगम्बर मुहम्मद साहब, भगवान गौतम बुद्ध, प्रभु ईसा मसीह, गुरु नानकदेव आदि अनेक ऐसे महात्मा हुए हैं जिनके विचारों की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। उन्हीं की श्रेणी में भक्त कवि संत कबीर का नाम भी लिया जा सकता है। आधुनिक युग में ऐसे ही महापुरुषों में महात्मा गाँधी और मदर टेरेसा का नाम भी जुड़ गया है। ऐसे महापुरुषों का आविर्भाव कभी कभार होता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन “आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कबीर की प्रासंगिकता: एक अनुशीलन” आधुनिक जीवन संदर्भों में कबीर और उनका काव्य एक नये युग को सूत्रपात करने की असमी प्रेरणा प्रदान करता है-

शोध अध्ययन की सुगमता और शोध प्रबंध की व्यवस्था के लिए प्रस्तुत अध्ययन को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय “कबीर और उनका रचना संसार: परिचयात्मक विमर्श” से मंडित है। इस अध्याय में कबीर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विचार किया गया है। वैसे तो कबीर का संपूर्ण जीवन और उनकी रचनाओं के बारे में विद्वानों में विवाद रहा है, कोई ठोस प्रमाण देखने को नहीं मिलते, जो भी तथ्य या प्रमाण मिले वे या तो जनश्रुति मात्र हैं या यत्र-तत्र कबीर कालीन संतों की बानियों में मिलते हैं। अतः



कबीर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को प्राप्त जनश्रुतियों एवं तथ्यों को आधार बनाकर ही हमने विचार किया है।

कबीर के जीवन चरित के अन्तर्गत हमने उनके जन्म-मृत्यु, स्थान, जाति, माता-पिता, पत्नी, पुत्र-पुत्रियाँ, गुरु, शिष्य आदि का अध्ययन कर विचार किया है। कबीर के बाह्य व्यक्तित्व के साथ-साथ उनके आंतरिक व्यक्तित्व को भी उद्घाटित किया गया है। वस्तुतः कबीर का व्यक्तित्व बाह्य एवं आंतरिक दृष्टि से सामंजस्य लिये है। वे बाहर से जितने सरल, सहज एवं कोमल हैं उतने ही अंदर से कठोर और क्रांतिदर्शी भी हैं।

कबीर की रचनाओं के संदर्भ में 'मसि कागद छुओ नहिं, कलम गही नहिं हाथ' के आधार पर कबीर ने जीवन पर्यंत कुछ भी नहीं लिखा, जो कुछ उन्होंने कहा उसे स्वयं द्वारा अनुभूत व ज्ञान चक्षुओं से देखने-परखने के बाद। उन बातों को उनके शिष्यों एवं अनुयायियों ने लिपिबद्ध कर लिया हो या स्मृति में उतार लिया हो ऐसा विद्वानों का मानना है। अतः उन्हीं प्रमाणों के आधार पर कबीर के रचना-संसार पर विमर्श किया गया है।

**द्वितीय अध्याय** "साहित्य की प्रासंगिकता और उसके आयाम" है। वैसे तो साहित्य की प्रासंगिकता के आयामों का फलक बहुत ही विस्तृत एवं व्यापक है लेकिन प्रस्तुत अध्ययन में हमने कबीर के साहित्य की प्रासंगिकता को सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिपार्श्व में समाविष्ट करने का प्रयास किया है।

वास्तव में अब आलोचना के संसार में साहित्य को प्रासंगिकता के निकष पर जाँचने-परखने की पद्धति अपनाई जाने लगी है। अतः साहित्य से अर्थवत्ता,

उपादेयता की मांग की जा रही है।

साहित्य की प्रासंगिकता के संदर्भ में साहित्यकार को अपने रचनात्मक कर्म के प्रति सचेष्ट रहना पड़ता है, उसे समाज को नवीन दिशा देनी होती है, समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं समस्याओं से जूझकर नवीन जीवन मूल्यों को प्रतिष्ठित करना होता है। इस दृष्टि से कबीर और उनका साहित्य सर्वथा सक्षम एवं सहायक सिद्ध होता है।

कबीर कालीन समाज में चारों ओर अंधकार और मिथ्याचारों का बोलवाला था। समाज वर्ण-भेद के आधार पर खानों में बैठकर रह गया था। ऐसे में एक युग-पुरुष की नितांतावश्यकता थी जो समाज का कर्णधार बनकर समाज को ऊर्ध्वगामी बना सके, अंधकार के पंक में डूबी हुई भोली-भाली जनता का पथ आलोकित कर सके। कबीर ने जीवन भर हर संभव प्रयास किया, उन्होंने समाज को पतन के गर्त से बचाया। कबीर ने समाज को सुधारने से पूर्व अपने आप को परिष्कृत किया अर्थात् वे अपने आचरण द्वारा ही समाज को सद्पथ पर लाना चाहते थे। इसीलिये वे जब-जब दूसरों को बुरा देखने निकलते हैं तब-तब वे स्वयं को ही बुरा पाते हैं-

*बुरा-बुरा सब को कहै, बुरा न दीसा कोई।*

*जो दिल खोजा आपणां, मुझसा बुरा न कोई।।*

कबीर का कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने को शोधित करने लगे और दूसरे लोगों की बुराइयों को न देखकर उस बुराई को अपने भीतर से निकालने की चेष्टा करे तो निश्चय ही समाज स्वमेव परिष्कृत हो जायेगा।

कबीर के विषय में धारणा है कि उनका राजनीति से कोई संबंध नहीं था यह तो ठीक है परंतु उनके काव्य में राजनैतिक विषयों का कहीं कोई उल्लेख नहीं है ऐसा नहीं है। कबीर के समय और समाज में कब और किस समय जो परिघटित हो रहा था उस ओर से कबीर जैसे कुशाग्र विवेकमयी एवं करुणामय हृदय वाले व्यक्ति की आँखें भला बंद हो सकती थी अर्थात् नहीं। कबीर को इसकी बड़ी चिंता थी कि सामान्य जनता के प्रति राजा, राणा, छत्रपति, सुलतान, वजीर का जो आचरण था उससे जनता संतुष्ट नहीं थी। सत्य तो यह था कि कबीर कालीन राजनीति क्रूर और स्वार्थलोलुप थी। शासकों को देश के टुकड़े हो जाने की तनिक भी चिंता नहीं थी, उनको जो चिंता थी केवल और केवल प्रभुत्व एवं धन-वैभव पाने की। उनकी ऐश्वर्यमयी लोलुपता में मंगल-भावना या नैतिकता के लिये स्थान नहीं था। कबीर ने ऐसे शासन और शासकों के प्रति क्रांति का विगुल फूँका। उन्होंने समाज को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिये, पीड़ित-व्यथित, शोषित लोगों को शांति दिलाने के लिये, मिथ्याचारों, अंधविश्वासों, पापाचारों से तिलांजलि दिलाने के लिये, मानवता को सुखी, समृद्ध और प्रगतिगामी बनाने के लिये ऐसे शासक की कल्पना की जो सूर वीर हो, धर्म की रक्षा के लिये अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दे और रणभूमि से पीठ छिपाकर न भागे बल्कि मैदान में पराक्रम वीर की भाँति डटा रहे-

सूरा तबही परषिये, लड़ै धणीं के हेत।

पुरिजा पुरिजा हवै पड़ै, तऊ न छाड़ै खेत।।

कबीर ने मात्र सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों एवं विडम्बनाओं को जड़ से उखाड़ने का ही प्रयास नहीं किया अपितु उन्होंने धार्मिक एवं आर्थिक

समस्याओं एवं विसंगतियों का खुलकर विरोध किया और उनके निवारण हेतु अपने उद्गार भी प्रगट किये। उन्होंने जीवन पर्यंत धर्म के ठेकेदारों और धनिक, कुबरो का डटकर विरोध किया और आम जनता को ऐसे मुखौटाधारियों से सचेत किया जो बाहर से कुछ और तथा अन्दर से कुछ और हैं। कबीर ने लोगों को मानवीय धर्म की शिक्षा दी और आत्म-संयम तथा आत्मतोष का संदेश दिया।

### तृतीय अध्याय “समसामयिक संदर्भ में कबीर के काव्य की प्रासंगिकता”

है। समसामयिक काव्य का सिंहावलोकन करते समय कवि की मानसिकता का पहला गुण गैर रूमनियत के रूप में उपस्थित होता है। आज का कोई भी कवि रोमांस को पसंद नहीं करता, उसे रूमनियत, भावुकता जो कपोल कल्पित हो से चिढ़ होती है। समसामयिक कवि तो अपने समकालीन यथार्थ का सीधे-सीधे साक्षात्कार कराता है। उसके काव्य में भावुकता की अपेक्षा विचार पक्ष प्रधान रहता है। जो व्यक्तियों और स्थितियों के भीतर की विसंगतियों एवं विडम्बनाओं का उद्घाटन करता है। उसमें स्थितियों के भीतर की तहों को सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक प्रक्रियाओं की निचली तहों सहित बिना भावविह्वल या उत्तेजित हुए पकड़ा जा सकता है। इस तरह वर्तमान से असंतुष्ट समसामयिक कवि रूमानी कवियों की भाँति न तो अतीत की ओर झाँकता है और न भावी रंगीन स्वप्नों को गढ़ता। वह वर्तमान में रहकर वर्तमान के यथार्थ का सामना करता है। इसीलिए उसकी मानसिकता का अभिन्न अंग बनती हैं- विरोध, विद्रोह, क्रांतिकारिता, घृणा, ऊब, विवशता, समाज को बदलने की अतीव आकांक्षा आदि। कबीर को इन सब से उबरने की खोज में देखा जा सकता है। कबीर का काव्य शास्वत एवं चिरंतन है जो वायवी कल्पनाओं का नीड़ नहीं बनाता अपितु

अपने जीवन यथार्थ को साक्षात् प्रस्तुत करता है।

#### चतुर्थ अध्याय “वर्तमान संदर्भ में कबीर के काव्य की प्रासंगिकता”

है। किसी काव्य की प्रासंगिकता का अर्थ उसका वर्तमान के संदर्भ में उपादेय सिद्ध होना भी है। इसलिये कबीर के काव्य की प्रासंगिकता से अभिप्राय उसका आज के समाज के लिये समीचीनता एवं उपादेयता से है। जिस प्रकार यह निश्चित है कि कविता में कवि का संपूर्ण व्यक्तित्व और युग प्रतिफलित एवं प्रतिबिंबित होता है ठीक उसी प्रकार यह भी है कि किसी भी काल विशेष के काव्य में उसकी अपनी गुणवत्ताएँ होती हैं। समयुगीन चेतनाओं से प्रतिबिंबित काव्य अपने समय का बोलता हुआ इतिहास होता है किंतु उसके साथ-साथ एक विशिष्ट प्रतिभाशाली कवि युगचित्रकार के साथ ही युगांतकारी भी हुआ करता है। वह अपने समय में भी रहता है और अपने समय के आगे भी। कबीर के आविर्भाव के सैकड़ों वर्षों से अधिक समय के बाद भी ऐसा लगता है कि उनकी उपादेयता आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। जाति भेद, वर्ण-भेद, धार्मिक कट्टरता, अहंकार, मोहलिप्सा, अन्तः से अधिक बाह्य चमक-दमक इत्यादि अनेक ऐसी ही विसंगतियाँ एवं उलझने समाज में ज्यों की त्यों पूर्ववत् व्याप्त हैं। इन्हीं समस्त विसंगतियों एवं समस्याओं को केन्द्र में रखकर कबीर और उनके काव्य का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय “भावी जीवन के निर्माण में कबीर के काव्य की प्रासंगिकता” है। काव्य या साहित्य भावी जीवन के लिये तभी निर्माणकारी सहायक सिद्ध होता है, जब वह समाज का पोषक हो, विशृंखलित एवं असंगठित समाज को एकसूत्रता के धागे में पिरोये, पतनोन्मुखी समाज को प्रगति पथ पर लाने का प्रयास

करे, परंपराओं, प्रथाओं एवं रूढ़िओं से प्रतिशोध लेकर, समाज को परिष्कृत, परिमार्जित कर अलोकित करे। ऐसा वही कवि या साहित्यकार कर सकता है जो युगांतकारी हो। कबीर युगांतकारी कवि हैं क्योंकि उनका काव्य किसी निश्चित संकुचित एवं सीमित घेरे में कैद नहीं है बल्कि उसका फलक तो विस्तृत एवं व्यापक है। उनका काव्य किसी एक भाषा का न होकर विश्व-काव्य है, उसमें विश्वदर्शन की झलक है। जब वे बोलते हैं तो अपने बारे में लेकिन वह हो जाता है विश्व समाज का। कबीर का काव्य इस माइने में निश्चित ही युगांतकारी है जो भावी जीवन के निर्माण में अपनी दायमी भूमिका का अन्ततः निर्वहन करता चलता है। इस तरह कहा जा सकता है कि कबीर अपने समय में भी प्रासंगिक थे आज भी हैं और भविष्य में भी रहेंगे।

शोध प्रबंध के अंत में हमने उपसंहार को लिया है। इसमें कबीर के काव्य एवं समाज के संदर्भ में उपादेयता, समसामयिक, वर्तमान एवं भावी जीवन के निर्माण में उनकी वाणियों की महत्ता से संबंधित तत्वों पर विचार किया गया है। कबीर का काव्य एक ऐसा आलोक पुंज है जो सांप्रदायिकता, भेदभाव, बाह्याडम्बरों, अनाचारों, लोभ, मोह, तृष्णा के स्थान पर निस्पृहता, मानवीयता एवं विश्वबंधुत्व की दिशाओं को आलोकित करता है।

X ————— X ————— X

अफसर अली



# आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कबीर की प्रासंगिकता: एक अनुशीलन

ADHUNIK PARIPREKSHYA MEIN KABIR KI PRASANGIKTA :  
EK ANUSHEELAN

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

## शोध प्रबन्ध

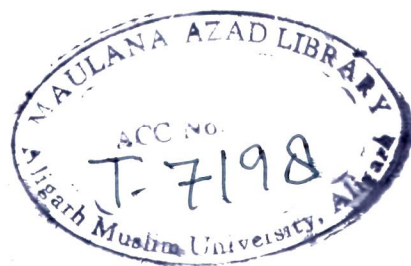
निर्देशक

डॉ अब्दुल अलीम  
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग  
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय  
अलीगढ़

शोधकर्ता

अफसर अली  
एम०एम० (हिन्दी)

हिन्दी विभाग  
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय  
अलीगढ़  
2008



03 MAR 2011





CHAIRMAN

DEPARTMENT OF HINDI  
FACULTY OF ARTS  
ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY, ALIGARH-202 002

Telex : 564-230 AMU IN  
Phones : Off. 2700920 } Ext.  
2700921 } 1460  
2700922 } 1461  
Res. (0571) 2740041

**CERTIFICATE**

This is to certify that **Mr. Afsar Ali** D.O.A. 01/11/2004, Admission No. 400307. Enrolment No. CC-6045 has been a regular Research Scholar in the department for a period of two years from the date of his admission.

The Ph.D. thesis of the candidate entitled "**Adhunik Paripreksya Mein Kabir Ki Prasangikta Ek Anusheelan**" has been completed under the supervision of Prof. Abdul Alim and submitted for evaluation in the department of Hindi on 20.02.2008.

(Prof. P.K. Saxena)

**DEPARTMENT OF HINDI  
ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY  
ALIGARH (U.P.) INDIA**

---

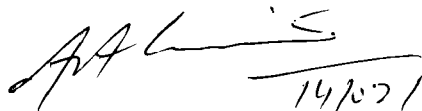
**Dr. Abdul Alim**  
*Professor*

Res.Ph.: 0571-2720267  
Mob. : 09410693469  
Fax : 0571-2402518  
E-mail : abdulalim\_dr@rediffmail.com

---

**CERTIFICATE**

*This is to certify that this thesis entitled "Adhunik Pariprekshya Mein Kabir Ki Prasangikta Ek Anusheelan" submitted for the award of Doctor of Philosophy in Hindi, is a bonafide record of research work carried out by Mr. Afsar Ali under my supervision this is the original work of the candidate and suitable for submission for the award of Ph.D. Degree.*

  
(Prof. Abdul Alim)  
Supervisor

14/07/08

**आत्मनिवेदन**

I-III

**प्रथम अध्यायः**

1-55

**कबीर और उनका रचना संसारः परिचयात्मक विमर्श**

(जीवन चरितः जन्म-मृत्यु, जन्म स्थान, जाति, माता-पिता, पत्नी, पुत्र-पुत्रियाँ, नाम, गुरु, शिष्य। व्यक्तित्वः बाह्य व्याक्तित्व, आन्तरिक व्यक्तित्व-विनयशीलता, अक्खड़पन, अखंडविश्वासी, निर्भीक एवं स्पष्ट वक्ता, सूक्ष्मदर्शिता एवं सत्यान्वेषक, मानवीयता, आत्मपरितोष, समाजसुधारक, सत्संगप्रियता, प्रेम-पुजारी। यात्राएँ। रचना-संसारः प्रथम दृष्टि, द्वितीय दृष्टि। भाषाःशैली।)

**द्वितीय अध्यायः**

56-81

**साहित्य की प्रासंगिकता और उसके आयाम**

(साहित्य की प्रासंगिकता का अर्थ, अवधारणा एवं वैभिन्न मत, साहित्य की प्रासंगिकता के आयामः कबीर के संदर्भ में - सामाजिक प्रासंगिकता, राजनीतिक प्रासंगिकता, धार्मिक प्रासंगिकता, आर्थिक प्रासंगिकता।)

**तृतीय अध्यायः**

82-124

**समसामयिक संदर्भ में कबीर के काव्य की प्रासंगिकता**

(सांप्रदायिक सद्भावना, मानवीयता, पंथ-निरपेक्षता, बाह्याडम्बरों का विरोध, वर्ण-व्यवस्था पर प्रहार, प्रेम का संदेश, आचरण की शुद्धता, सत्संग पर बल, गुरु-शिष्य संबंध, दीन-हीन मानव के हितैषी, गुरु की महिमा, नर-नारी के प्रति दृष्टिकोण, माया से सावधान।)

### **चतुर्थ अध्यायः**

125-179

#### **वर्तमान संदर्भ में कबीर के काव्य की प्रासंगिकता**

(वर्ण-व्यवस्था, मूर्तिपूजा का विरोध, वेश-भूषा, छापा-तिलक का विरोध, कथनी की अपेक्षा करनी पर बल, हिन्दू-मुस्लिमः साम्य भावना, बहुदेवोपासना का विरोध, तीर्थ-यात्रा का विरोध, अवतारवाद का विरोध, वेद शास्त्र, पुराणों की उपेक्षा, समाज सुधार की भावना, नारी के प्रति दृष्टि, विद्यार्थी समाज, सांप्रदायिक एकता, दरिद्र नारायण सेवा।)

### **पंचम अध्यायः**

180-221

#### **भावी जीवन के निर्माण में कबीर के काव्य की प्रासंगिकता**

(सामाजिक पुनःजागरण, युग एवं मानव व्यक्तित्व का निर्मायक, राष्ट्रीय एकीकरण में योग, रुढ़ि एवं परंपराओं से संघर्ष और नवीन मूल्यों की स्थापना, सामाजिक परिवर्तन का वाहक, मानव जीवन का उन्नयन, युगद्रष्टा एवं युगस्रष्टा, सृजनशील चिंतक, समाज सुधारक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण, युगांतकारी कवि, एवं साहित्यकार, शिक्षक एवं पथ-प्रदर्शक, क्रांतिद्रष्टा, समाज का सजग प्रहरी।)

### **उपसंहारः**

222-229

### **संदर्भ ग्रंथ सूची-**

230-237

हिन्दी ग्रन्थ-

अंग्रेजी ग्रन्थ-

शब्दकोश

पत्र-पत्रिकाएँ-

## In the Name of Allah Moast benificent Most Merciful.

(आत्म निवेदन)

अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत करते समय शोधयात्रा की अनेक अविस्मरणीय अनुभूतियाँ मेरे स्मृति पटल पर आ रही हैं, इन अनुभूतियों में निहित रागात्मक चेतना का परिणाम ही यह शोध प्रबंध है।

सर्वप्रथम मैं अपने गुरुवर नज़ीर अकबराबादी के गहन अध्येता प्रोफ़ेसर अब्दुल अलीम के प्रति श्रद्धा से नतमस्तक हूँ, जिनके कुशल निर्देशन और सहज स्नेह का परिणाम ही यह शोध कार्य है। मेरी शोध के प्रति रुचि जगाने की प्रेरणा देने वाले श्रद्धेय गुरुवर ही हैं अतः शोध का सम्पूर्ण श्रेय उन्हीं को दिया जाये फिर भी मैं उनका आभार प्रकट नहीं कर सकता। इसलिए मूक रहना पड़ता है क्योंकि मेरे पास आभार प्रकट करने के लिए शब्दों का अभाव महसूस होता है।

मेरी शोधयात्रा को निरंतर गतिमान बनाने और जीवनदशा की प्रेरणा देने वाली आदरणीय, ममतामयी, गुरुमाता प्रोफ़ेसर फ़रज़ाना अलीम के प्रति आभार प्रकट करना मात्र औपचारिकता ही होगी। अतः शब्दों के अभाव में भावनात्मक समर्पण के साथ मौन रह जाना चाहता हूँ।

अपने हिन्दी विभाग के विभागाध्यक्ष सुप्रसिद्ध आलोचक प्रोफ़ेसर पी०के० सक्सेना का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने शोध यात्रा के समय प्रोत्साहन एवं सहयोग दिया। हिन्दी विभाग के ही प्रोफ़ेसर रमेश शर्मा के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने समय-समय पर मेरी शोध से संबंधित समस्याओं को सुलझाने में सहयोग दिया।

गुरु जी अजय बिसारिया जी के प्रति भी हृदय से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अपना सहयोग देकर मुझे शोध के प्रति सचेष्ट किया। प्रो० एम०ई०जुबेरी, डॉ० भरत सिंह, डॉ० आर०एन०शुक्ल, डॉ० आशुतोष कुमार, डॉ० मेराज अहमद, डॉ० वेद प्रकाश (रीडर) हिन्दी विभाग के प्रति भी मैं अपना आभार प्रदर्शन कर उनके महत्व को कम नहीं करना चाहता। इन सब का सहयोग भी मुझे प्राप्त हुआ है।

डॉ० नादिर अली खान साहब (सेवानिवृत्त उर्दू विभाग) तथा प्रोफ़ेसर सलमान बेग साहब (सेवानिवृत्त इंजीनियरिंग कालेज) की दुआएँ मेरी शोध यात्रा में अपना विशिष्ट महत्व रखती हैं। अतः इनके प्रति आभार प्रकट करना औपचारिकता ही होगी। आपके वचनों की छाया सदैव मेरे ऊपर आच्छादित रहेगी।

अपने प्रिय अग्रज एवं मित्र अख्तर अली एवं बशर हुसैन, को विस्मृत नहीं कर सकता जिनका भ्रातृत्व एवं स्नेह शोध कार्य को सम्पन्न कराने में अपनी भूमिका निभाता है। साथ ही अपने अन्य मित्रों एवं हितैषियों औसाफ खान, इमरान परवेज़ अनीस अहमद, शमशाद हुसैन, तरुण बंसल, नियामत अली खान, मलिक असमत अली, शाहिद अहमद, नासिर कमाल, नूरैन खान, नौशाद अली राना, अमीनुज्जामा, शहबाज अली खान का साहचर्य भी मेरी शोध यात्रा में अपना महत्व रखता है।

पूज्य मात-पिता श्रीमती सुबरातन बेगम, श्री बुन्दू खान के असीम स्नेह और शोध को निरंतर गतिमान बनाने की प्रेरणा मुझे प्रोत्साहित करती रही है उनके असीम स्नेह और आशीर्वाद के लिए मैं नतमस्तक हूँ।

इन समस्त भावनात्मक संबंधों के साथ उन मनीषी, विद्वानों का भी मैं

हृदय से कृतज्ञ हूँ जिनकी कृतियाँ मेरी शोध साधना में सहायक रही हैं।

अंत में मौलाना आज़ाद लाइब्रेरी के राकिम भाई, नदीम भाई के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर ग्रन्थों को निकाल कर सहयोग दिया। भाई रामजीलाल, श्री जानेआलम, श्रीमती परवेज फातिमा, अहमद भाई, शकील भाई, अब्दुल बहाव भाई की शुभकामनाओं के लिए साधुवाद। भाई देवेन्द्र, कैलाश कुमार, के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ। जिन्होंने मेरे शोध कार्य को समयानुसार कम्प्यूटरीकृत करके अपना सहयोग दिया।

यद्यपि मेरे लेखन अथवा टंकण सुधारने कोई त्रुटि रह गयी हो तो आशा है विद्वज्जन मुझे क्षमा करेंगे।

विनीत

अफ़सर अली

(अफ़सर अली)

## प्रथम अध्यायः

कबीर और उनका रचना संसारः परिचयात्मक  
विमर्श



## कबीर और उनका रचना संसार: परिचयात्मक विमर्श

### जीवन चरित

भारतीय वाङ्मय की एक अजीबो-गरीब विडम्बना रही है कि इसके कवियों ने अपने विषय में कुछ भी सुसंगत एवं क्रमबद्ध ढंग से नहीं लिखा है या कम से कम बताया ही है। उनकी रचनाओं में थोड़े-बहुत संकेत मिलते भी हैं तो उनसे उनके समूचे जीवनवृत्त को निर्धारित नहीं किया जा सकता। कबीर के बारे में तो अधिकांशतः विद्वानों की यही धारणा रही है कि वे शिक्षित नहीं थे, तो फिर भला वे अपने जीवन-चरित को कैसे उद्घाटित करते? उन्होंने अपने हाथों से कलम, दवात-स्याही और कागज़ को स्पर्श ही न किया बल्कि उन्होंने अपने मुख से जो कुछ कहा उसे अनुभव की खुली आँखों से देखकर निर्भीकतापूर्वक व्यक्त कर दिया-

*मसि कागद छुयो नहिं, कलम गही नहिं हात।<sup>1</sup>*

*चारिउ जुग को महातम, मुखाहिं जनाई बात।।*

और इसी प्रकार कबीर ने एक स्थान पर कहा है-

*मैं कहता हों आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।<sup>2</sup>*

कबीर मूलतः भक्त थे। उन्होंने कहीं भी स्वयं को कवि घोषित नहीं किया है। कबीर के सत्गुरु (ईश्वर) ने उन्हें साषी (साखी) कहने के लिये इसलिये प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया, जिससे वे धर्माधिता के पंक में पगी हुई भोली-भाली जनता का पथ-प्रदर्शन कर उन्हें सन्मार्ग की ओर उन्मुख करके भवसागर से मुक्ति दिला

सकें। कबीर ने इस संबंध में कहा है-

हरि जी यहै बिचारिया, साषी कहौ कबीर।

भौसागर में जीव हैं, जे कोई पकड़ै तीर।।<sup>3</sup>

इससे तात्पर्य निकलता है कि कबीर को ईश्वर के यहाँ से अवतार प्राप्त हुआ जिसका निर्वहन उन्होंने स्वयं को परिशोधित करके किया है-

तुम्ह जिनि जानों गीत है, यहु निज ब्रह्म विचार।

केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार रे।।<sup>4</sup>

जब संसार में चारों ओर अंधकार सा छा जाता है और पापाचार, अनाचार, भ्रष्टाचार आम हो जाते हैं, आतताइयों, आतंकियों, पापियों से लोग पीड़ित, व्यथित एवं पद-पद पर शोषित होते-रहते हैं उस समय एक महान युगपुरुष की आवश्यकता होती है जो धर्म की रक्षा करके लोगों को दुष्चक्रों के मकड़जाल से मुक्त करा सकें। गीता में इसका उल्लेख है-

परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।

गोस्वामी तुलसीदास जी इस बात की पुष्टि में अपने उद्गार प्रकट करते

जब जब होइ धरम के हानी।

बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।

तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।

हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

उसी प्रकार कबीर भी अवतारी महापुरुष थे। उन्होंने धर्म की रक्षा के लिये अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। वे शूर-वीर थे और उसी को शूर कहते थे जो धर्णी (ईश्वर, धर्म) के लिये अपने शरीर के अंग-भंगों को कटा दे किंतु रणभूमि से पीठ बचाकर कायर की भाँति न भागे-

सूरा तबही परषिये, लड़ै, धर्णी के हेत।

पुरिजा पुरिजा ह्वै पड़ै, तऊ न छांडै खेत।<sup>5</sup>

कबीर के जीवन और रचना-संसार पर गम्भीरता से विचार किया जाय तो उनका स्वरूप हिन्दी साहित्य के मध्यकाल की प्रथम शाखा में संत के रूप में देखने को मिलता है। अनेक मनीषी, विद्वानों ने उनके जीवनवृत्त एवं व्यक्तित्व तथा कृतित्व के संबंध में बाह्य तथा अन्तः साक्ष्यों के आधार पर जो सूचनायें देने का प्रयास किया है उन्हीं के आधार पर हम कबीर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को स्वरूपायित करने का प्रयास करेंगे।

### जन्म-मृत्यु

कबीर के जन्म-मरण को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कबीर के जन्म-मृत्यु के बारे में लोगों ने जो तर्क-दिये हैं। वे या तो जनश्रुति मात्र है या फिर अनुमान भरा। अतः निश्चित कर पान कठिन है। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने विभिन्न ग्रंथों को आधार मानकर कबीर के जन्म-मृत्यु को निर्धारित करने का प्रयास किया है।<sup>6</sup>

क्रम	पुस्तक का नाम सं०	विक्रम संवत् जन्म मरण	ईसवी सन् जन्म मरण	आयु वर्षों में
1.	कबीर कसौटी	1455 1575	1398 1518	120 वर्ष
2.	भक्ति सुधा बिन्दु संवाद	1451 1552	1394 1495	101 वर्ष
3.	कबीर एण्ड दी कबीर पंथ	1497 1575	1440 1518	78 वर्ष
4.	संप्रदाय	1205 1505	1149 1448	300 वर्ष

कबीर के जन्म के विषय में जो उक्तियाँ मिलती हैं वे हैं-

1. संवत् बारह सौ पाँच में ज्ञानी कियौ विचार।  
कासी में परगट भयौ शब्द कहौं टकसार॥
2. चौदह सौ पचपन साल गए चन्द्रावर एक ठाठ ठए।  
जेठ सुदी बरसाइत को पूरनमासी प्रगट भए॥'

कबीर पंथियों में कबीर के जन्म के विषय में एक पद्य प्रचलित है-

घन गरजें दामिनि दमके, बरषें झर लाग गए।  
लहर तालाब में कमल खिले, तहँ कबीर भानु प्रगट भए॥

कबीर की मृत्यु के संबंध में जो पंक्तियाँ मिलती हैं वे हैं-

1. पन्द्रह सौ औ पाँच में, मगहर कीन्हों गौन।  
अगहन सुदी एकादसी, मिल्यौ पौन मे पौन॥
2. पन्द्रह सौ उनचास में, मगहर कीन्हों गौन।  
अगहन सुदी एकादशी, मिलौ पौन में पौन॥
3. समन्त पन्द्रा सौ उनहत्तरा रहाई।

सतगुरु चले उठि हंसा ज्हाई॥

4. संवत् पन्द्रह सौ पछहत्तरा कियौ मगहर को गवन।

माघ सुदी एकादशी, रलौ पवन में पवन।<sup>8</sup>

कबीर के जन्म-मरण के संबंध में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मत व्यक्त किये हैं जो बहिःसाक्ष्य के आधार पर हैं-

1. डॉ० बाबू श्यामसुंदरदास कबीर का जन्म 1456 और मृत्यु संवत् 1575 मानते हैं।<sup>9</sup>
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कबीर का जन्म संवत् 1456 मानते हैं।<sup>10</sup>
3. डॉ० पीताम्बरदत्त बड़धवाल जन्म संवत् 1427 तथा मृत्यु संवत् 1505 मानने के पक्ष में हैं।<sup>11</sup>
4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर का जन्म संवत् 1456 मानने के पक्ष में हैं।<sup>12</sup>
5. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी उन विद्वानों से सहमति व्यक्त करते हैं जो कबीर का जन्म संवत् 1455 से पूर्व (विद्यापति का समसामयिक) और मृत्यु विक्रमी संवत् 16वीं शताब्दी के प्रथम चरण में मानते हैं।<sup>13</sup>
6. डॉ० फ्यूहरर ने कबीर का जन्म संवत् 1456 तथा मृत्यु संवत् 1507 में मानी है।<sup>14</sup>
7. डॉ० धर्मवीर ने कबीर की पूरी आयु को निश्चित करके 80 वर्ष ठहरा दिया है "संवत् 1455 को कबीर का ज्ञान प्राप्ति का वर्ष माना जा सकता है इस प्रकार ज्ञान प्राप्ति के समय कबीर की आयु 30 वर्ष की होने पर उनकी कुल

आयु 80 वर्ष ठहरती है। कोई कारण नहीं कि कबीर की आयु 80 वर्ष से अधिक की हो?<sup>15</sup>

### जन्म स्थान

कबीर के जन्म स्थान के विषय में तीन मत हैं-

1. आजमगढ़ जिले में बेलहरा गाँव में उत्पन्न हुए थे।
2. उनकी जन्म भूमि मगहर थी।
3. वे काशी में उत्पन्न हुए थे।

कबीर के जन्म स्थान एवं मृत्यु से संबंधित कतिपय पंक्तियाँ प्रचलित हैं-

1. पहले दरसन मगहर पायौ, पुनि कासी बसे आई।
2. पहले दरसन काशी पायौ, पुनि मगहर बसे आई।
3. जैसा मगहर तैसी कासी, हम एकै करि जानी।
4. जस कासी तस मगहर ऊसर, हिरदे राम सति होई।
5. सकल जनमु सिवपुरी गंवाइया, मरती बार मगहर उठ धाइया।
6. का कासी का मगहर, ऊपर हिरदै राम बस मोरा।
7. तू ब्राह्मण में कासी का जुलाहा, चीन्ह न मोर गियाना।
8. कासी में हम परगट भये हैं, रामानन्द चिताये।
9. तोरे भरोसे मगहर बसियो, मेरे मन की तपन बुझाई।

डॉ० श्यामसुंदरदास ने 'पहले दरसन मगहर पायो पुनि कासी बसे आई', और 'पहले भरोसे मगहर बसियो मेरे मन की तपन बुझाई, "से तो यही ध्वनि निकलती

है कि उनका जन्म मगहर में ही हुआ था और फिर ये काशी में आकर बस गये और अंत में फिर मगहर में जाकर परलोक सिधारे।”<sup>16</sup> डॉ० रामकुमार वर्मा और डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत ने भी इसी मत का समर्थन किया है।

उपर्युक्त विवेचन से यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कबीर चाहे मगहर में उत्पन्न हुए हों या काशी में लेकिन उनका अधिक समय काशी में ही व्यतीत हुआ। सामाजिक अंधविश्वास को तोड़ने के लिये ये अंतकाल में मगहर गये होंगे।

### जाति

कबीर किस जाति के थे? इस पर मतभेद है। हिन्दू उन्हें अपना और मुसलमान अपना बताते हैं। कोई उन्हें ब्राह्मण, कोई जुलाहा, कोई जुगी, जोगी या योगी बताते हैं। कबीर ने स्वयं को जुलाहा, कोरी कहा है। लेकिन जुलाहा शब्द का प्रयोग अधिक देखने में आता है। इस संबंध में कुछ पंक्तियाँ हैं जो इस प्रकार हैं-

1. जाति जुलाहा मति को धीर। हरषि हरषि गुण रमहि कबीर।<sup>17</sup>
2. मेरे राम की अभौपद नगरी, कहै कबीर जुलाहा।<sup>18</sup>
3. तू बाहमन मैं कासी का जुलाहा, बूझहु मोर गियाना।<sup>19</sup>
4. तू बहमन मैं कासी का जुलाहा, मोहि तोहि बराबरी कैसेकै बनहि।<sup>20</sup>
5. पूरब जनम हम बाहमन होते, ओछे करम तपहीना।<sup>21</sup>
6. जाति जुलाहा नाम कबीरा, बनि बनि फिरौ उदासी।<sup>22</sup>
7. जौलाहे घर अपना चीना। घट ही राम पिछाना।।

कहत कबीर कारगह तोरी। सूतै सूत मिलाये कोरी।<sup>23</sup>

कबीर जिस भी परिवार में पालित-पोषित हुए हों, परन्तु वे कपड़ा बुनने

का काम करते रहे होंगे।

डॉ० श्यामसुंदरदास का मानना है कि कबीर का पालन-पोषण मुसलमान (जुलाहा) जाति के घर में हुआ था लेकिन वे ब्राह्मणी या हिन्दू स्त्री के गर्भ से उत्पन्न थे। वे कहते हैं- “ सब बातों पर विचार करने से इसी मत के ठीक होने की संभावना है कि कबीर ब्राह्मणी या किसी हिन्दू स्त्री के गर्भ से उत्पन्न और मुसलमान परिवार में लालित-पालित हुए होंगे।”<sup>24</sup>

डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थवाल, डॉ० श्यामसुंदरदास से अपनी असहमति व्यक्त करते हुए कहते हैं कि “कबीर जुलाहा वंश में उत्पन्न हुए थे। कबीर के पूर्वजों ने शायद कुछ समय पहले ही अपने उस धर्म को छोड़कर इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था, जिसमें गोरखनाथ की बड़ी मान्यता थी। कबीर वंश के लोग यद्यपि बाहर से मुसलमान थे, किन्तु अंदर का परिवर्तन अभी तक नहीं हुआ था। इससे कबीर के उच्च हिन्दू विचार एवं योग-प्रवृत्ति का कारण भी स्पष्ट हो जाता है।”<sup>25</sup>

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को एक मानव रूप देकर ‘ना हिन्दू ना मुसलमान’ व्यक्त करते हुए कहा- “सबसे पहले लगनेवाली बात यह है कि कबीरदास ने अपने को जुलाहा तो कई बार कहा है, पर मुसलमान एक बार भी नहीं कहा। वे बराबर अपने को ‘ना हिन्दू ना मुसलमान’ कहते रहे।”<sup>26</sup>

डॉ० रामकुमार वर्मा मानते हैं कि कबीर मुस्लिम परिवार में पालित होने से नाथ योगियों के संस्कारों से भी प्रभावित थे। क्योंकि उनके पूर्वजों पर उनका पर्याप्त प्रभाव रहा था। अतः कबीर पर भी उन संस्कारों का प्रभाव पड़ा था। इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि “कबीर के पिता ऐसी जुलाहा जाति के होंगे



जो मुसलमान होते हुए भी योगियों के संस्कारों से संपन्न थे तथा दशनामी संप्रदाय में दीक्षित होने के कारण गोसांई कहलाते थे। उन गोसांइयों पर नाथपंथ का पर्याप्त प्रभाव था।”<sup>27</sup>

डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत कबीर को जुलाहा (मुसलमान) जाति का ही मानते हैं, इसीलिये कि संत कवियों से लेकर आज के विद्वान भी उन्हें जुलाहा ही मानते हैं।<sup>28</sup>

संत साहित्य के मर्मज्ञ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी भी कबीर को इसीलिये जुलाहा मानते हैं क्योंकि कबीर के समकालीन संतों- रैदास (रविदास), धन्ना, पीपा, गुरु अमरदास, अनंतदास, रज्जव, तुकाराम तथा अनेक इतिहासकारों ने उन्हें जुलाहा जाति का ही माना है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर मुसलमान जाति के जुलाहा थे, किन्तु उन्होंने मुसलमान या हिन्दू विशेष नाम नहीं लिया। लेकिन इनके पूर्वजों पर नाथों, योगियों के संस्कारों का प्रभाव रहा होगा जो हमें कबीर में भी देखने को मिलता है। इनके पूर्वजों ने धर्म परिवर्तित कर लिया होगा किन्तु व्यवसाय अपने यथावत् रूप में बना रहा होगा; ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है। वस्तुतः कबीर का दिल और दिमाग अत्यंत विस्तृत एवं व्यापक था वे जाति, वर्ग, वर्णभेद के आधार पर समाज को विभक्त होता हुआ बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। उनका मानना तो एक दिव्य-ज्योति से समूचे विश्व की सृष्टि है फिर कौन नीच और कौन ऊँच? वे स्पष्ट कहते हैं-

1. अव्वल अल्लह नूर उपाया, कुदरत के सब बंदे।

एक नूर ते सब जग उपज्या, कौन भले को मंदे।<sup>29</sup>

कबीर का मालिक, खालिक घट-घट वासी है। कबीर ने स्पष्ट कहा है-

2. अल्लह गैव सगल घट भीतर, हिरदै लेहु बिचारी।

हिन्दू तुरक दुइ महिं एकै, एकै कबीर पुकारी।<sup>30</sup>

### माता-पिता

कबीर के माता-पिता के बारे में कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलते। विद्वानों ने अनुमान एवं किंवदंतियों को आधार स्वरूप मानकर अपने मत व्यक्त किये हैं।

डॉ० श्यामसुंदरदास कबीर को विधवा ब्राह्मणी का पुत्र मानते हुए कहते हैं कि “कबीर का विधवा ब्राह्मणी कन्या का पुत्र होना असंभव नहीं, किन्तु स्वामी रामानंद के आशीर्वाद की बात ब्राह्मण कन्या का कलंक मिटाने के उद्देश्य से पीछे से जोड़ी गई जान पड़ती है। उन्होंने अपने को जुलाहा और बनारस (कासी) का रहने वाला बताया है।”<sup>31</sup>

प्राचीन ग्रंथों में कबीर के माता-पिता के विषय में कुछ पंक्तियाँ मिलती हैं-

1. माय तुरकनी बाप जुलाहा, बेटा भक्त भये।<sup>32</sup>

2. पिता हमारौ बड्डु गोसांई।<sup>33</sup>

यहाँ बड्डु गोसांई से कबीर का तात्पर्य उस महान् परम पिता परमेश्वर

से है जिसके तुल्य अन्य कोई भी नहीं है इसीलिये डॉ० सरनाम सिंह शर्मा ने कबीर को दिव्य पुरुष मानने में संकोच नहीं किया है वे कहते हैं कि “इसमें संदेह नहीं कि कबीर की क्षमता उस सीमा तक जा पहुँची थी कि उनको “दिव्य-पुरुष” मानने में किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।”<sup>34</sup>

श्री रामकिशोर शर्मा ने ‘रामानंद दिग्विजय’ ग्रंथ का हवाला देते हुए बताया कि उक्त ग्रंथ में लिखा है कि “कोई आकाशगामी देवता अपनी प्रियतमा की पीड़ा से व्यथित था। उसका वीर्य स्खलन काशी के लहरतारा तालाब के एक कमल के पत्ते पर हुआ जिससे एक बालक हो गया। एक अन्य विचार के अनुसार कबीर के वास्तविक पिता का नाम स्वामी अष्टानंद था। किन्तु हिन्दू प्रथाओं के भय से कबीर की माता को पत्नी रूप में स्वीकार नहीं किया।”<sup>35</sup>

डॉ० भोलानाथ तिवारी ने कबीर को नीरू और नीमा का औरस (समान जाति की विवाहिता स्त्री से उत्पन्न पुत्र) मानते हुए कहा है कि प्राप्त सामग्री के आधार पर कबीर के नीरू-नीमा के औरस पुत्र होने की ही संभावना अधिक है।<sup>36</sup>

डॉ० राम कुमार वर्मा एवं पीताम्बरदत्त बड़थवाल भी इसी बात का समर्थन करते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कबीर के माता-पिता के विषय में कतिपय निष्कर्ष निकलकर आते हैं-

1. कबीर की उत्पत्ति सामान्य जन की भ्रांति न होकर दिव्य-पुरुष के रूप में हुई है।
2. लहरतारा तालाब में कमल के ऊपर उत्पन्न होना।

3. विधवा ब्राह्मण कन्या द्वारा रामानंद के आशीवर्चनों से पैदा होकर नीरू-नीमा के औरस पुत्र के रूप में होना।

अन्ततः यही कहा जा सकता है कि कबीर के वास्तविक माता-पिता जो भी रहे हों लेकिन उनका पालन-पोषण जिस दम्पत्ति के हाथों हुआ वे नीरू और नीमा ही थे। अधिकांश विद्वानों की मान्यता भी यही है।

### पत्नी

कबीर की पत्नी को लेकर विवाद हैं। कबीर पंथी लोग कबीर को प्रायः अविवाहित मानते हैं, लेकिन जो 'लोई' को कबीर की पत्नी मानते हैं; कबीरपंथी उसे कबीर की शिष्या बताते हैं। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर कबीर का गृहस्थ होना पता चलता है। लोई के बारे में एक कहावत है कि वह किसी महात्मा को एक लोई में लिपटी मिली, जिससे उसका नाम 'लोई' पड़ गया। बड़ा होने पर कबीर से विवाह हो गया। लोई कबीर की पत्नी थी इसका उल्लेख है-

1. हम तुम बीच भयो नहीं कोई।

तुमहिं सुकंत नारि हम सोई।।

कहत कबीर सुनहु रे लोई।

अब तुमरी परतीति न होई।।<sup>37</sup>

2. कहत कबीर सुनहु रे लोई। हरि बिन राखनहार न कोई।।

3. माया मोह भूले सब लोई।

4. का नट भेष भगवा बस्तर भसम लगावै लोई।

कुछ लोग 'लोई' शब्द का अर्थ-लोग, लोक, लोड़, लोई लगाते हैं

अर्थात् जहाँ कबीर लोई शब्द का प्रयोग करते हैं वहाँ वे लोगों को संबोधित करते हैं। डॉ० भोलानाथ तिवारी 'लोई' शब्द का अर्थ लोग लगाते हुये कहते हैं कि "मेरा अपना विचार है कि प्रथम प्रकार के प्रयोगों (लोग) में भी 'लोई' का अर्थ 'लोग' ही है और कबीर सामान्य लोगों को संबोधित करके कह रहे हैं।"<sup>38</sup>

डॉ० श्यामसुंदरदास लोई को कबीर की पत्नी और शिष्या के रूप में अनुगामिनी मानते हुए कहते हैं कि "यह अधिक संगत जान पड़ता है कि लोई कबीर की पत्नी थी जो कबीर के विरक्त होकर नवीन पंथ चलाने पर उनकी अनुगामिनी हो गई।"<sup>39</sup>

डॉ० रामकुमार वर्मा<sup>40</sup> और डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत<sup>41</sup> ने कबीर की दो पत्नियाँ मानी हैं- एक का नाम लोई और दूसरी का नाम रामजनिया, धनिया या रमजनिया था। इस संबंध में एक उक्ति मिलती है-

मेरी बहुरिया को धनिया नाउ।

लै राखिओ रामजनिया नाउ।।

डॉ० रामकुमार वर्मा रामजनिया को कबीर की वैश्या पत्नी मानते हैं। किन्तु डॉ० भोलानाथ तिवारी रामजनिया का अर्थ 'भगतिन' हो सकता है- मानते हैं।<sup>42</sup>

कबीर के दो पत्नियाँ थीं, इस संबंध में श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित 'कबीर-ग्रंथावली' में दो पद मिलते हैं-

1. अब की धरी मेरी घर करसी, साध संगति लै मौकौं तिरसी।।

पहली को घाल्यौ भरमत डौल्यौ, सच कबहूँ नहीं पायौ।

अब की घरनि धरी जा दिन थैं सगली भरम गमायौ।।

पहली नारि सदा कुलवंती, सासू सुसरा मानैं॥

देवर जेठ सबनि की प्यारी, पिव कौ मरम न जाँनैं॥

अब की घरनि धरी जा दिन थैं, पीव सूँ बाँ बन्यूँ रे।

कहै कबीर भाग बपुरी कौँ, आई रू राम सुन्यूँ रे।<sup>43</sup>

2. पहिली कुरूप कुजाति कुलक्खनी साहुरैं पेड़यै बरी।

अबकी सरूप सुजाति सुलच्छनी सहजे उदरधरी॥

भत्ती सरी मुई मेरी पहली बरी। जुग-जुग जीवो मेरी अबकी धरी॥

कहु कबीर जब लहुरी आई बड़ी का सुहाग टरयो।

लहुरी संग भई अब मेरे जेठी और धर्यो।<sup>44</sup>

इस प्रकार उपलब्ध सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर के दो पत्नियाँ थीं। जिनमें प्रथम कबीर को प्रिय नहीं थी यद्यपि वह सास, ससुर देवर इत्यादि को प्रिय थी। कबीर की प्रथम पत्नी ने कबीर को कदापि सत्य की खोज नहीं होने दी उसने कबीर को दिग्भ्रमित कर दिया और द्वितीय पत्नी ने कबीर को साधु-संगत की ओर प्रेरित किया। अतः कबीर को यह पत्नी अच्छी लगी। इस प्रकार से कबीर की पहली पत्नी लक्षणों से दूषित थी और दूसरी सुलक्षणा थी इसीलिये कबीर उसे युग-युग जीवित रहने के लिये शुभ वचन कहते हैं।

### पुत्र-पुत्रियाँ

कबीर के पुत्र-पुत्रियों के बारे में निश्चित, ठोस प्रमाण नहीं मिलते। जनश्रुतियों के आधार पर उनके एक पुत्र कमाल एवं एक पुत्री कमाली मानी जाती है। कबीरपंथियों का मानना है कि कबीर अविवाहित थे और निःसंतान थे, कमाल,

कमाली कबीर की करामात (चमत्कार) से मुर्दे से जिंदा किये गये थे। इसीलिये कबीर के कमाल से प्रभावित होकर उस लड़के-लड़की का नाम कमाल और कमाली पड़ गया।

डॉ० श्यामसुंदरदास कबीर की संतति के विषय में जनश्रुति को ही आधार बनाकर कहते हैं कि “कबीर की संतति के विषय में तो कोई प्रमाण नहीं मिलता। कहते हैं कि उनका पुत्र कमाल उनके सिद्धांतों का विरोधी था।”<sup>46</sup> इसी से कबीर ने कहा-

*बूड़ा बंस कबीर का उपज्यो पूत कमाल।*

*हरि का सिमरन छाड़िकै घर ले आया माल।।<sup>47</sup>*

डॉ० श्यामसुंदरदास एवं प्रोफेसर कृष्ण रैणा आदि विद्वान उपर्युक्त दोहे में संदेह व्यक्त करते हैं कि यह कबीर का न होकर प्रक्षिप्त है।

श्री रामकिशोर शर्मा का कबीर की संतति के विषय में स्पष्ट कथन है कि “जिस तरह पत्नियों के विषय में विद्वानों ने दूर की कौड़ी खोज ली है उसी तरह पुत्र कमाल और पुत्री कमाली के विषय में कुछ ब्यौरे इकट्ठे कर लिये हैं”।<sup>48</sup>

डॉ० रामकुमार वर्मा कमाल को कबीर का पुत्र मानते हुये कबीर का अपने पुत्र कमाल से असंतुष्ट होना व्यक्त करते हुए कहते हैं कि “कबीर कमाल से इसलिये असंतुष्ट थे क्योंकि वह सगुणोपासकों की श्रेणी में सम्मिलित हो गया था।”<sup>49</sup>

डॉ० क्षितिमोहन सेन का कहना है कि “कबीर की मृत्यु के उपरांत अनेक लोगों ने उनके पुत्र कमाल को कबीर के अनुयायियों का पंथ बनाने को कहा

परन्तु कमाल ने अस्वीकार कर दिया।”<sup>50</sup>

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर की कोई निश्चित संतति नहीं थी, परन्तु फिर भी जब कमाल को उनका पुत्र माना जाता है चाहे वह करामात से जीवित किया गया हो अथवा कबीर की पत्नियों से उत्पन्न हो। कमाल को कबीर का पुत्र संभवतः माना जा सकता है। हो सकता है कबीर की संतानों में केवल कमाल ही शेष बचा रहा हो। इसीलिये डॉ० सरनाम सिंह शर्मा का कहना है कि “बहुत संभव है कि अंततोगत्वा उन सब में से केवल कमाल ही बचा हो।”<sup>51</sup>

### नाम

कबीर शब्द अरबी भाषा का है जिसका अर्थ है- बड़ा, श्रेष्ठ । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ० श्यामसुंदरदास ने ‘कबीरदास’ नाम अपनाया है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने ‘कबीर साहित्य की परख’ नामक ग्रंथ में ‘कबीर साहब’ नाम लिया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थवाल, आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी इत्यादि विद्वानों ने ‘कबीर’ नाम ही का उपयोग किया है। अतः अन्ततः कहा जा सकता है कि कबीरदास, कबीर साहब नाम जब लिया गया है तो वह आदर एवं श्रद्धाभाव के साथ लिया गया है। कबीर के समूचे वाङ्मय में हमें अधिकांशतः कबीर नाम ही देखने को मिलता है।

### गुरु

कबीर का कोई विद्या गुरु नहीं था, क्योंकि वे विद्या अर्जन हेतु गुरुकुल, पाठशाला, मक़तब या मदरसा नहीं गये। लेकिन कबीर का कोई आध्यात्मिक गुरु था या नहीं? इस बारे में विद्वानों में विवाद है। इस संबंध में हमारे समक्ष कई



मत खड़े होते हैं-

1. कोई व्यक्ति-विशेष कबीर का गुरु नहीं था।
2. कबीर के गुरु शेख तकी थे।
3. कबीर के कोई पीताम्बर पीर थे।
4. कबीर के गुरु रामानंद थे।

पहले मत का समर्थन करते हुए आचार्य परशुराम चतुर्वेदी कहते हैं कि “कबीर साहब की प्रवृत्ति किसी व्यक्ति की अपेक्षा ज्ञान अथवा विवेक को ही अपना गुरु स्वीकार करने की ओर अधिक स्पष्ट दीख पड़ती है।..... वास्तव में उनकी अधिकांश ऐसी रचनाओं पर विचार करने से यह बात कही अधिक युक्तिसंगत जान पड़ती है कि अपने गुरु और परमात्मा में वे मूलतः कोई भेद नहीं मानते थे।”<sup>52</sup>

कबीर विवेक को अपना गुरु मानते थे। इस संबंध में उल्लेख है-

संतौ कौ मति कोई निंदहु संत राम हैं एकौ।

कहु कबीर मैं सो गुरु पाया जाका नाउ बिबेकौ।<sup>53</sup>

दूसरे मत के समर्थन में शेख तकी कबीर के गुरु थे। इस वर्ग में डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी तथा वैस्टकॉट साहब आते हैं। शेख तकी नाम के दो व्यक्ति हैं-एक झूँसी वाले और दूसरे मानिकपुर वाले। झूँसी में ‘कबीर नाला’ तो है किन्तु कोई अन्य आधार नहीं मिलता जो दोनों में भेद कर सके। बीजक में एक तकी का उल्लेख है, जिसे विद्वानों ने मानिकपुर वाले तकी माना है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इन शेख तकी से कबीर की कुछ तकरार हो गई थी जैसा कि एक पंक्ति मिलती है-

नाना नाच नचाय के, नाचे नट के भेख।

घट घट अविनासी अहै, सुनहु तकी तुम सेख॥<sup>54</sup>

लोगों का मानना है कि कबीर पंक्तियों के दो वर्ग थे- एक मुसलमान कबीर पंथी और दूसरे हिन्दू कबीरपंथी। मुसलमान कबीरपंथी भी शेख तकी को कबीर का गुरु मानते हैं। किन्तु उपर्युक्त पंक्ति से यह बात अस्पष्ट ही रहती है।

तीसरा मत अन्तः साक्ष्य पर आधारित है। इस संबंध में एक पंक्ति है-

हज्ज हमारी गोमती तीर।

जहाँ बसहिं पीताम्बरपीर॥<sup>55</sup>

डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थवाल गोमती तीर का अर्थ 'जौनपुर' (उत्तर प्रदेश) लगाते हैं। लेकिन ये पीताम्बरपीर कौन थे? यह स्पष्ट नहीं होता, जहाँ कबीर हज्ज जाना समझते हैं।

चौथे मत के समर्थन में कि कबीर के गुरु रामानंद थे; इसमें डॉ० भण्डारकर, मिस्टर मैकालिफ, पं० रामचंद्र शुक्ल, डॉ० श्यामसुंदरदास तथा डॉ० रामकुमार वर्मा आदि विद्वान आते हैं। इन विद्वानों ने रामानंद को कबीर का गुरु सिद्ध करने के लिये जिन प्रमाणों का सहारा लिया है वे जनश्रुतियाँ या कल्पनामात्र हैं। कोई निश्चित एवं ठोस प्रमाण नहीं है।

इस तरह न तो शेख तकी न पीताम्बरपीर और न रामानंद ही कबीर के गुरु ठहरते। कबीर के गुरु कोई व्यक्ति विशेष न होकर उनके घट-घट वासी राम हैं जो सब में रम (रमण) रहे हैं। कबीर स्पष्ट कहते हैं-

तुम्ह सतगुरु नौतम चेला। कहै कबीर राम रमूं अकेला॥<sup>56</sup>

कबीर तो गुरु और गोविंद में अभेद मानते हैं और गोविंद भक्त को

तभी प्राप्त होता है जब वह स्वत्व को समाप्त कर देता है और गोविंमय हो जाता है अर्थात् भक्त जब अपने-पराये का बोध नहीं करता बल्कि उससे ऊपर उठकर अपने अस्तित्व को भूल जाता है। कबीर तभी स्पष्ट कहते हैं-

गुरु गोविंद तो एक है, दूजा यह आकार।

आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार।।<sup>57</sup>

इस प्रकार कबीर के गुरु कोई व्यक्ति विशेष न होकर स्वयं ईश्वर है। कबीर ईश्वर को ही गुरु मानते हैं। जैसाकि आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का कथन है कि “वास्तव में उनकी अधिकांश रचनाओं पर विचार करने से यह बात कहीं अधिक युक्तिसंगत जान पड़ती है कि अपने गुरु और परमात्मा में वे मूलतः कोई भेद नहीं मानते थे।।”<sup>58</sup>

## शिष्य

भक्त-परंपरा से मालूम होता है कि बिजली खाँ, धर्मदास, वीरसिंह बघेला, सुरतगोपाल, जीवा, तत्त्वा, जगगूदास आदि उनके शिष्य थे। कबीर ने इन सबका कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है। धर्मदास और सुरतगोपाल कबीर के दो प्रमुख शिष्य थे, डॉ० श्यामसुंदरदास मानते हैं। उनका स्पष्ट कथन है- “धर्म और सुरतगोपाल नाम के कबीर के दो चेले हुए।”<sup>59</sup>

इनमें धर्मदास मूर्तिपूजक थे। कबीर की इनसे पहली भेंट काशी में हुई। मूर्तिपूजक होने के कारण कबीर ने उन्हें बहुत फटकारा। इसके पश्चात् वे वृन्दावन में मिले। धर्मदास ने कबीर को साधु-मण्डली के बीच उपदेश देते हुए सुना। वे उस समय कबीर को पहचान न सके और वे बोले “आपके उपदेश मैंने काशी में भी किसी

महात्मा के मुख से सुने थे।” इस बार धर्मदास की श्रद्धा उमड़ पड़ी उन्होंने हाथ में लगी मूर्ति को पानी में डाल दिया। तीसरी बार कबीर स्वयं उनके घर बांधोगढ़ गये और कहा “जिस पत्थर के तुम्हारे तौलने के बांट हैं तुम उन्हीं की पूजा करते हो।” इस बात का धर्मदास पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने कबीर को अपना गुरु मान लिया। कबीर की मृत्योपरांत धर्मदास ने छत्तीसगढ़ में कबीरपंथ की एक शाखा का प्रवर्तन किया और सुरतगोपाल ने काशी वाली शाखा का भार सँभाला। बाद में धीरे-धीरे इन दोनों शाखाओं में मतभेद हो गया। लेकिन धर्मदासी आदि अनेक कबीरपंथी कबीर को आज भी उसी आदरभाव की दृष्टि से मानते हैं जैसे कबीर मानो उनके बीच पैगंबर रहे हों।

### व्यक्तित्व

व्यक्ति में मानवरूप की समस्त बाह्य और आंतरिक विशिष्टताएँ समाविष्ट होकर उसके रूप, रंग, वेश-भूषा, आचार-विचार एवं जीवन की विभिन्न दशाओं के रूप में उद्घाटित होती हैं। इन सबका सम्मिलित रूप ही व्यक्ति का व्यक्तित्व कहलाता है।

कबीर का व्यक्तित्व जीवन के विविध आयामों को व्यक्त करता है। उनका आंतरिक व्यक्तित्व सहज, सरल एवं क्रांतदर्शी है जो सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक रूप में रूपायित होकर व्यक्त हुआ है। बाह्य व्यक्तित्व भी उनके आंतरिक व्यक्तित्व के साथ सामंजस्य लिये हुये है। कवि का व्यक्तित्व उसके सम्पूर्ण काव्य में प्रतिफलित होता है। किसी भी कवि या साहित्यकार के साहित्य को समझने के लिये उसके व्यक्तित्व से परिचित होना आवश्यक होता है। इस तरह से कवि और

उसका काव्य व्यक्तित्व के निर्माण में परस्पर सापेक्ष होते हैं। कबीर के व्यक्तित्व के संदर्भ में हमें बाह्य एवं अन्तःसाक्ष्यों का सहारा लेना पड़ेगा। बाह्य एवं अन्तः साक्ष्य के आधार पर कबीर के विभिन्न आंतरिक, सामाजिक और सहित्यिक पक्ष स्पष्ट होकर हमारे समक्ष एक चित्र प्रस्तुत करेंगे, जिसके प्रकाश में कबीर के काव्य का अध्ययन अधिक प्रासंगिक होगा।

### बाह्य व्यक्तित्व

कबीर से संबंधित वस्तुयें एवं स्थानों के विषय में दो प्रकार की धारणाएँ हैं— चित्र और पादुकायें। कबीर के दस-ग्यारह चित्र मिलते हैं। इनमें 'ब्रिटिशम्यूजियम' कुंवर संग्राम सिंह, कबीर चौरा, युगालानंद तथा गुरु अर्जुनदेव के गुरुद्वारे के चित्र प्रमुख हैं। एक चित्र में कबीर कमाल, औघड़नाथ, पीपाजी, नामदेव, रैदास, सेना, गोरखनाथ, मछिन्दरनाथ तथा कुछ अन्य भक्तों के साथ दिखाये गये हैं। कुछ चित्रों में उन्हें दाढ़ी-माला, टीका, कंठी तथा महन्तों की कुछ अन्य चीजों से युक्त दिखाया गया है। चित्रों की कुछ उल्लेखनीय बातें ये हैं—

1. वह वृद्ध दिखाये गये हैं।
2. उन्हें कपड़ा बुनते दिखाया गया है।
3. उनके शीश से प्रकाश-रश्मियाँ फूटती दिखाई गई हैं।
4. हिन्दू-मुसलमान दोनों उनके प्रति श्रद्धालु चित्रित किये गये हैं।

कबीर से संबंधित दो-एक चित्र मिलते हैं जिनका उल्लेख आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'उत्तरी भारत की संत परंपरा' में किया है।

### कबीर का व्यावसायिक चित्र

“कबीर साहब के कुछ ऐसे चित्र भी मिलते हैं। जिनमें ये एक करघे पर बैठे काम करते हुये दिखलाये गये हैं। इनमें से एक वह है जिसका मूल ‘ब्रिटिश-म्यूजियम’ में सुरक्षित है। यह चित्र मुगल-शैली का है और इसका निर्माणकाल ईसा की अठारहवीं शताब्दी बतलाया जाता है। इस चित्र में कबीर साहब के शरीर पर कोई कपड़ा नहीं है। सामने करघा फैला हुआ है और दोनों ओर एक-एक शिष्य वा भक्त बैठे हुये हैं। पीछे एक वृक्ष है जिसके नीचे एक छोटी सी मढ़ी बनी हुई है। सिर, दाढ़ी एवं मूंछ के बाल छोटे-छोटे, पके और बराबर दीख पड़ते हैं और चित्र में इनकी आयु का अनुमान साठ वर्षों का किया जा सकता है परन्तु इस चित्र में भी इनके गले व दाहिने हाथ की कलाई में तुलसी की मालायें हैं। इस चित्र से मिलता-जुलता एक चित्र कलकत्ते के म्यूजियम में भी वर्तमान है जिसमें कबीर साहब के पीछे कोई मढ़ी दीख नहीं पड़ती और शिष्य वा भक्त भी एक ही दिखलाया गया है। इस चित्र में सर्वत्र एक प्रकार की सादगी व स्वाभाविकता सी लक्षित होती है और जान पड़ता है कि संभवतः इसी को पहले देखकर उक्त प्रथम चित्र के रचयिता ने उसे बनाते समय कुछ अधिक सुव्यवस्थित व सुसज्जित कर दिया होगा। इस चित्र में वैसी कोई दाढ़ी नहीं दिखलाई गई, परन्तु मालायें ठीक उसी प्रकार पहनाई गई हैं। इस चित्र में कबीर साहब की अवस्था 50 वर्ष से अधिक नहीं है। दोनों चित्रों से ये मझौले कद के ही जान पड़ते हैं और इनके मुख की मुद्रा भी प्रायः एक ही प्रकार की है।”<sup>60</sup>

“करघे पर बैठे हुये कबीर साहब का एक तीसरा चित्र भी मिलता है,

जो गुरु अर्जुन देव के लाहौर वाले गुरुद्वारे में 'फ्रेस्को' के रूप में वर्तमान है। इस चित्र में कबीर साहब छोटे कद के दिखलाये गये हैं और इनका सिर भी लंबे की जगह बहुत कुछ चौड़ा और चपटा-सा है। शरीर पर कुछ साधारण पहनावा है और सिर पर एक समले के ढंग की टोपी वा पगड़ी दी हुई है। इसमें इनके बांयी ओर तीन शिष्य वा भक्त हैं और दाहिनी ओर स्त्री बैठी हुई है। मढ़ी, वृक्ष व करघे की भी अनुकृतियां ठीक व स्वाभाविक नहीं समझ पड़ती। दाढ़ी व मूंछें कुछ बड़ी-बड़ी हैं और अवस्था प्रायः 50 वर्ष की होगी। इस चित्र में भी कबीर साहब के गले में माला पड़ी हुई है और एक इनकी दाहिनी कलाई में कदाचित बंधी हुई है। स्पष्ट है कि उक्त तीनों चित्र इनके गृहस्थ-रूप के परिचायक हैं, परन्तु तीनों में कुछ न कुछ भिन्नता है और इनमें तथा उक्त प्रथम वर्ग के चित्रों में कोई समानता नहीं।<sup>61</sup>

### कबीर का सूफी-चित्र

इसमें कबीर कुछ बड़े कद के दीख पड़ते हैं। लम्बी मुखाकृति के साथ-साथ दाढ़ी-मूंछें भी लम्बी-लम्बी हैं। उन्होंने सिर पर एक नुकीली ऊँची टोपी पहन रखी है और शरीर पर कोई ढीला-ढाला सा चोगा धारण किये हुये हैं, जो भिन्न-भिन्न रंग के कपड़ों के टुकड़ों को सीकर बनाया गया है। आयु 70 वर्ष से अधिक नहीं है। तिलक और तुलसी-माला को इस चित्र में कहीं स्थान नहीं मिला है। यह सूफी-वेश-भूषा वाला चित्र है जो स्वामी युगलानंद कबीरपंथी द्वारा 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' को मिला है जिसकी प्रतिकृति सभा भवन में स्थित है।

सूफी चित्र से संबंधित एक चित्र कबीर का और है जिसकी मूल प्रति पूना की चित्रशाला में सुरक्षित है और जो 'भारत-इतिहास-संशोधक-मण्डल' पूना से

प्राप्त कर 'संत कबीर' नामक ग्रंथ के प्रारंभ में दिया गया है। कहा जाता है इसकी प्राप्ति नाना-फडनवीस (कार्यकाल सं० 1830-56) के चित्र संग्रह से हुई है। "इसमें कबीर एक बिछौने पर मसनद के सहारे बैठे दीख पड़ते हैं। अधबाँही कुर्ते में मझोला कद स्पष्टतः दिखलाई दे रहा है। सिर पर एक गोल कढ़ी हुई या धारीदार टोपी है और उसके नीचे पीछे की ओर पट्टे (जुल्फ जैसे बाल) दिखाई देते हैं। इनकी दाढ़ी पहले सूफी चित्र की दाढ़ी के समान बड़ी नहीं है। अवस्था 70-75 के आसपास की जान पड़ती है। हाथ में एक वाद्ययंत्र, संभवतः एक सितार है जिस पर उनके दोनों हाथ जमे हुये हैं। वे एक भाव-विभोर मुसलमान के रूपाचरण में स्थित हैं।"<sup>62</sup>

### आंतरिक व्यक्तित्व

व्यक्ति का आंतरिक व्यक्तित्व उसके अंतरंग विचारों भावों का पुंज होता है। वह अन्तर्आत्मा रूपी चिंतन से जीवन के विभिन्न अनुभवों को जाँचता-परखता है। काव्य या साहित्य में भी व्यक्ति अपने चिंतन-मनन की कसौटी पर कसकर काव्य को रूपायित करता है। इस तरह से कवि या साहित्यकार का आंतरिक व्यक्तित्व उसके जीवन-दर्शन का स्प्रष्टा होता है जो उसके जीवन और परविश से भलीभाँति अनुप्राणित होता है। इस प्रकार काव्य या साहित्य को समझने के लिये उसके स्प्रष्टा (कवि, साहित्यकार) के आंतरिक व्यक्तित्व से परिचित होना पड़ेगा।

कबीर एक व्यक्ति के रूप में एक ओर सरल सहज एवं उदारता के साथ प्रस्तुत होते हैं तो अवसरानुसार वही कबीर अक्खड़पन, फक्कड़पन एवं क्रांतिकारिता के साथ अपने काव्य में प्रतिफलित होते हुये दीख पड़ते हैं। कबीर का



यही आंतरिक व्यक्तित्व उनके काव्य की मूल चेतना है। कबीर के आंतरिक व्यक्तित्व के कुछ पहलुओं को हम इस प्रकार देख सकते हैं।

### विनयशीलता

कबीर के साथ ऐसा नहीं है कि वे जन्मजात निम्न जाति के थे इसीलिये उनका स्वभाव विनयशील था, प्रत्युत विनयशीलता उनकी सत्संगजन्य विशिष्टता थी। वे सत्संगप्रेमी थे। संत सेवा में लगे रहना कबीर अपना अहोभाग्य समझते थे। संतों के सामने कबीर का 'अहं' विलीन एवं विगलित हो जाता था-

*कबीर चेरा संत का, दासनि का परदास।*

*कबीर ऐसे हवै रहया, ज्यूँ पाऊँ तलि घास।।<sup>63</sup>*

### अक्खड़पन

कबीर विनयशील होने के साथ अक्खड़पन भी लिये हुये हैं। वे अक्खड़पन की स्थिति में वहाँ होते हैं जहाँ दम्भी, पाखण्डी बलपूर्वक अपनी उच्चता एवं श्रेष्ठता का बखान करते हैं। जब अज्ञानी ब्राह्मण भी अपनी श्रेष्ठता का व्यर्थ बखान करता है उस समय कबीर का आलोचक मूक न रहकर प्रखर हो जाता है-

*पंडित सेती कहि रहया, भीतरि भेद्या नाहिं।*

*औरूँ कूँ परमोधताँ, गया मुहरकाँ माँहि।।<sup>64</sup>*

### अखण्ड विश्वासी

कबीर का ईश्वर पर अखण्ड विश्वास था। इस स्रष्टि का सृष्टा इस स्रष्टि के अंग-उपागों में अपनी इच्छानुसार जब चाहे जैसे परिवर्तन करने पर अपनी अद्भुत शक्ति रखता है। वह चाहे तो मिट्टी को सोना और सोने को मिट्टी में

परिणत कर सकता है। कबीर का ईश्वर भी कुछ इसी तरह का है जो राई को पहाड़ और पहाड़ को राई बना डालता है-

साँईं सँ सब होत है, बंदे तैं कछु नाँहि।

राई तैं परबत करै, परबत राई माँहि।<sup>65</sup>

आचार्य द्विवेदी ने कबीर के समग्र व्यक्तित्व को एक वाक्य में समाहित करते हुये कहा है “वे सिर से पैर तक मस्त-मौला थे- बेपरवाह, दृढ़, उग्र, कुसुमादपि कोमल, वज्रादपि कठोर।”<sup>66</sup>

### निर्भीक एवं स्पष्ट वक्ता

कबीर सद्पथ-गामी थे। सच्ची बात कहने के लिये वे तनिक भी संकोच या भय नहीं करते अपितु सच्चे दिल से उसे स्पष्ट कर देते चलते हैं-

जैसी मुख से नीकसै, तैसी चालै नाहिं।

मानिष नहीं ते स्वान गति, बाँध्या जमपुर जाँहिं।<sup>67</sup>

इसीलिये आचार्य द्विवेदी ठीक कहते हैं कि “कबीरदास एक जबरदस्त क्रांतिकारी पुरुष थे।”<sup>68</sup>

### सूक्ष्मदर्शिता एवं सत्यान्वेषक

कबीर का व्यक्तित्व निरपेक्ष है जो सूक्ष्मदर्शिता और सत्यान्वेषण हेतु हृदय-पटलों को खोल देता है। कबीर की सूक्ष्मदर्शी एवं सत्यान्वेषी तथा कुशाग्र दृष्टि हर वस्तु को, जीवन के विभिन्न आयामों को बड़ी ही बारीकी से देखती चलती है। मूर्तिपूजा की व्यर्थता की जगह वे कृषक की घर की ‘चक्की’ का उपयोग करना अधिक संगत मानकर उसको श्रेयस्कर सिद्ध करते हैं-

पाथर पूजें हरि मिलैं, तो मैं पूजूँ पहाड़।

तातैं तो चाकी भली, पीस खाये संसार॥

या

पाहिन कूँ का पूजिए, जे-जनम न देई जाब।

आँधा नर आसामुषी, यौं ही खोवैं आब॥<sup>69</sup>

इसी तरह वे सत्यान्वेषी की भूमिका में 'दूध का दूध और पानी का पानी' करके सत्य और झूठ को पृथक् करते हुए कहते हैं-

झूठे कौं झूठा मिलैं, दूणाँ बँधे सनेह।

झूठे कूँ साँचा मिलैं, तब ही टूटै नेह॥<sup>70</sup>

### मानवीयता

कबीर पर प्रायः आरोप लगाये जाते हैं कि कबीर हिन्दू थे, मुसलमान थे। वस्तुतः कबीर धर्म की संकुचित सीमा में बँधकर नहीं रहना चाहते थे अपितु उससे भी ऊपर उठकर समाज में मानवीय धर्म को प्रतिष्ठित करना चाहते थे। वे मनुष्य-मनुष्य में जाति-पाँति, वर्ग-कुल इत्यादि के आधार पर भेदभाव मानने के पक्ष में न थे, बल्कि उन्होंने जीवन पर्यन्त इस भेद-भावना को समूलतः उखाड़ने का प्रयास भी किया।

एक बूँद एक मल-मूतर, एक चाम एक गूदा।

एक जोति थे सब उतपनाँ कोने बाँह्न कोने सूदा॥

और भी देखिये-

अव्वल अल्लह नूर उपाया कुदरत के सब बंदे।<sup>72</sup>

एक नूर ते सब जन उपज्या कौन भले को मंदे।।

इसीलिये तो श्रीमान् विजयेन्द्र स्नातक जी का कथन स्पष्ट है-  
“मानव-मानव में भेद उत्पन्न करने वाले बाह्याडम्बरो, मजहबों, रूढ़ियों और  
अंधविश्वासों के प्रति जैसा कठोर रुख कबीर ने अपनाया वैसा किसी और साधु-संत  
या भक्त ने नहीं अपनाया था।<sup>73</sup>

### आत्मपरितोष

कबीर को धन-संपत्ति से तनिक भी लगाव नहीं था। वे धन संचयन  
के फेर में कदापि नहीं पड़े। उन्हें तो उतने धन की आवश्यकता थी जिससे उनकी  
उदर शांति हो सके जिसके लिये वे किसी के आगे अपने हाथों को नहीं फैलाते बल्कि  
वे तो अपने पालनेवाले पालनहार के सम्मुख प्रस्तुत होते हुये कहते हैं-

संत न बाँधे गाँठड़ी पेट समाता लेइ।

साँई सँ सनमुख रहै, जहाँ माँगे तहाँ देइ।।<sup>74</sup>

और भी द्रष्टव्य हैं-

माँगण मरण समान हैं, बिरला बंचै कोइ।

कहैं कबीर रघुनाथ सँ, मतिर मँगावै मोइ।।<sup>75</sup>

### समाज सुधारक

कबीर के समय में समाज अनेक विकृतियों एवं कुरीतियों से आक्रांत  
था। ऐसे समय में एक जागरूक समाज सुधारक की आवश्यकता थी। कबीर ने इस  
रिक्तता को पूर्ण किया। वस्तुतः कबीर को ईश्वर के यहाँ से आदेश था कि वे संसार

में जाकर अंधविश्वासों के पंक में डूबी जनता का ठीक पथ-प्रदर्शन करें जिससे वे संसार रूपी नौका से पार उतर सकें। इसके लिये कबीर के अन्तः मन में एक ईश्वरीय प्रेरणा झंकृत हो उठी-

हरि जी यहें बिचारिया साषी कहौं कबीर।

भाँसागर में जीव है, जे कोई पकडैं तीर।।<sup>76</sup>

कबीर की इसी सुधारवादी भावना से प्रभावित होकर डॉ० भोलानाथ तिवारी ने कहा- “वे एक जन्मजात नेता थे। सुधरे सुधारक। आज के नेताओं की तरह नहीं जो घंटाघर की तरह दूसरों को जगाते हैं और स्वयं सोये रहते हैं। वे सच्चे अर्थों में नेता थे।”<sup>77</sup>

कबीर ने जहाँ एक ओर समाज की विकृतियों के परिष्करण में सहजता, सरलता एवं उदारवादिता अपनाई हैं वहीं दूसरी ओर जब इससे काम नहीं चलता वहीं कबीर का प्रचण्डी, क्रांतिकारी रूप उभरकर हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता है। उस स्थिति में कबीर की मुल्लाओं, पंडितों, योगियों, अवधूतों, शाक्तों, शेख, पठानों तथा अपने को उच्चकुलीन समझने वालों से तक़ार भी हो गई है जो पाखण्डी एवं धूर्त हैं, जो बाहर से कुछ और अन्दर से कुछ और। कबीर कहते हैं उच्च तो वह है जिसके कर्म स्वच्छ उच्चादर्शों वाले हैं न कि वह जो जाति से उच्च है किन्तु उनके भीतर अवगुणों का अंबार है। ऐसे लोग तो अपनी कंचन काया को वैसे ही लिये फिरते हैं जैसे सोने के कलश में मदिरा को भर दिया जाये जो सज्जनों की दृष्टि में शोभनीय न होकर निंदनीय ही कहलायी जायेगी। यथा-

ऊँचे कुल का जनमियाँ, जो करनी ऊँच न होइ।

सुबरन कलस सुरा भरया, साधू निंधा सोइ।।<sup>78</sup>

कबीर ने समाज के परिशोधन में अपना सर्वस्व लुटा दिया। अब वे उन लोगों को साथ में लेकर चलना चाहते हैं जो स्वयं भी अपना सब कुछ न्यौछाबर करने को तैयार हों-

हम घर जाल्या आपणाँ, लिया मुराड़ा हाथि।

अब घर जालौं तास का, जे चलैं हमारे साथि।।<sup>79</sup>

इस संदर्भ में डॉ० धर्मवीर की प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त हुई है “कबीर सौ प्रतिशत शूद्रों और अंत्यजों का धर्म स्थापित करना चाहते थे” तथा कहते हैं “कबीर खुद अपने जैसे श्रमिकों और कारीगरों का धर्म खड़ा करना चाहते थे। वे अपने धर्म के नेतृत्व में गैर श्रमिकों की संभावना तक को मिटाना चाहते थे।”<sup>80</sup>

लेकिन कबीर के काव्य में विशेष रूप से शूद्रों एवं अंत्यजों को साथ लेकर कोई नया पंथ या धर्म स्थापित करने की बात हमें कहीं नहीं मिलती। हाँ वे उन लोगों को अपने साथ लेने की बात करते हैं जो अपने सर्वस्व को त्यागकर कबीर की भाँति बन सकें। वास्तविक रूप से कबीर उसे ही शूरवीर मानते हैं जो न केवल धन-संपत्ति से कबीर का सहायक बने अपितु ईश्वर के सत्संदेशरूपी उच्च आदर्शों का स्वयं भी पालन करे और ईश्वर (धर्णी) के इसी धर्म की रक्षा हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग भी करें-

सूरा तबही परषिये, लड़ै धर्णी के हेत।

पुरिजा पुरिजा हवै पड़ै तऊ न छाँड़ै खेत।।<sup>81</sup>

इस संदर्भ में डॉ० तिवारी का कथन सटीक दीख पड़ता है। वे कहते

है “वे सच्चे अर्थों में सत्यान्वेषी थे। मौलिक सत्यान्वेषी- पंडित मुल्ला जो लिख दिया, छाँड़ि चले हम कछु न लिया’। बहुत उद्भट सत्यान्वेषी होने के कारण ही वे असत्य-विषमता, आडम्बर, पाखण्ड, अंधविश्वास, अनीति के विरुद्ध लड़ने वाले सच्चे सूरमा थे।<sup>82</sup>

### सत्संगप्रियता

कबीर सत्संग प्रेमी भक्त थे। वे सज्जनों के संसर्ग में रहना पंसद करते थे। कबीर को संत महात्मा की पदवीं दिलाने में सत्संगियों का बड़ा योग रहा है। हर व्यक्ति का अपना एक अलग परिवेश होता है जिसके प्रभाव से वह वंचित नहीं रह सकता। जैसे चंदन का तरु चाहे लाख छोटा होता है परन्तु उसकी सुगंध से आसपास का वातावरण भी प्रभावित हुये बिना नहीं रह पाता अर्थात् अपनी खुशबू से सुगंधित कर ही देता है उस समय उसे कोई नीम नहीं कहता। वैसे ही जो लोग सज्जनों के साथ रहते हैं और जीवन उनके साथ रहकर व्यतीत करते हैं उनको असफलता मिले ऐसा हो ही नहीं सकता। तभी तो कबीर कहते हैं।

*कबीर संगति साधु की, कदे न निरफल होइ।*

*चंदन होसी वाँवना, नीब न कहसी कोइ।<sup>83</sup>*

सत्संगप्रेमी होने का परिणाम यह निकलता है कि फिर वह व्यक्ति लाख असज्जनों एवं अशिष्ट लोगों के साथ घूमे फिरे परंतु फिर भी उसके ऊपर उन सब की कुरीतियों, कुप्रवृत्तियों का तनिक भी असर नहीं होता, क्योंकि कबीर की दृष्टि में वह उस समय ‘संत’ की पदवीं को पहुँच जाता है। जिस तरह चंदन के वृक्ष पर चाहे जितने भी विषैले सर्प बैठे हों किन्तु फिर भी चंदन के सुगंधत्व पर उसका

तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता। कहने का तात्पर्य है कि व्यक्ति को चंदन सरीखा बनना चाहिये; इसीलिये तो कबीर पुकार उठते हैं-

संत न छाड़ै संतई, जे कोटिक मिलै असंत।

चंदन भुवंगा बैठिया, तऊ सीतलता न तजंत।।<sup>84</sup>

### प्रेम-पुजारी

कबीर प्रेमोपासक थे। जब वे प्रेमी की तलाश में निकलते हैं तो उन्हें कोई प्रेमी दृष्टिगोचर नहीं होता, लेकिन जब कबीर प्रेम पुजारी को अपने जैसा प्रेम-उपासक मिल जाता है उस दशा में कबीर-कबीर न रहकर प्रेम-विभोर हो जाते हैं-

प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौ, प्रेमी मिलैं न कोइ।

प्रेमी को प्रेमी मिलैं, तब सब विष अमृत होइ।।<sup>85</sup>

प्रेम-पथ पर चलना हर किसी के वश की बात नहीं है क्योंकि इसमें व्यक्ति को आत्मवलिदान भी करना पड़ता है। कबीर का प्रेम भी कुछ इसी तरह का है जिसमें कबीर प्राणों के उत्सर्ग की बात करते हैं-

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाँहि।

सीस उतारै हाथ करि, सो पैसे घर माँहि।।<sup>86</sup>

यहाँ आकर कबीर के व्यक्तित्व का अक्खड़पन, क्रांतिकारी रूप विलुप्त होकर सुकोमलता में परिणत हो जाता है जिस तरह एक सौभाग्यवती स्त्री अपने प्रेमीपति के प्रेम में पगकर अपने अस्तित्व को खो बैठती है। तभी कबीर की स्त्री रूपी आत्मा की वाणी प्रस्फुटित होती है-



कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरष्या आइ।

अंतरि भीगी आत्मौ, हरी भई बनराइ।<sup>87</sup>

### यात्राएँ

कबीर समाज-सुधारक थे। समाज में व्याप्त विकृतियों, कुरीतियों के परिष्करण हेतु समाज-सुधारक को किसी विशेष भू-भाग तक सुधार करना नहीं होता अपितु उसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना पड़ता है। इस स्थानांतरण को ही यात्रा कहते हैं। कबीर ने भी समाज को परिशोधित एवं परिवर्तित करने के लिये पर्याप्त यात्राएँ कीं। वे जहाँ जाते थे वहाँ जाकर उसी सभ्यता और संस्कृति को हृदयंगमकर उसी शैली एवं बोली के अनुरूप अपनी बात को लोगों के समक्ष प्रस्तुत कर देते थे। उनकी इसी विशिष्टता ने उन्हें एक जागरूक एवं युग चेता प्रचारक बना दिया था।

कबीर ने जीवन पर्यंत यात्राएँ की थीं। उनकी यात्राओं को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। श्री वैस्टकॉट जी कबीर की दक्षिण में नर्मदातट तक की यात्रा का उल्लेख करते हैं।<sup>88</sup> जे०ई० कार्पेन्टर लिखते हैं कि कबीर ने वृंदावन तथा जगन्नाथपुरी की यात्राएँ नहीं की थीं परन्तु भारत में उन्होंने बहुत भ्रमण किया था। दक्षिण में वे नर्मदा तट तक गये।<sup>89</sup> गुजराती विद्वान श्री ब०क० ठाकोर, प्रो० के०एम० कापाडिया, श्री जेठालाल त्रिवेदी तथा श्री जनक दुवे ने नर्मदातट पर कबीर साहब के आगमन का तथा उनके द्वारा सूखे वृक्ष के सजीव होने की कथा को स्वीकारा है। आचार्य क्षिति मोहन सेन ने भी कबीर की गुजराती यात्रा को असंदिग्ध ठहराया है।<sup>90</sup>

यहाँ हम विद्वानों के विवादों में न पड़कर यह कहें कि कुछ भी हो

कबीर ने अपने जीवन काल में समाज-सेवी होने के नाते देशाटन एवं यात्राएँ कीं थीं तो संदेह नहीं होना चाहिए।

कबीर वस्तुतः अन्तःकरण में व्याप्त विकारों के शुद्धीकरण पर पर्याप्त बल देते हैं जिसके लिये वे तीर्थ-यात्राएँ भी करते हैं लेकिन उन्हें वहाँ भी लोगों से यही शिकायत बनी रही कि पवित्र तीर्थ-स्थलों पर आकर भी उनका अन्तर्मन तनिक भी नहीं बदला प्रत्युत वैसा का वैसा ही बना रहा। इसलिये वे कहते हैं-

मन मथुरा दिल द्वारिका कावा कासी जांणि।

दसवाँ द्वारा देहरां तामैं जोति पिछांणि॥<sup>91</sup>

एक स्थान पर और भी स्पष्ट करते हुए कहा है-

मोकों कहाँ ढूँढे बन्दे मैं तो तेरे पास में।

+	+	+	+	+	+
+	+	+	+	+	+

खोजी होय तो तुरतैं मिलिहौं, पल भर की तलाश में।

कहै कबीर सुनौ भाई साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में॥<sup>92</sup>

उपर्युक्त साखी एवं पदावली से यही विदित होता कि कबीर ने देशाटन, तीर्थ यात्राएँ तो खूब की थीं। परन्तु ऐसे स्थानों पर आकर भी यदि लोगों के हृदय में विकार अपने यथावत् रूप में बने रहें, ऐसे तीर्थ-स्थलों से कबीर का विरोध न होकर मनुष्य की कुरीतियों एवं अशिष्टता से बैर है।

### कबीर का रचना संसार

कबीर के बारे में प्रायः सभी विद्वान इस बात से तो सहमत हैं कि

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे। उन्होंने जो कुछ भी कहा उसे अपने अन्तःकरण की तुला पर तौलकर प्रस्तुत किया। उन्हें किसी बाह्य उपकरणों- कागज, लेखनी, स्याही इत्यादि का सहारा नहीं लेना पड़ा अपितु अपने अनुभव के आधार पर निसंकोच भाव से स्पष्ट कर दिया। कबीर द्वारा प्रस्फुटित वाणी, वचनों को उनके शिष्यों द्वारा बाद में लिपिबद्ध एवं सुरक्षित कर लिया गया ऐसा विद्वानों का अभिमत है। इसलिये कबीर के विषय में यह कहना कि कबीर द्वारा लिखित ग्रंथ अमुक है अमुक है उचित जान नहीं पड़ता। कबीर के शिष्य एवं अनुयायी भी यही मानते हैं कि सद्गुरु की वाणी अनंत है।

कबीर ने कहीं भी अपने को पढ़ा-लिखा नहीं कहा। जैसा कि उल्लेख है-

मसि कागद छुओ नहीं, कलम गही नहिं हाथ।

चारिउ जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात।।<sup>23</sup>

कबीर तो लिखी हुई पर भरोसा न कर स्वानुभूति सत्य को उद्घाटित करने के पक्ष में हैं। वे शास्त्रीय ज्ञान के स्थान पर व्यावहारिक ज्ञान पर बल देते हैं। यथा-

तू कहता कागद की लेखी।

मैं कहता हौं आंखिन की देखी।।<sup>24</sup>

कबीर को इस बात ने भी कभी लालायित एवं लोलुप नहीं बनाया कि उनकी वाणियों को लोग लिख लें और उन्हें संपादित या प्रकाशित रूप दें। कबीर की तो मूल चिंता यही रही कि अधिक से अधिक लोगों का वे कल्याण कर सकें, उन्हें भवसागर से पार उतार सकें। इसके लिये कबीर की अन्तःआत्मा में एक ईश्वरीय

ध्वनि झंकृत हो उठती है जो साखी में आकर रूप पाती है-

हरिजी यहै विचारिया, साषी कहौ कबीर।

भौसागर में जीव है, जे कोई पकड़ै तीर।।<sup>95</sup>

कबीर के रचना संसार या कृतित्व को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। यहाँ पर हम कबीर के कृतित्व को लेकर दो दृष्टियों से विचार करेंगे। प्रथम दृष्टि में उन रचनाओं को लिया जायेगा जो कबीर कृत मानी जाती हैं, और द्वितीय दृष्टि में उन ग्रंथों को लिया जायेगा जिसमें विद्वानों ने कबीर की साखी, सबद(शब्द, पद, पदावली) और रमैणियों (रमैनियां) को संकलित एवं संग्रहीत कर संपादन किया है।

### प्रथम दृष्टि

इस दृष्टि के अन्तर्गत वे रचनायें आती हैं जिन्हें मनीषी, विद्वान कबीर कृत मानते हैं। प्रो० एच०एच० विल्सन(सं० 1903) ने कबीर की केवल आठ रचनाओं के नाम दिये हैं। पादरी रे० वेस्टकॉट (सं० 1966) ने इस संख्या को बढ़ाकर ब्यासी तक पहुँचा दिया। इसमें उन्होंने 'अलिफनामा', 'बीजक' के तीन संस्करण- 'कबीर कसौटी', 'कबीर मंसूर', 'कबीरोपासना पद्धति' और 'कबीर चरित्र बोध' को भी सम्मिलित कर लिया। इन चार रचनाओं का संबंध या तो कबीर की जीवनी से है या फिर पंथ की उपासना पद्धति से।

मिश्रबंधुओं ने 'हिन्दी नवरत्न' में कबीर की रचनाओं की संख्या पचहत्तर मानी है।

स्वर्गीय रामदास गौड़ ने अपने 'हिन्दुत्व' में इकहत्तर पुस्तकों की सूची दी है। प्रो० विल्सन और गौड़ की सूचियों के सभी ग्रंथ 'हिन्दी नवरत्न' में आ गये हैं।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपनी पुस्तक 'संत कबीर' की प्रस्तावना में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों के आधार पर ऐसे ग्रंथों की एक तालिका तैयार की जिसमें 68 ग्रंथ हैं। गौड़ की सूची में भी 68 ग्रंथों का उल्लेख है। डॉ० वर्मा और गौड़ साहब की सूची के सामान्य नाम इस तरह हैं। 'अठपहरा', 'अनुरागसागर', 'अमरमूल', 'अर्जनामा', 'अलिफनामा', 'अक्षरखण्ड की रमैनी', 'अक्षरभेद की रमैनी', 'आरती', 'उग्रगीता', 'उग्रज्ञान', 'मूलसिद्धांत', 'कबीर और धर्मदास की गोष्ठी', 'कबीर की बानी', 'कबीर अष्टक', 'कबीर गोरखगोष्ठी', 'कबीर जी की साखी', 'कबीर परिचय की साखी', 'कर्मकांड की रमैनी', 'कायापांजी', 'चौका पर की रमैनी', 'चौतीसा', 'छप्पय', 'जन्मबोध', 'तीसामंत्र', 'नाम महातम की साखी', 'निर्भयज्ञान', 'पिय पहचानवै को अंग', 'पुकार', 'बारामासी', 'बीजक', 'ब्रह्मनिरूपण', 'भक्ति का अंग', 'रमैनी', 'रामरक्षा', 'रामसार', 'रेखता', 'विचारमाला', 'विवेकसार', 'शब्द अलहतुक', 'शब्द वंशावली', 'संत कबीर', 'बदीछोर', 'सतनामा', 'साधौ कौ अंग', 'द्विडौरा', 'हंसमुक्तावली', 'ज्ञान गूदड़ी', 'ज्ञान सरोदय', 'ज्ञान सागर', 'ज्ञान सबोध', 'ज्ञान स्त्रोत'।

### द्वितीय दृष्टि

इस दृष्टि के अन्तर्गत कबीर वाङ्मय विषयक वह सामग्री है जिसे विद्वानों ने संकलित कर संपादित किया है, जो प्रामाणिकता की दृष्टि से संदिग्ध एवं असंदिग्ध है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थवाल, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी एवं डॉ० सरनाम सिंह शर्मा इत्यादि विद्वान डॉ० श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित 'कबीर प्रथावली' को ही सर्वाधिक प्रामाणिक मानने के पक्ष में हैं।

डॉ० पीताम्बरदत्त बड़धवाल (सं० 1993) ने अपने ग्रंथ- 'दी निर्गुण स्कूल ऑफ हिन्दी पोइट्री' में श्री वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित है जो युगलानंद द्वारा संपादित 'कबीर-सागर' एवं 'बोध-सागर' नामक ग्यारह भागों में संग्रहीत है। इसके बाद उन्होंने 'सुख निधान' और 'अनुराग सागर' जैसे कतिपय अन्य ग्रंथों पर भी विचार किया है। जिसमें आचार्य क्षितिमोहन सेन द्वारा शांति निकेतन से प्रकाशित कबीर साहब के पदों का संग्रह है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सन् 1971 में अपने ग्रंथ 'कबीर' में उन्हीं ग्रंथों को आधार बनाया है जिनका उल्लेख एवं उपयोग उन्होंने अधिकता के साथ किया है। उन ग्रंथों में -'बीजक' डॉ०श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित- 'कबीर ग्रंथावली', अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा संपादित 'कबीर वचनावली' और बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित- 'कबीरदास की शब्दावली' है। इनमें 'बीजक' और डॉ० श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित- 'कबीर ग्रंथावली' को ही वे सर्वाधिक उपयोग में लाये हैं। वे बीजक के संबंध में लिखते हैं- "जो हो बीजक कबीरदास के मतों का पुराना और प्रामाणिक संग्रह है; इसमें संदेह नहीं।"<sup>96</sup>

डॉ० दास की संपादित 'कबीर ग्रंथावली' के विषय में भी उन्होंने अपना मत व्यक्त किया है। "इस पुस्तक को एकमात्र प्रामाणिक ग्रंथ स्वीकार किया जा सकता है, तथापि इसमें जितने पद हैं वे तो निश्चय ही प्रामाणिक होंगे।"<sup>97</sup>

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि कबीर के पदों को तो द्विवेदी जी प्रामाणिक मानते हैं परन्तु साखी के विषय में उनका कथन स्पष्ट परिलक्षित नहीं होता ऐसा प्रतीत होता है कि साखियों में उन्हें कहीं न कहीं संदेह है उनकी प्रामाणिकता

को लेकर आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने आचार्य द्विवेदी जी पर यह आक्षेप लगाया कि उन्होंने 'मूलग्रंथों'<sup>98</sup> का स्पष्ट परिचय नहीं दिया।

श्री पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव 'बानी', 'आदिग्रंथ' और 'बीजक' इन तीन ग्रंथों को मान्यता देते हुये लिखते हैं कि ये तीनों अपने प्रबंधन और भाषा द्वारा कबीर की वाणियों की तीन मुख्य परंपराओं या शाखाओं की सूचना देते हैं- उत्तरी, पश्चिमी और पूर्वी।<sup>99</sup> श्रीवास्तव जी इन कृतियों को कबीर कृत नहीं मानते। वे आगे कहते हैं "इन तीनों में से कोई भी कबीर की कृति नहीं है।"<sup>100</sup>

डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत ने सन् 1942 में अपने ग्रंथ 'कबीर की विचारधारा' में डॉ० श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित- 'कबीर ग्रंथावली', और डॉ० रामकुमार वर्मा की 'संत कबीर' को कबीर की वाणियों के प्रामाणित ग्रंथ मानते हुये लिखा है कि "प्रामाणिकता की दृष्टि से वे ही रचनायें कुछ विश्वसनीय मानी जा सकती हैं जो कबीर के युग की हों या उनके मृत्युकाल के कुछ वर्ष बाद की प्रतिलिपि हों। इस दृष्टि से कबीर की वाणियों के प्रकाशित संग्रहों में 'कबीर ग्रंथावली' और 'संत कबीर' ही प्रामाणिक माने जा सकते हैं।"<sup>101</sup>

डॉ० पारसनाथ तिवारी द्वारा संपादित 'कबीर ग्रंथावली' सन् 1961 में प्रकाशित हुई, जिसके तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में भूमिका है और द्वितीय में कबीर-वाणी का निर्धारित पाठ है। भूमिका में डॉ० तिवारी ने कबीर के नाम से प्रसिद्ध अनेक ग्रंथों को तीन वर्गों में बांटा है। प्रथम में कबीर के नाम से प्रचलित अन्य संप्रदायों के ग्रंथ हैं; द्वितीय में कबीर के नाम पर कबीरपंथियों की परवर्ती रचनायें हैं और तृतीय में प्रमुख आधारभूत सामग्री है। डॉ० तिवारी ने अपने ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली'

में कबीर की वाणी का जो पाठ निर्धारित किया है उसमें उन्होंने आठ शाखाओं की 17 प्रतियों को आधार स्वरूप उपयोग किया है- 5 प्रतियाँ दादूपंथी शाखा की, दो शब्दावलियों की, तीन साखियों की, एक सर्वांगी की, एक गुणगंजनामा की, और एक आचार्य क्षितिमोहन सेन की (आंशिक रूप में)।

अधिकांश विद्वानों ने 'कबीर बीजक' को ही अधिक प्रामाणिक माना है यद्यपि इसमें कुछ ऐसे अंश हैं जो बाद के हैं जैसे- कहरा, बिरहुली आदि। आचार्य द्विवेदी ने इसकी प्रामाणिकता को लेकर कहा है "जो हो मेरी धारणा है कि बीजक में कुछ अंश अवश्य बाद के हैं..... जो हो, बीजक कबीरदास के मतों का पुराना और प्रामाणिक संग्रह है, इसमें संदेह नहीं।"<sup>102</sup>

इसी क्रम में डॉ० श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित 'कबीर ग्रंथावली' है जिसमें कबीर की साखी, सबद (पद, पदावली) और रमैणियाँ हैं। जो प्रामाणिकता की दृष्टि से असंदिग्ध हैं। परन्तु इसका प्रकाशन जिस कृति को आधार बनाकर हुआ है वह कृति कबीर की मृत्यु के चौदह वर्ष पूर्व की है। इन वर्षों में कबीर ने जो कुछ कहा वह सामग्री इस ग्रंथावली में प्रकाशित न हो सकी। लेकिन जितनी भी है यह तो निश्चित ही प्रामाणिक है। आचार्य द्विवेदी का कथन स्पष्ट ही है "कबीर ग्रंथावली का प्रकाशन जिस प्रति के आधार पर हुआ है वह कबीरदास की मृत्यु के 14 वर्ष पहले की लिखी हुई है। यदि यह बात सत्य है तो पुस्तक की प्रामाणिकता बहुत बढ़ जाती है।"<sup>103</sup>

कबीर वाङ्मय को लेकर विद्वानों ने संपादन कार्य किये हैं उनमें डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र, डॉ० रामकिशोर शर्मा एवं डॉ० वासुदेव सिंह, जयदेव सिंह



इत्यादि का नामोल्लेखनीय है। सन् 1998 ई० में आचार्य महंत गंगाशरण शास्त्री द्वारा संपादित 'महाबीजक'<sup>104</sup> के नाम से एक बड़ा ग्रंथ प्रकाशित हुआ है जिसमें 'गुरुग्रंथ' एवं सिख-शिष्य पंथों के सारे आस्था वचन एकत्रित हैं।

अंततः कहा जा सकता है कि कबीर ने किसी रचना विशेष को लेकर काव्य सृजन नहीं किया बल्कि उनकी मुख गगरी से जो वाणी प्रस्फुटित हुई उसे उनके शिष्यों द्वारा लिपिबद्ध या सुरक्षित कर लिया गया जिसका प्रामाणिक दस्तावेज 'कबीर बीजक' है। और डॉ० श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित 'कबीर ग्रंथावली' भी प्रामाणिकता की दृष्टि से असंदिग्ध है। वस्तुतः कबीर का वाङ्मय अनंत एवं असीम ही होगा क्योंकि उन्होंने अपने इष्टदेव (ईश्वर) की प्रशस्ति में जितना भी कहा है वह उनके लिये कम ही लगता है। जैसा कि इस बात को कबीर की साखी पुष्ट कर सकेगी-

*सात समैंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।*

*धरती सब कागद करौं, तऊ हरि गुण लिख्या न जाइ।।<sup>105</sup>*

### भाषा-शैली

कबीर की अनेक अन्य समस्याओं की तरह उनकी भाषा को लेकर भी विद्वानों में विवाद हैं। विद्वानों ने इस विषय में अपने-अपने मत व्यक्त किये हैं। रेमरेड अहमद शाह ने कबीर के बीजक के संबंध में अपना मत दिया है कि इसकी भाषा 'बनारस, मिर्जापुर एवं गोरखपुर के आस-पास की बोली है।' विचारदास शास्त्री ने इसकी भाषा को 'ठेठ प्राचीन पूर्वी' बताया। विद्वान् दोनों मतों से सहमत नहीं है।

कतिपय विद्वानों ने इस विषय पर वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया है। आचार्य शुक्ल लिखते हैं-साखी की भाषा सुधक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी पंजाबी मिली

खड़ी बोली है, पर रमैनी और सबद में गाने के पद हैं, जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली का भी व्यवहार है। डॉ० बाबू श्यामसुंदरदास ने इस भाषा को 'पंचमेल खिचड़ी' बताया। डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपनी पुस्तक 'संत कबीर' में लिखा "इसकी भाषा ठेठ प्राचीन पूर्वी है।" यह मत विचारदास शास्त्री से मिलता है अतः यह उनकी मौलिकता नहीं है।

कबीर की भाषा को लेकर कुछ भाषा शास्त्रियों ने भी अपने अभिमत प्रस्तुत किये हैं। डॉ० उदय नारायण तिवारी लिखते हैं "कबीर की मूलवाणी का बहुत कुछ अंश उनकी मात्रभाषा बनारसी बोली में लिखा गया था।" डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी की मान्यता है कि "कबीर की रचना में मुख्यतः ब्रजभाषा मिलती है लेकिन उसमें कोसली या पूर्वी हिन्दी का कुछ-कुछ मेल पाया जाता है और खड़ी बोली का रूप भी यथेष्ट में मिलता है।"

उपर्युक्त सभी मतों में से डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी का मत वैज्ञानिक है ऐसा डॉ० एल०बी० राम अनंत का मानना है। वे स्पष्ट कहते हैं। "इन सभी मतों में डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी का मत वैज्ञानिक है।"<sup>106</sup>

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार "कबीर साहब किसी भाव को व्यक्त करते समय उसमें इतना तल्लीन हो जाते हैं कि उनका प्रत्येक शब्द सारगर्भित एवं रहस्यपूर्ण बनकर प्रकट होता है और उनके द्वारा उचित वाक्यों में व्याप्त भाव श्रोताओं अथवा पाठकों के रोम-रोम में शीघ्र प्रवेश कर उन्हें सहसा वशीभूत कर लेते हैं।"<sup>107</sup>

आचार्य द्विवेदी की मान्यता है कि "वे पढ़े-लिखे नहीं थे।.....

संस्कृत के 'कूप जल' को छुड़ाकर उन्होंने भाषा के 'बहते नीर' से सरस्वती का स्नान कराया उनकी भाषा में बहुत सी बोलियों का मिश्रण है।"<sup>108</sup>

कबीर ने अवधी भाषा का भी समयानुसार उचित प्रयोग किया है। इसी कारण डॉ० बाबू राम सक्सेना कबीर को अवधी भाषा का प्रथम संत कवि मानते हैं।<sup>109</sup>

डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत ने कबीर की भाषा में निम्नलिखित विशिष्टताओं का उल्लेख किया है।<sup>110</sup>

1. इसमें पंजाबीपन बहुत है।
2. भोजपुरी भाषा के संज्ञा, क्रिया रूप की प्रचुरता मिलती है।
3. खड़ीबोली की कहीं-कहीं प्रचुरता है।
4. भाषा का रूप अधिकतर विषय और भाव के अनुरूप है।
5. कबीर की भाषा में प्रांतीय भाषाओं के शब्दों के मेल हैं।
6. वह अत्यन्त सरल एवं सुबोध है।
7. उसमें किसी भाषा के नियमों का पालन नहीं किया गया है।

कबीर की भाषा वस्तुतः कई बोलियों या भाषाओं का मिश्रित रूप है। इस आधार पर यदि उसे 'पंचमेल खिचड़ी' कहा जाता है तो संदेह नहीं होना चाहिये क्योंकि कबीर ने जीवन भर देशाटन किया था जिसके फलस्वरूप वे जहाँ और जिस परिवेश में गये उन्होंने सर्वप्रथम उस वातावरण की सभ्यता और संस्कृति को ध्यान में रखते हुये अपनी भाषा को गढ़ लिया। और बड़े कवि की यही पहचान होती है कि वह जहाँ जाता है उसी के अनुरूप अपनी भाषा का रूप रच लेता है, यही बात

हमें कबीर में देखने को मिलती है। उनके काव्य में जिन बोलियों एवं भाषाओं का प्रभाव है उन्हें कुछ उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। यथा-

**ब्रजभाषा-**

1. मेरो मन लागौ तौहि रे।
2. कौन पूत को काकौ बाप।
3. लेट्यो भोमि बहुत पछितान्यौ।

**राजस्थानी-**

1. क्या जाणौ उस पीव कूँ कैसे रहसी रंग।
2. बीछड़िया मिलिबौ नहीं ज्यों काचुली भुवंग।
3. जीभड़ियाँ छाला पड़या।

**खड़ीबोली-**

1. आऊँगा न जाऊँगा मरूँगा न पीऊँगा।
2. तू तू करता तू भया, मुझमें रही न हूँ।
3. करणीं कियो करम का नास।

**अवधी-**

1. जस तू तस तोहीं कोई न जान।
2. पकरि बिलारी मुरगी खाई।
3. तू पंडित का कथसि गियाना।

**भोजपुरी-**

फूल भल फूलल भलिन भल गाँथल।

फलवा बिनसि गैल भौरा निरासल।।

कबीर ने एक स्थान पर अपनी बोली पूरबी बताते हुये कहा है-

मेरी बोली पूरबी, ताइ न चीन्है कोइ।

मेरी बोली सो लखै, जो पूरब का होइ।।<sup>111</sup>

डॉ० यज्ञ प्रसाद तिवारी ने कबीर की भाषा के पाँच रूप- 1. दृष्टांत प्रधान भाषा 2. सांकेतिक 3. उपदेशात्मक 4. मनोवैज्ञानिक 5. लोकबोधात्मक भाषा मानते हुये अपना मत व्यक्त किया है कि “इन पाँचों आध्यात्मिक भाषा विधियों के प्रयोग से वे अतीत से पृथक, भविष्य के सचेतक और वर्तमान प्रमुख वक्ता बन जाते हैं। घटित-अघटित, खालिक-खलक और लिखित-अनुभूत के प्रमाणक कवि के रूप में कबीर की ख्याति आज भी युगान्तकारी है।”<sup>112</sup>

जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं और अधिक स्पष्ट करें तो कह सकते हैं कि कबीर भाषा को अपने अनुकूल बनाने में पूर्ण सक्षम एवं सिद्धहस्त हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है “भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में कहलवा लिया,- बन गया तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कबीर के सामने कुछ लाचार सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाहीं कर सके।”<sup>113</sup>

जिस प्रकार कबीर की भाषा सर्वथा उनके भावों एवं विचारों के अनुकूल है, ठीक उसी प्रकार उनकी शैली भी। कबीर की शैली में उनके व्यक्तित्व की छाप को वखूबी देखा जा सकता है। उसमें उनका अक्खड़, मस्तमौला, अटपटी बातें और

सच्चाई को पूरी यथार्थता के साथ व्यक्त करने वाले उनके दग्धभेदी एवं तिलमिला देने वाले व्यंग्य वाणों की बोछारों के प्रतिबम्ब देखने को मिलते हैं।

कबीर की भाषा-शैली के अन्तर्गत उनकी उलटबासियों की अपनी एक निजी पहचान है। उनकी उलटबासियों पर प्रायः सिद्धों, नाथों, बौद्धों आदि का प्रभाव रहा है किन्तु कबीर की भाषा नाथों से अभिन्न रही है। डॉ० सरनाम सिंह शर्मा का कहना है कि “यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सिद्धों और नाथों की वाणी से कबीर की वाणी का अटूट संबंध रहा है।..... इसीलिये भाषा और शैली तक में इन्हीं का अनुकरण है, इन्हीं ही की छाप है। यद्यपि सिद्धों की भाषा कबीर की भाषा से बहुत भिन्न है, फिर भी भाषा की जो प्रवृत्ति है वह कबीर की भाषा में मिलती है; किन्तु गोरखनाथ की भाषा तो कबीर के बहुत निकट प्रतीत होती है।”<sup>114</sup>

वस्तुतः जिन्हें ‘उलटबासी’ कहा जाता है उसका क्या अर्थ है इसे जानाना भी अपेक्षित है। मानीषी, विद्वानों ने उलटबासियों के अपने-अपने ढंग से भिन्न-भिन्न अर्थ निर्धारित किये हैं। कोई उसे उलटी बात, कोई उलटा कथन, विपर्यय, संध्या भाषा, उलटी रीति, उलटा मंत्र, गोरखधंधा, उलटा बाउल, अटपटी बानी इत्यादि से निरूपित करते हैं।

डॉ० रमेशचन्द्र मिश्र<sup>115</sup> ने उलटबासी के कुछ तत्त्वों एवं विशेषताओं को निर्धारित किया है-

तत्त्व- 1. विरोधाभासमयी असम्बद्ध पद-योजना 2. प्रतीक प्रधान शब्द-वैचित्र्य 3. साधनात्मक अथवा वैचारिक अनुभूति।

विशेषताएँ- 1. विचित्र प्रकार की अभिदा का होना 2. प्रायः संबोधन का होना 3.

चुनौती जैसा स्वर 4. बूझे-बूझहु, विचारै, अरथावै आदि क्रियापदों का प्रयोग 5. पारिभाषिक एवं सांकेतिक प्रतीकमयी शब्द योजना 6. प्रयोक्ता की आत्मविश्वासमयी ध्वनि 7. विस्मय दृष्टि 8. प्रतिपक्ष की कल्पना 9. लोकमार्ग का व्यतिक्रम 10. गेयत्व की प्रधानता 11. रूपक तत्व की योजना 12. व्यंग्य एवं वक्रता की विशेष चमक आदि।

उपर्युक्त तत्वों एवं विशेषताओं के आधार पर कबीर के काव्य में उलटबासियों के स्वरूप को देखा-परखा जा सकता है लेकिन विद्वानों ने कबीर की उलटबासियों को तीन भागों में विभक्त किया है- 1. अलंकार प्रधान 2. अद्भुत प्रधान 3. प्रतीकात्मक प्रधान।

### 1. अलंकार प्रधान उलटबासियाँ

इन उलटबासियों में विरोधमूलक और असंगत बातें प्रधान होती हैं। इनमें प्रयुक्त अलंकार भी विरोधमूलक होते हैं, जिनमें- विरोधाभास, असंभव, विभावना, असंगति, विषय आदि होते हैं। उदाहरणार्थ-

**विरोधाभास-**      जे काटौ तो उहडही, सींचौ तो कुम्हलाइ।<sup>116</sup>

**विभावना-**      बिन मुख खाइ चरन बिनु चालै, बिन जिभ्यागुण गावै।

आछै रहै ठौर नहीं छोड़े, दह दिसिहिं फिरि आवै।<sup>117</sup>

### 2. अद्भुत प्रधान उलटबासियाँ

इन उलटबासियों में 'अद्भुत एवं विचित्र बातों का समावेश होता है। कबीर की उलटबासियाँ उनकी गहन-अनुभूति, सूक्ष्म निरीक्षण को प्रतीकित करती हैं।

उदाहरणार्थ-

एक अचंभा देखा रे भाई, ठाड़ा सिंह चरावै गाई।

पहले पूत पीछे भई माई, चेला के गुरु लागै पाइ।।<sup>118</sup>

इन उलटबासियों के भावार्थ को समझने में प्रायः कठिनाई होती है।

### 3. प्रतीकात्मक प्रधान उलटबासियाँ

इन उलटबासियों में कबीर ने साधना के निगूढ़ रहस्यों को उद्घाटित किया है। इनमें कहीं रूपक प्रधान है तो कहीं प्रतीक। उदाहरणार्थ-

**रूपक प्रधान-**

कैसे नगरि करौ कुटवारी, चंचल पुरिष विचषन नारी।

बैल बियाइ गाई भई बाँझ, बछरा दूहै तीनों साँझ।।

मकड़ी धरी भाषी छछिहारी, माँस पसारि चील्ह रखबारी।।

मूसा खेवट नाव बिलइया, मीटुक सोवै साँप पहरइयाँ।।

निति उठि स्याल स्यंध सँ झूझै, कहै कबीर कोई बिरला बूझै।।<sup>119</sup>

**प्रतीक प्रधान-**

है कोई जगत गुरु ग्यानी, उलटि बेद बूझै।

पांणी में अगनि जरै, अंधेरे को सूझै।।

एकनि दादुर खायै, पंच भावंगा।

गाइ नाहर खायौ, कीट अंगा।

बकरी बिघार खायौ, हरनि खायौ चीता।



कागिल गर फांदिया, बटेरे बाज जीता।।

मूसै मंजार खायौ, स्यालि खायी स्वानां।

आदि कौ आदेश करत, कहै कबीर ग्याना।।<sup>120</sup>

अतः कहा सकता है कि कबीर अवसरानुकूल एवं प्रसंगानुकूल जिस भाषा को अनायास गढ़ लेने की अपूर्व क्षमता रखते हैं उसी प्रकार उनकी शैली में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, नैतिक, लौकिक एवं पारलौकिक अनुभूतियों की रहस्यात्मक धारायें प्रवाहित होती हुई दृष्टिगोचर होती हैं।

#### संदर्भ:-

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1971, पृ० 292
2. वही पृ० 324
3. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास-कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2041 विक्रमी, पन्द्रहवाँ संस्करण, पृ० 44
4. वही पृ० 70
5. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास कबीर ग्रंथावली, पृ० 54
6. सं० अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कबीर वचनवली ना०प्र० सभा, काशी, 11वाँ संस्करण संवत् 2015 वि० पृ० 91,92,93
7. परशुराम चतुर्वेदी कबीर साहित्य की परख, भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, संवत् 2011, पृ० 268
8. परशुरामचतुर्वेदी कबीर साहित्य की परख पृ० 268
9. सं० डॉ० श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ०, 13-14
10. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 34वाँ संस्करण, सं० 2056 वि० पृ० 42
11. अनु० परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी काव्य में निर्गण संप्रदाय, अवध पब्लिशिंग हाउस लखनऊ 2007 वि०

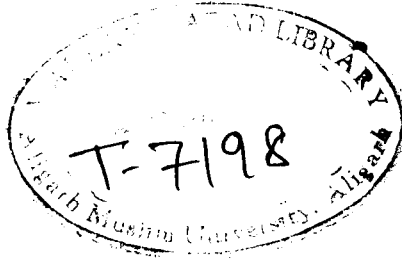
12. आचार्य हिजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य पृ० 77
13. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य की परख, पृ० 259
14. आर्कियोलौजीकल सर्वे ऑफ इंडिया न्यू सीरीज नार्थ वैस्टर्न प्राविंसेज, भाग 2 पृ० 224
15. डॉ० धर्मवीर, कबीर के आलोचक, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1998, पृ० 24
16. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 17
17. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 97
18. वही पृ० 100
19. डॉ० रामकुमार वर्मा, संत कबीर, साहित्य भवन प्रा०लि० इलाहाबाद, चतुर्थ आवृत्ति 1957 ई० रागु आसा 26, पृ० 116
20. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 220
21. वही पृ० 173
22. वही पृ० 135
23. वही पृ० 212
24. डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 17
25. डॉ० पीताम्बरदत्त बडधवाल, निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पौइट्री, पृ० 250-251
26. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० 25
27. डॉ० रामकुमार वर्मा, संत कबीर, पृ० 61
28. डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, कबीर की विचार धारा, साहित्य निकेतन, कानपुर, प्रथम संस्करण, संवत् 2009 पृ० 36
29. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 203
30. वही पृ० 246
31. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 16
32. कबीर कसौटी, भाई लहना सिंह, पृ० 13
33. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 236
34. डॉ० सरनाम सिंह शर्मा, कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांत, भारतीय शोध संस्थान, गुलाबपुरा, राजस्थान, 1969 पृ० 25
35. सं० रामकिशोर शर्मा, कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2002, पृ० 2
36. डॉ० भोलानाथ तिवारी, कबीर और उनका काव्य, राजकमल प्रकाशन, प्रा०लि०, दिल्ली,

- 1962, पृ० 31
37. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 209
  38. डॉ० भोलानाथ तिवारी, कबीर और उनका काव्य, पृ० 36
  39. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 21
  40. डॉ० रामकुमार चर्मा, संत कबीर(प्रस्तावना) पृ० 72
  41. डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, शोध प्रबंध, आगरा विश्वविद्यालय, 1961, पृ० 28
  42. डॉ० भोलानाथ तिवारी, कबीर और उनका काव्य, पृ० 36
  43. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 123
  44. वही पृ० 232
  45. डॉ० मोहन सिंह, कबीर: हिज बायोग्राफी, पृ० 32
  46. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 21
  47. वही पृ० 200
  48. सं० रामकुमार शर्मा, कबीर ग्रंथावली, लोक भारती प्रकाशन 15 ए, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद प्रथम संस्करण, 2002, पृ० 5
  49. डॉ० रामकुमार वर्मा, संतकबीर(प्रस्तावना, जीवन वृत्त) पृ० 72
  50. Kshitimohan Sen, Hinduism, page 99
  51. डॉ० सरनामसिंह शर्मा, कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांत, भारतीय शोध संस्थान, गाँधी शिक्षण समिति, गुलाबपुरा, प्रथम संस्करण, 1969 पृ० 32
  52. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य चिंतन, स्मृति प्रकाशन, 61 महाजनी टोला, इलाहाबाद, 1970, प्रथम संस्करण, पृ० 131-132
  53. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 207
  54. सं० हरदास शास्त्री, कबीर बजीक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन, महावीर प्रसाद समिति मु० पो० हरक, बाराबंकी, पृ० 68
  55. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 253
  56. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 96
  57. वही पृ० 3
  58. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य चिंतन, स्मृति प्रकाशन, 61 महाजनी टोला, इलाहाबाद, 1970, प्रथम संस्करण, पृ० 132
  59. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 20

60. परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परंपरा, भारती भंडार लीडर इलाहबाद-संवत् 2021 वि० पृ०-174
61. वही पृ० 175
62. डॉ० सरनाम सिंह शर्मा, कबीर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धांत, भारतीय शोध संस्थान, गुलाबपुरा, राजस्थान, प्रथम, संस्करण, 1969-पृ०-76
63. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ०-51.
64. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ०-29
65. वही पृ०-49
66. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ०-177
67. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास-ग्रं०, पृ०-30
68. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ०-226
69. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ०-34
70. वही पृ०-34
71. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ०-82
72. वही पृ०-203
73. सं० डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, कबीर राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा० लि० 2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, 7वीं आवृत्ति 1999, पृ० 246
74. डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 45
75. वही पृ०-46
76. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ०-44
77. डॉ० भोलानाथ तिवारी, कबीर और उनका काव्य, पृ० 45
78. सं० डॉ० जयदेव सिंह व डॉ० वासुदेव सिंह, कबीर वाङ्मय, खण्ड तीन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, तृतीय संस्करण, 2000ई०, पृ०-203
79. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ०-53
80. डॉ० धर्मवीर, कबीर के आलोचक, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1998, पृ०-32
81. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ०-54
82. डॉ० भोलानाथ तिवारी, कबीर और उनका काव्य, पृ०-44-45
83. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ०-38
84. वही पृ०-39

85. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ०-53
86. वही पृ०-54
87. वही पृ० 03
88. वेस्टकाट, कबीर एंड द कबीर पंथ, पृ०-120
89. जे. ई. कार्पेन्टर. थेइज्म इन भिडीएवल इण्डिया, पृ०-460
90. आचार्य क्षितिमोहन सेन, मिडीएवल मिस्तीसिज्म ऑफ इण्डिया 1930, पृ०-98
91. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ०-35
92. सं० रामकिशोर शर्मा, कबीर ग्रंथावली, लोक भारती प्रकाशन: इलाहबाद, प्रथम संस्करण 2002, पृ०-580
93. कबीर साहेब का बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, पृ०-109
94. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ०-324
95. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ०-44
96. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ०-18
97. वही पृ०-19
98. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य की परख, पृ०-69
99. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य की परख, पृ०-69
100. पुरुषोत्तम लाल श्री वास्तव, कबीर साहित्य का अध्ययन, साहित्य रत्न माला कार्यालय, बनारस, पृ०-18
101. वही पृ०-116
102. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ०-32
103. वही पृ०-34
104. सं० आचार्य महन्त गंगाशरण शास्त्री, महाबीजक, कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र, कबीर चौरा मठ, वाराणसी, पृ०-1
105. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ०-48
106. डॉ० एल.वी. राम अनंत, कबीर ग्रंथावली, अखिलेश प्रकाशन नई दिल्ली, नवीन संस्करण, 1999, पृ०-68
107. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य की परख, पृ०-41
108. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1969, पृ०-91
109. डॉ० बाबूराम सक्सेना, दिक्खिनी हिन्दी, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहबाद, 1952

110. डॉ० गोविंद त्रिगुजायत, कबीर की विचारधारा, पृ०-417
111. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ०-62
112. सं० डॉ० कामता कमलेश. डॉ० रामकिशोर शर्मा, हिन्दी अनुशीलन, त्रैमासिक पुख. पत्र, संयुक्ता मार्च, जून, सितंबर, दिसंबर, 1999, अंक 1, 2, 3, 4, वर्ष 41, भारतीय हिन्दी परिषद, इलाहबाद, पृ०-51
113. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ०-221
114. सं० विजयेन्द्र स्तानक, कबीर, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड. नई दिल्ली, छठी आवृत्ति, 1993, पृ० 182
115. सं० आनंद प्रकाश दीक्षित, कबीरदासः चिंतन और सर्जन, मनीषी प्रकाशन, मेरठ, 1981, पृ०-75
116. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ०-67
117. वही पृ०-105
118. वही पृ०-72
119. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ०-89
120. वही पृ०-105



## द्वितीय अध्यायः

साहित्य की प्रासंगिकता और उसके आयाम

## साहित्य की प्रासंगिकता और उसके आयाम

### साहित्य की प्रासंगिकता का अर्थ-

साहित्य या काव्य प्रत्येक देश और काल में प्रासंगिक रहता है। देश एवं काल के बदलने से जो परिवर्तित होती है वह है, दृष्टि। हर काल विशेष की अपनी-अपनी आवश्यकताएँ एवं प्राथमिकताएँ होती हैं। प्रासंगिकता का अन्वेषण इन्हीं आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं से होता है।

वस्तुतः आज आलोचना-जगत् में साहित्य को प्रासंगिकता की कसौटी पर कसकर देखा जाने लगा है। अतः साहित्य से अर्थवत्ता की माँग की जाने लगी है।

साहित्य की प्रासंगिकता का अर्थ क्या है? इसे जानना अपेक्षित है। अतः सर्वप्रथम 'प्रासंगिकता' को ही जानें कि यह क्या है? 'प्रासंगिकता' शब्द का अर्थ है- अर्थवत्ता, सार्थकता, उपादेयता, महत्ता आदि। इसलिये साहित्य की प्रासंगिकता का अर्थ होना चाहिये- साहित्य की सार्थकता, अर्थवत्ता, उपादेयता एवं महत्ता। उपर्युक्त जितने भी विशेषण साहित्य के साथ संबद्ध हैं, उन सब का अर्थ प्रासंगिकता में समाविष्ट है। साहित्य की प्रासंगिकता के संबंध में साहित्यकार को अपने रचनात्मक कर्म द्वारा समाज को एक नवीन दिशा की ओर अग्रसर करना होता है। समाज में व्याप्त समस्याओं एवं विसंगतियों का विध्वंस कर एक नवीन समाज की रचना करनी होती है। इसके लिये उसे स्वयं रणभूमि में आना होगा और अपने जैसे लोगों को प्रेरित एवं प्रोत्साहित करना होगा। कबीर जैसे महान् विचारक एवं भक्त ने ऐसे समाज की कल्पना की और उसे पूर्ण करने का जीवन-पर्यन्त प्रयास किया।



### साहित्य की प्रासंगिकता की अवधारणा एवं वैभिन्न मत

समाज में प्रारंभ से विसंगतियाँ एवं विडंबनायें व्याप्त रहीं हैं। आज भी ये समाज में व्याप्त हैं जो समाज को गर्त की खाई में ले जा रही हैं। समाज में जहाँ एक ओर उन्नति एवं विकास के लिये कदम उठाये जाते हैं वहीं इसके विपरीत समाज अधोगति की ओर उन्मुख होता हुआ द्रष्टव्य होता है। ऐसे समय पर कबीर जैसे साहित्यिक, मनीषी के काव्य से प्रेरणा एवं शिक्षा लेने की आवश्यकता होती है। जिससे समाज में संतुलन एवं सामंजस्य प्रतिष्ठित हो सके। उस समय कबीर की साहित्यिक प्रासंगिकता समझ में आती है। यहाँ प्रासंगिकता के संबंध में यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि प्रासंगिकता मात्र आधुनिक युग की दैन है या माँग है, भ्रांत धारणा है। यह माँग सदैव समयानुसार वर्तमान रहती है। यह बात और है कि वर्तमान समय में इसकी माँग कुछ अधिक हो गई है।

वास्तव में आज साहित्य की प्रासंगिकता का जो प्रश्न उठा है, वह पूर्ववर्ती साहित्य की वर्तमान युग की प्रासंगिकता से संबंध रखता है। इसका सर्वोत्तम महत्वपूर्ण आयाम है कि क्या प्राचीन या मध्ययुगीन साहित्य आज भी हमारे लिये प्रासंगिक है? क्या कालिदास, कबीर, तुलसी एवं प्रेमचन्द आदि हमारे लिये आज भी प्रासंगिक हैं? इससे साफ ज़ाहिर होता है कि प्रासंगिकता में औचित्य एवं अनौचित्य, उपयोगिता एवं अनुपयोगिता आदि सभी का समावेश है। अतः प्रासंगिकता का वास्तविक अभिप्राय साहित्य की अर्थवत्ता एवं सार्थकता से है जो बताता है कि विगत युगों का साहित्य हमारे लिये लाभप्रद है या हानिकारक। वह हमारे किन मानसिक तत्वों को विकसित करता है और किन तत्वों को नष्ट। अर्थात् वह वर्तमान समय में

कितना और किन लोगों के लिये उपादेय एवं अनुपयोगी सिद्ध होता है। वह समाज को अग्रगामी बनाता है अथवा पश्चगामी, वह अतीतोन्मुखी है या भविष्योन्मुखी। इन समस्त प्रश्नों पर गहराई तथा गंभीरता से विचार-विमर्श करना ही साहित्य की प्रासंगिकता की अवधारणा है। इस संदर्भ में अनेक विद्वानों के दृष्टिकोणों को यहाँ बताया जायेगा।

सर्वप्रथम कबीर को ही लें। कबीर ने कहीं भी स्वयं को कवि घोषित नहीं किया है। उन्होंने अपने मुख से जो वाणी व्यक्त की उसका उद्देश्य या प्रयोजन अर्थलिप्सा या यशप्राप्ति नहीं है बल्कि संपूर्ण मानव-जीवों को इस सांसारिक चकाचौंध से निकालकर या कहें कि भव-सागर से पार कराने के लिये ही है-

हरि जी यहै विचारिया, साखी कहौ कबीर।

भौसागर में जीव है, जे कोइ पकड़ै तीर।।'

तुलसीदास 'रामचरितमानस' के आरंभ में ही रचनाकार का लक्ष्य इस तरह घोषित करते हैं- 'स्वांतः सुखाय' लेकिन साथ में वे रचना के दायित्व को भी बताते हुए लिखते हैं-

कीरति भनिति भूति भलि सोई।

सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कविता (साहित्य) की आवश्यकता एवं महत्ता बताते हुए उसे मनुष्य के मनोविकारों के परिष्कार के लिये, दबे हुये भावों को जगाने के लिये, विश्व के साथ जीवन का प्रकृत सामंजस्य स्थापित करने के लिये, कर्मप्रवृत्ति हेतु मन में वेग लाने के लिये उपयोगी मानते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य की अर्थवत्ता एवं सार्थकता को मानवीयता से संबद्ध कर देखने के पक्षपाती हैं। उनका कथन है- “जो साहित्य हमारी क्षुद्र संकीर्णताओं से हमें ऊपर उठा ले जाये और सामान्य मनुष्य के साथ एक कराके अनुभव करावे, वही उपादेय है और जो साहित्य इसके बाहर पड़े अर्थात् हमारी पशु-सामान्य वृत्तियों को बड़ी करके दिखाये, हमें स्वार्थी और खण्डविच्छिन्न बनावे, उसे हम साहित्य नहीं कह सकते, चाहे जितने बड़े साहित्यिक दल या संप्रदाय का समर्थन उसे प्राप्त हो”।<sup>2</sup>

प्रेमचन्द्र जी ने साहित्य की सोद्देश्यता पर विचार करते हुए कहा “हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्यता का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो-जो हममें गति और बेचेनी पैदा करे, सुलाये नहीं; क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।”<sup>3</sup>

इस प्रकार साहित्य की प्रासंगिकता की अवधारणा स्पष्ट हो जाती है। साहित्य को लेकर सभी विद्वानों ने उसे समाज में व्याप्त कुप्रवृत्तियों, भ्रष्टाचारों, पशु-प्रवृत्तियों आदि से मानव को च्युत कराने की ओर ही दृष्टि डाली है, जो सर्वथा प्रासंगिक है। अतः कहा जा सकता है कि साहित्य तो वह है जो हमें एक दृष्टि देता है, जो स्वस्थ, स्वाभाविक एवं लोक-कल्याणकारी होता है, जिससे समाज का उत्थान होता है और ऐसा साहित्य ही सदैव जीवित रहता है।

### साहित्य की प्रासंगिकता के आयाम: कबीर के संदर्भ में

साहित्य का क्षेत्रफल अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक क्षेत्र भी साहित्य में समाविष्ट होते हैं। साहित्य की साधना अपने आप में एक कठिन साधना है। यह साहित्यकार को आत्मिक सुख देने के साथ-साथ पाठक वर्ग को भी लाभप्रद होती है। साहित्य जीवन की विविधता की ऐसी समग्र अभिव्यक्ति है जिसमें व्यक्ति की समस्त प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्बन पाया जाता है। यह व्यक्ति-बोध को उन्नत एवं प्रेरक बनाने के साथ-साथ उसके जीवन को सार्थकता प्रदान करता है। साहित्य की सर्वोत्तम विशिष्टता है कि वह मात्र समाज का दर्पण ही नहीं अपितु वह समाज को परिष्कृत एवं परिमार्जित भी करे। साहित्यकार या रचनाकार अपने रचनात्मक कर्म से सामाजिक मूल्यों का निर्माण करता है और उन्हें समुचित रूप से समाज पर लागू करने का प्रयास करता है। अतः साहित्यकार समाज की गतिविधियों में हस्तक्षेप भी करता है। तुलसी, प्रेमचंद्र आदि ने अपने युग को प्रतिबिम्बित ही नहीं किया अपितु उसके निर्माण में अपनी कारगर भूमिका का निर्वहन भी किया। कबीर जैसे महान् एवं महत्वपूर्ण रचनाकार के विषय में भी यही बात कही जा सकती है यहाँ हम कबीर के संदर्भ में साहित्य की प्रासंगिकता के आयामों के उद्घाटन के संबंध में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक पक्षों पर विचार करेंगे।

### साहित्य की सामाजिक प्रासंगिकता: कबीर के संदर्भ में

साहित्य और समाज का संबंध द्वंद्वात्मक होता है। जहाँ वह एक ओर समाज से प्रभावित होकर उसे प्रतिबिम्बित करता है वहीं दूसरी ओर उसे बदलने एवं सुसंस्कृत करने की भी कोशिश करता है। इस प्रकार वे साहित्य की प्रासंगिकता के

अथवा गलत-सही होने का बोध होता है। उसके सही या गलत होने की कसौटी निश्चिततः युगीन ही हो सकती है। अतः साहित्यकार सामाजिक व्यक्ति ही होता है। इसीलिये साहित्य की सामाजिक प्रासंगिकता का संबंध सामाजिक मान्यताओं के औचित्य को प्रतिपादित करना होता है। सामाजिक मूल्यों का उल्लंघन या अतिक्रमण करने वाला साहित्य या काव्य कभी भी प्रासंगिक नहीं हो सकता। वह जन-साधारण में व्याप्त भ्रान्त धारणाओं को अस्वीकृत कर उन्नयन एवं उदात्त मूल्यों को प्रतिष्ठित करते हुये कल्याणकारी तत्वों को अभिवृद्धि प्रदान करता है और ऐसा करना साहित्यकार का उत्तरदायित्व भी है। इस दृष्टि से रचनाकार का साहित्य यदि प्रेरक एवं उन्नयनकारी है तभी वह सार्थक है। व्यापक धरातल पर साहित्य की सामाजिक प्रासंगिकता मानव-मूल्यों, समाज-कल्याण, मानवीय संबंधों में सन्निहित है।

साहित्य चाहे प्राचीन हो या नवीन या दूसरे शब्दों में कहें कि साहित्य चाहे पूर्ववर्ती हो या अनुवर्ती (वर्तमान) समय का उसकी सामाजिक प्रासंगिकता का निर्णय दो बिन्दुओं पर अपेक्षित है कि रचनाकार की रचना का तत्कालीन परिवेश में उपादेय होना और वर्तमान समय में भी उपादेय होना। यह अनिवार्य नहीं है कि तत्कालीन समय में जो मूल्य स्थापित थे वे सदैव समीचीन या जीवन्त बने रहें लेकिन उनकी पूर्ण अवहेलना भी नहीं की जा सकती क्योंकि उन्हीं परिस्थितियों व मूल्यों के आधार पर वर्तमान मूल्य प्रतिष्ठित हुये हैं। इस प्रकार साहित्य की तद्युगीन सामाजिक प्रासंगिकता भी अपने आप में महत्वपूर्ण है।

रमेशचन्द्र शाह के मतानुसार- “रचना की प्रासंगिकता का निकष इकहरा नहीं हो सकता, क्योंकि वह रचना की प्रासंगिकता का निकर्ष है, जिसकी

रचनात्मकता काव्य, संस्कृति के मूल्यों पर भी प्रासंगिक हो। इसके साथ ही साथ रचना वह प्रासंगिक है जो अपने समय की मानव सच्चाइयों का उनकी पूरी जटिलता में साक्षात्कार कराती हो। वह दोहरी प्रासंगिकता रचना की राह में हर अवरोध को, हर रचना-द्रोही परिस्थितियों को तोड़ने वाली होगी और मनुष्यमात्र की स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करने वाली होगी। जाहिर है यह तभी हो सकता है; जब रचना मात्र समसामयिक ही न हो बल्कि मनुष्य मात्र की स्वतंत्रता को कुंठित करने वाले हर खतरे को संहार लेने वाली हो। अतीत की होकर भी वर्तमान को भी पहचानने वाली हो”<sup>4</sup>

उपर्युक्त कथन से दो बातें स्पष्ट होती हैं कि रचनाकार की प्रासंगिकता पर विचार करते हुये उसे रचनायुगीन सामाजिक संदर्भों में रखकर भी परखना चाहिये और जिस युग में उस पर विचार किया जा रहा है, उसके व्यापक सामाजिक संदर्भों पर भी उसके औचित्य का विचार करना चाहिये।

सामाजिक प्रासंगिकता की दृष्टि से कबीर-काव्य आज के समय में, आधुनिक भाव-बोध के संदर्भ में सर्वाधिक प्रासंगिक है। कबीर ने अपनी वाणियों के माध्यम से आदर्श समाज के स्वरूप को साकार करने का जीवन पर्यन्त प्रयास किया। संतों पर प्रायः यह आक्षेप लगाया जाता है कि उन्हें सामाजिक चिन्ता उतनी नहीं थी जितनी स्वयं के प्रति कल्याण की। लेकिन ऐसा नहीं है संतों में सर्वात्मवाद के सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोन्नत स्वरूप का सम्यक दर्शन उनकी वाणियों में प्राप्त होता है। संतों ने दूसरों को परिष्कृत करने से पूर्व अपने ‘स्व’ का परिष्कार किया। कबीर कहते हैं-

बुरा, बुरा सब को कहै, बुरा न दीसा कोइ।

जो दिल खोजा आपणां, मुझसा बुरा न कोइ।<sup>5</sup>

इस तरह कबीर ने स्वयं को शुद्ध करके दूसरों को शुद्ध करने की ओर संकेत किया है। जहाँ वे एक ओर सीधे स्वयं को शोधित करने की बात करते हैं वहीं दूसरी ओर वे उन लोगों पर सीधे-सीधे तीक्ष्ण शोध-व्यंग्य बाण छोड़ते हैं, जो दूसरों को सदुपदेश देते हैं और स्वयं उनसे अनभिज्ञ हैं। ऐसे लोगों से वे निर्भय होकर कहते हैं-

कथणीं कथी तौ क्या भया, जे करणी नाँ ठहराइ।

कालबूत के कोट ज्यूँ, देषतहीं ढहि जाइ।।<sup>6</sup>

कबीर कालीन समाज पूर्णतः अंधकार और मिथ्याचार से आप्लावित था ऐसे समय में एक ऐसे आदर्श, चरित्रवान् व्यक्ति की आवश्यकता थी जो समाज को आलोकित कर सके, कबीर ने ऐसा किया। यह ठीक है कि व्यक्ति समाज की लघुत्तम इकाई है इसलिये समाज की आधारशिला इन्हीं छोटी इकाइयों से मिलकर बनती है अर्थात् कह सकते हैं कि व्यक्ति ही समाजरूपी भवन की नींव है। यदि नींव ही सुदृढ़ न होगी तो भवन स्वतः ढह जायेगा। इसलिये समाज को सुव्यवस्थित एवं सुचारू रूप से चलाने के लिये व्यक्ति विशेष में सुधार का होना अपरिहार्य है। इस तरह कबीर ने हर संभव रूप में मानव सुधार के साथ-साथ समग्र समाज को पतन के गर्त से बचाया।

कुछ आलोचकों की धारणा है कि संत समाज से तटस्थ पलायनवादी थे। इन्होंने मात्र आध्यात्म, मुक्ति, माया, ईश्वर, ब्रह्म जैसे असामाजिक एवं अलौकिक तत्वों पर ही अपनी शक्ति लगा दी। इससे अकर्मण्यता तथा जीवन से पलायन की शिक्षा मिलती है। जबकि जिन विद्वानों ने संत काव्य का गहन अध्ययन एवं

चिंतन-मनन किया है। वे इन कवियों के काव्यत्व में उपलब्ध सामाजिक तत्वों की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं।

यह ठीक है कि संत प्रायः निर्लिप्त एवं विरक्त थे लेकिन समाज की ओर से इन्होंने अपने नेत्रों को बंद ही कर लिया हो ऐसा भी नहीं है। सांसारिक मोह, माया के दलदल में फंसे हुये निराश व्यक्तियों को आशामय उल्लास प्रदान कराने के लिये ये संत अपनी आध्यात्मिक ऊँचाई से नीचे भी उतरकर आये और इन्होंने समाज को भ्रम-जाल में उलझा देखा तो उनकी आत्मा कराह उठी। ऐसी स्थिति को देखकर चिंतामग्न कबीर कह उठे-

या जग में केहि केहि समुझावौ।

इक दुह होयं उन्हें समुझावो, सबनि भुलाना पेट के धन्धा।<sup>7</sup>

कबीर के समय में योग का प्रचार-प्रसार चर्मोत्कर्ष पर था। योगी लोग समाज से बाहर रहकर धूनी लगाते थे और तपस्या में लीन रहते थे लेकिन कबीर ने ऐसे लोगों को पलायनवादी कहा। कबीर के अनुसार यह तो संसार की कठिनाइयों से भागने वाली बात थी। ऐसों को संबोधित करते हुये कबीर कहते हैं-

अवधू भूले को घर लावै। सो जन हमको भावै॥

घर में जोग, भोग घर ही में, घर तज बन नाहिं जावै।

घर में जुक्त, मुक्त घर ही में, जो गुरु अलख लखावै॥<sup>8</sup>

कबीर के समय में समाज में ऐसे लोग भी थे जो सांसारिकता को ही चरम सत्य मानते थे और संसार को ही अपना एक लक्ष्य मान बैठे थे कि जैसे भी हो सके संसार की भौतिक वस्तुओं को हथियाओं और अपना जीवन सुख-समृद्ध



बनाओ। ऐसे व्यक्तियों को सचेत करने के लिये कबीर ने संसार को माया बताया और इससे बचने का उपदेश दिया। इस तरह से कबीर ने मनुष्य को न तो विरक्त जीवन-यापन करने का उपदेश दिया और न पूर्णतः संसारी बने रहने का। उन्होंने दोनों में संतुलन बनाये रखने का आह्वान किया। डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थवाल ने लिखा है कि “निर्गुण भक्तों की साधना का स्वरूप व्यक्तिगत है, तो भी अपने आध्यात्मिक विकास के लिये ये जंगलों में नहीं जाते, बल्कि अपनी साधना का क्षेत्र सामाजिक चेष्टाओं को ही बनाते हैं।”

इस तरह कहा जा सकता है कबीर आत्म विकास, प्रभु सानिध्य, प्रभु प्राप्ति के द्वारा सामाजिक चेतना को गति देने वाले हैं। व्यक्ति का विकास हो, समाज का विकास हो ही जायेगा। इसके लिये वे स्वयं के आचरण को परिष्कृत करने की बात कहते हैं। कबीर अपने आचरण से समाज को सद्पथ पर लाना चाहते हैं। यदि उनकी बात को कोई सुनना नहीं चाहता तो न सुने वे स्वयं को संबोधित करते हुए कह उठते हैं- “अपनी राह तू चलै कबीर।।”

### साहित्य की राजनीतिक प्रासंगिकता: कबीर के संदर्भ में

विश्व में ऐसा साहित्य बहुत कम है जिसमें राजनीति थोड़ी बहुत न हो। साहित्य में राजनीति का थोड़ा बहुत पुट मिल ही जाता है। जिन कवियों के बारे में धारणा है कि उनके काव्य में राजनीति नहीं है। उनकी कविता में भी राजनीति दिखाई पड़ती है और उनके काव्य का संबंध कहीं न कहीं जाकर राजनीति से मेल खाता दृष्टगत होता है। सूरदास के बारे में आलोचकों की धारणा है कि उनके काव्य का उनके समय की राजनीति से कोई वास्ता नहीं है। लेकिन ‘हरि हैं राजनीति पढ़ि

आये' जैसे पद में सूर ने अपने समय की राजनीति और बिडंबनाओं को गहरे व्यंग्य एवं विनोद के साथ चित्रित किया है। सूर ने जिस 'राजनीति' शब्द का प्रयोग किया है वह पहले से ज्यादा आज सिद्ध हो रहा है।

साहित्य और राजनीति समयानुसार एक-दूसरे को प्रभावित एवं परिवर्तित करते रहते हैं। अतः दोनों के मध्य अन्तर्द्वन्द्व पाया जाता है। इतना ही नहीं उनका पारस्परिक संबद्ध होना भी परिलक्षित होता है। साहित्य अपने समय और समाज के मनुष्य की स्थिति एवं नियति की चिन्ता करता है, इसलिये उसमें मनुष्य की नियति को निर्धारित करने वाली राजनीति की चिन्ता भी पाई जाती है।

साहित्यकार समाज से रचना की प्रेरणा ही ग्रहण नहीं करता अपितु वह जिन वास्तविकताओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति करता है, वे भी सामाजिक संदर्भ से जुड़ी होती हैं और सामाजिक संदर्भ, राजनीतिक प्रक्रिया से निर्मित होता है। सामाजिक संरचना में वर्ग और विचारधाराएँ होती हैं और उनके बीच संघर्ष की चेतना भी होती है। जिन रचनाओं में सामाजिक संघर्ष और टकराव नहीं होती वे अपने समय में और परवर्ती समय में प्रासंगिक नहीं होतीं।

कबीर के विषय में यह कहना कि उनका राजनीति से कोई लेना-देना नहीं था या उनके काव्य में राजनीति विषयक कहीं कोई उल्लेख नहीं है। ऐसा नहीं है। कबीर के आसपास के परिवेश में जो कुछ घटित हो रहा था उसकी ओर से कबीर जैसा विवेकमयी बुद्धि और करुणामय हृदय वाला व्यक्ति भला उदासीन कैसे रह सकता था। कबीर को चिन्ता थी कि सुल्तान, वजीर, राणा, राजा, छत्रपति आदि का आचरण सामान्य जनता के प्रति कैसा है? इन लोगों की नीति का प्रजा पर क्या

प्रभाव है? समाज प्रगति पथ की ओर जा रहा है या पतन की ओर। लेकिन सत्य तो यह है कि कबीर के समय की राजनीति क्रूर थी जिससे कबीर का अन्तर्मन जल रहा था। शासकों को देश के टुकड़े हो जाने की चिन्ता नहीं थी, प्रजा के सुख-दुख की चिन्ता नहीं थी। उनको यदि कोई चिन्ता थी तो प्रभुत्व प्राप्त और धन-वैभव की। उनकी ऐश्वर्यमयीलोलुपता में मंगल-भावना या नैतिकता के लिये स्थान नहीं था। नर-संहार उनकी क्रीड़ा बना हुआ था। धोखा, छल, कपट, क्रूरता, दंभ, विलास आदि समाज में व्याप्त थे। पसीना बहाकर दैनिक जीवन व्यतीत करने वाले लोग भी उनकी कूटनीति से त्रस्त थे। धार्मिक-बिडंबनायें राजनीति का अंग बनी हुई थीं। कबीर उन सबको बर्दाश्त नहीं कर सकते थे, उन्होंने इन विभीषिकाओं और प्रताड़नाओं से लोहा लेकर सामान्य जनमानस को प्रगति की ओर उन्मुख किया। एक ओर कबीर ने अपने चक्षुओं से जनता को पीड़ित देखा और ऐसे दूसरे लोगों को भी देखा जिनके दरवाजे पर नौबत बजती थी, मस्त हाथी झूमते थे और जिनको समाज के दुःखी, व्यथित, पीड़ित लोगों की कोई परवाह नहीं थी। ऐसे लोगों के लिये कबीर पुकार उठते हैं-

*कबीर-नौबति आपणी, दिन दस लेहु बजाइ।*

*ए पुर पटन ए गली, बहुरि न देखै आइ।।<sup>10</sup>*

कबीर सुल्तानों के पापाचार से ही परिचित हों ऐसा नहीं बल्कि वे राजा, राणा, छत्रपति आदि के दर्प एवं अभिमान से भी परिचित थे। उन्होंने ऐसे शासकों को परास्त करने के लिये और उन्हें सांसारिक भौतिक साधनों व सुविधाओं को अंतकाल परित्यक्त करना होगा के प्रति जागरूक करते हुये कहा-

*इक दिन ऐसा हाइगा, सबसूँ पड़ै बिछोह।*

राजा, राणा, छत्रपति, सावधान किन होइ।।<sup>11</sup>

भोगविलास एवं ऐश्वर्यविलीन कर्मचारी लोग रिश्वतखोर तो होते ही थे साथ ही निर्दयी और कठोर हृदय वाले होते थे। लोगों को सताना, मारना-पीटना तो मानो उनकी सामान्य दिनचर्या का अंग ही था। इससे लोग गाँव छोड़कर उनसे दूर भाग जाते थे। ऐसा व्यवहार देखकर कबीर का हृदय विदीर्ण होकर कराह उठता और असहाय, पीड़ित लोगों के प्रति कारुणिक होने लगता-

खोटो महतौ बिकट बलाही, सिर कसदम का पारै।

बुरौ दिवाँन दादि नहिं लागै, इक बाँधे इक मारै।।<sup>12</sup>

कबीर अपने समय की ऐसी राजनीति से तिलमिला कर तड़प ही नहीं रहे थे अपितु ऐसी कूटनीति को सदैव के लिये धराशायी करने को भी आतुर थे। समाज में ऐसे राजनेता, शासकों प्रशासकों की आवश्यकता नहीं जो आये दिन किसी न किसी तरीके से राजनैतिक दाँव-पेच एवं हथकण्डे अपनाकर समाज को विकृत करें, पापाचार एवं अत्याचार फैलायें, अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये नर संहार तक के लिये भी न चूकें, अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये धार्मिक एवं अध्यात्म की ओट में लोगों को भ्रमित करें। यदि साहित्यकार ऐसी स्थिति में मूक बना रहेगा तो उसे भी इसी चक्की में पिसना ही होगा। ऐसे में ऐसे साहित्यकार, रचनाकार की आवश्यकता होगी जो निर्भय होकर ऐसे लोगों को शासन को किस तरह अनुशासित किया जाय? शासक को कैसा होना चाहिये, उसके लिये उसमें वे चारित्रिकतायें मौजूद हों जो एक आदर्श शासक में होनी चाहिये। यदि ऐसा सब कुछ करने में रचनाकार सफल होता है और ऐसा करने के लिये उद्यत है तो उसका साहित्य अवश्य ही अपने

समय की परिधि में ही नहीं बल्कि उसे लांघकर परवर्ती समय में भी सार्थकता एवं जीवंतता को प्राप्त होगा। कबीर का साहित्य ऐसा ही साहित्य है जो इन समस्त बातों का पालन करता है। कबीर ऐसे शासक, सूरवीर की बात करते हैं जो धर्म, कर्म और मर्म के लिये अपनी आहूति देने में तनिक भी संकोच न करे-

सूरा तबही परषिये, लडै धणीं के हेत।

पुरिजा-पुरिजा हवै पडै, तऊ न छाँडै खेत।।<sup>13</sup>

डॉ० मैनेजर पाण्डेय के मतानुसार-“कबीर भारतीय मनुष्य को धर्म, संप्रदाय और जाति के झगड़ों से छुटकारा दिलाकर उसे सच्चे मनुष्य के रूप में अपनी पहचान विकसित करने की प्रेरणा देते हैं।”<sup>14</sup>

अतः कहा जा सकता है कि कबीर ने ऐसे शासन और शासक को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया जो समाज को ऊर्ध्वगामी बनाये। पीड़ित, व्यथित एवं व्यग्र लोगों को शांत्वना दिलाये, मिथ्याचार, व्यभिचार एवं अंधविश्वासों को तिलांजलि दिलाये, मानवता को सुखी, समृद्ध एवं प्रगतिगामी बनाये। कबीर का कवित्व इस दृष्टि से पूर्णतः सार्थक है, सबल है एवं सक्षम है।

### साहित्य की धार्मिक प्रासंगिकता: कबीर के संदर्भ में

हिन्दी साहित्य के इतिहास में धर्म को केन्द्र में रखकर अनेक ग्रंथों का प्रणयन हुआ। पूर्व-मध्यकाल(भक्ति-काल) में तो संपूर्ण साहित्य लगभग धार्मिक एवं आध्यात्मिक मान्यताओं से ओत-प्रोत है। भक्त-कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा समाज में उन मानव-मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया जो उस युग के लिये अनिवार्य ही नहीं थे अपितु उपादेय भी थे। अतः धर्म कोई भी हो किसी भी संप्रदाय विशेष

से संबद्ध हो लेकिन उससे समाज लाभान्वित होता है, समाज को एक गति मिलती है, वह मानवता की बात करता है, मनुष्य-मनुष्य के बीच व्याप्त वर्ग-भेद को मिटाने वाला है, वैश्विक स्तर पर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को साकार करता है तो वह सदैव हृदयंगम करने योग्य है। जिस धर्म से मानव की भावनायें विखंडित होती हों, वह अग्रगामी न होकर पश्चगामी हों, उसका प्रयोग मुक्ति की जगह बंधन के लिये होने लगे तो ऐसे धर्म को न तो कोई आदर देगा और न उसे कोई ग्रहण करेगा। ऐसे धर्म से न तो किसी को आत्मिक सुख मिलेगा और न भौतिक बल्कि उससे समाज का ढांचा छिन्न-भिन्न होने का भय बना रहेगा। साहित्य में ऐसे धर्म को कोई भी साहित्यकार न तो उपयोग में लायेगा और न उसकी ओर वह उन्मुख ही होगा।

साहित्य और धर्म परस्पर एक दूसरे को समय-समय पर प्रभावित एवं प्रेरित करते रहते हैं लेकिन उन दोनों के पारस्परिक आदान-प्रदान से समाज का ढांचा खंडित होने लगे तो उसे समाज में उपयोगिता मिलने के स्थान पर उपेक्षा ही मिलेगी; और साहित्य में ऐसा होना साहित्यिकता की गुणवत्ता को कम करना ही नहीं बल्कि उसकी शक्ति को हास पहुँचाना है।

साहित्य में वे ही धार्मिक मान्यतायें स्थापित हो सकती हैं जिनसे सामूहिक रूप में मनुष्य का कल्याण हो, मानवीयता की भावना जाग्रत हो, पारस्परिक वैमनस्यता एवं मत-भेदों का उन्मूलन हो वही साहित्य धार्मिकता की दृष्टि से सार्थक होगा, उपादेयी होगा एवं प्रासंगिक होगा।

कबीर कालीन समाज में धर्म मार्ग न रहकर कुमार्ग में परिणत हो गया था, रूढ़ियों और अंधविश्वासों ने अपना घर कर लिया था जिससे समाज खंडित हो

रहा था, जीवन में रस कहीं था ही नहीं, जीना दुष्कर एवं दुर्लभ हो गया था। कबीर ने ऐसे विष के भरे प्याले को पी तो लिया लेकिन उनसे सामाजिक प्रलय का कारुणिक दृश्य न देखा गया और उन्होंने क्रूर धर्मान्धता के खण्डन के लिये ताण्डव रूप ले लिया। उन्होंने किसी भी धर्म को नहीं छोड़ा, उन्होंने समस्त धर्मों की कुरीरितों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों, मिथ्याचारों का खुले मैदान में आकर बड़ा कड़ा विरोध किया। लेकिन डॉ० सरनाम सिंह शर्मा का कहना है कि “हिन्दू-धर्म के मूल पर उन्होंने कोई ऐसा प्रहार नहीं किया जैसा ‘तुर्की धर्म पर।’<sup>15</sup> लेकिन ऐसा नहीं है। उन्होंने क्या हिन्दू धर्म और क्या तुर्की (मुस्लिम) धर्म सभी के प्रति तीव्र चोट की।

कबीर जब कहते हैं कि तू (साधक) कहीं भी क्यों न चला जा। चाहे तू मथुरा जा, चाहे द्वारिकाधीश, चाहे काबा चला जा, चाहे स्वर्ग-नगरी काशी। लेकिन जब तक तू अपने चोले को स्वच्छ एवं पवित्र नहीं कर लेता अर्थात् शरीर के विकारों को परिष्कृत नहीं कर लेता तब तक तेरा इन तीर्थ-स्थानों पर जाना व्यर्थ एवं भ्रामक है-

*मन मथुरा दिल द्वारिका, काबा कासी जांणि।*

*दसबां द्वारा देहुरा, तामै जोति पिछांणि॥<sup>16</sup>*

उपर्युक्त साखी में हिन्दू एवं तुर्क (मुसलमान) दोनों को ही संबोधित कर कबीर ने उनके अंधविश्वासों एवं भ्रमों का तीव्र खण्डन किया है। अर्थात् वे मनः साधना की ओर संकेत कर कहते हैं कि साधक को मनःसाधना द्वारा अपने तन को स्वच्छ एवं विकारों से रहित करना चाहिये इन सब तीर्थों से कुछ भी नहीं होने वाला जब तक कि शरीर के विकार स्वच्छ एवं परिष्कृत नहीं हो जाते।

कबीर के समय में समाज की दिशा एवं दशा दोनों ही बिगड़ी हुई थीं। किसी भी धर्म में 'मानवता' की ज्योति दृष्टिगोचर नहीं थीं। कबीर को इस बात की बड़ी चिंता थी। कबीर ने परिस्थिति को बड़े निष्पक्ष एवं तटस्थ भाव से अनुभूत कर धर्म की सटीक समीक्षा की। उन्होंने 'दूध का दूध और पानी का पानी' कर दिखा दिया। कबीर ने सगुणोपासना के स्थान पर निर्गुणोपासना को अपनाया जिसमें 'सगुणोपासना' के सारे तत्व एवं गुण विद्यमान थे, किन्तु उसमें मूर्तिपूजा, अवतारवाद, तीर्थ-महात्म्य आदि के लिये कोई स्थान नहीं था। कबीर ने ऐसे धर्म की स्थापना की जो सब के लिये सुलभ एवं सहज था। उन्होंने शास्त्रीय पद्धति की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान को महत्ता दी। कबीर का सबसे बड़ा धर्म यदि कोई था तो वह था-मानवतावाद। उन्होंने अपनी भक्ति में सभी को एक समान भाव से देखा और सब को आमंत्रित एवं आदर दिया। उनकी भक्ति का प्रमुख स्वर नाम-स्मरण, या नाम-जाप था, आत्म-बलिदान में भी उनका अखण्ड विश्वास था।

कबीर ने किसी भी धर्म को आँख बंद करके या अक्षरशः स्वीकार नहीं कर लिया अपितु उसकी बौद्धिक स्तर पर समीक्षा कर ही ग्रहण किया। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जिस तरह कच्चे स्वर्ण को तपाकर उसे शुद्ध एवं परिमार्जित किया जाता है उसी तरह कबीर ने विभिन्न विकृत धर्मों की साधनाओं को परिष्कृत करके ही उसे ग्राह्य बनाया।

धार्मिक विकृतियों एवं विसंगतियों ने कबीर को सर्वाधिक प्रेरित एवं चिंताग्रस्त बनाया। उनकी वाणी का अधिकांश हिस्सा धार्मिक विकृतियों की धज्जियाँ उड़ाने और उनकी कलई खोलने में व्यय हुआ। कबीर की दृष्टि में उनके समय का



कोई भी धर्म ऐसा नहीं जो विकृतियों एवं विसंगतियों से मुक्त हो। कुप्रथाओं, रूढ़ियों, कुत्साओं, अंधविश्वासों, आडम्बरो, मिथ्याचारों, पापाचारों, व्यभिचारों आदि ने मानवता के मूल को ही नष्ट कर दिया था। कबीर ने इन समस्त संकीर्णताओं से ऊपर उठकर सत्य, अहिंसा, मानवीयता, सहजता आदि के आधार पर अपने 'संतधर्म' को परिपुष्ट कर धर्म को नवीन रूप दिया जिसमें प्रेम की प्रधानता ने इसे प्रदीप्त कर दिया।

कबीर ने समाज से बहुत कुछ को स्वीकारा और बहुत कुछ को नहीं। कबीर ने जिसे स्वीकृत नहीं किया इस पक्ष पर डॉ० शिवकुमार मिश्र का कथन बड़ा सटीक है- “क्या है कबीर का 'अस्वीकार' जिसके नाते वे आधुनिक और समकालीन हैं नई सदी के हमारे सरोकारों के अनुरूप हमारे मार्गदर्शक कबीर के इस अस्वीकार में है धर्म और धर्मशास्त्र आधारित निहायत अमानवीय और आदमी और आदमी में वर्ण और जाति के स्तर पर भेद करने वाली, हमारी सामाजिक संरचना का विरोध धर्म के बाह्याचारों और उससे जुड़े अंध श्रद्धावाद की भर्त्सना, सामाजिक धार्मिक पाखण्ड पर कबीर का वज्र प्रहार। ऊँच-नीच, छूत-अछूत, हिन्दू-मुसलमान के स्तर पर आदमीयत में फर्क करने वाली मानसिकता के खिलाफ बगावत। सारे धर्मों को हाशिये पर डालते हुये एक मानव धर्म की बात जहाँ आदमी की शिनाख्त का पैमाना उसकी आदमीयत हो। एक ही खाल से सबके रचे सिरिजे जाने की बात। बहुत कुछ है कबीर के इस अस्वीकार में जो हमारे समय में उन्हें जोड़ता है।”<sup>17</sup>

कबीर का मानवीय धर्म ऐसा धर्म है जो सभी लोगों के लिये सरल, सहज एवं साध्य है। यह केवल 'हरि-भक्ति' द्वारा ही अर्जित किया जा सकता है- कबीर का ऐसा मानना है- 'हरि भक्ति जाने बिना बूढ़ि मुआ संसार' वाली उक्ति

इसी बात को पुष्ट करती है।

कबीर पर प्रायः यह आरोप लगाये गये हैं और लगाये जाते हैं कि कबीर नारी की निंदा करते हैं, जबकि आजकल नारी स्वतंत्रता की बात होती है, उस पर गोष्ठियां एवं सभायें आयोजित की जाती हैं। इस दृष्टि से आधुनिक संदर्भ में कबीर कहाँ प्रासंगिक ठहरते हैं? ऐसा प्रश्न भी हो सकता है। तो इस का उत्तर है कि कबीर नारी-निंदक वहीं पर हैं जहाँ भक्ति में नारी साधक न होकर बाधक बनती है। उन्होंने उस नारी का विरोध किया जो कुलटा है, अपने चरित्र से पतित है। अब वह नारी चाहे अपनी हो या पराई वह निंदनीय ही कही जायेगी। कबीर पतिव्रता, सतीत्व नारी की प्रशंसा इसीलिये करते हैं क्योंकि ऐसी नारी भक्ति में बाधक न होकर साधक बनती है तभी तो कबीर कहते हैं-

1. *क्यूं नृप नारी नींदिये, क्यूं पनिहारी कौ मान।*

*वा मांग संवारे पीव कौ, वा नित उठि सुमिरै राम।<sup>18</sup>*

2. *नैनां अंतरि आव तूं, ज्यूं हों नैन झंपेउँ।*

*नाँ हों देखौं और कूँ, ना तुझ देखन देउँ।<sup>19</sup>*

इस तरह कबीर ने उन धार्मिक मान्यताओं को लाकर प्रतिष्ठित किया जो समाज की माँग थी। उन्होंने उन कुरीतियों, विसंगतियों एवं रूढ़ियों को खंडित किया जिनसे समाज हास हो रहा था। कबीर ने जिस तरह से सामाजिक मान्यताओं को स्थापित किया उसी साहस एवं शक्ति के साथ धार्मिक मान्यताओं को। डॉ० यूसुफ हुसैन के शब्दों में “उत्तरी भारत के विभिन्न वर्ण और धार्मिक समुदायों के मतभेदों का मान्य उपायों द्वारा अंत करना कबीर का प्रमुख उद्देश्य था। वे वर्णाश्रम

प्रथा के साथ ही अंधविश्वासों पर आधारित धर्मों की शत्रुता का अथवा दूसरों की मूर्खता से लाभ उठाकर उन्हें भ्रष्ट करने वाले एक अल्पसंख्यक समुदाय का उन्मूलन करना चाहते थे। साथ-साथ रहने वाले लोगों के बीच एक सामाजिक एवं धार्मिक शांति स्थापित करने के आकांक्षी थे, क्योंकि धर्म ने उन्हें एक-दूसरे से अलग कर दिया था।”

इस तरह जो कुरीतियाँ, जो विसंगतियाँ, जो रूढ़ियाँ, जो मिथ्याचार, पापाचार आदि कबीर कालीन समाज एवं धर्म में व्याप्त थे वे वर्तमान समय में भी मौजूद हैं अतः उन्हें दूर करने के लिये कबीर जैसे महान चिंतक की आवश्यकता है और वैसे ही साहित्य या काव्य की जरूरत है। इसलिये कबीर का काव्य आधुनिक जीवन-संदर्भों में उपयोगी ही नहीं बल्कि महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है।

### साहित्य की आर्थिक प्रासंगिकता: कबीर के संदर्भ में

मनुष्य की मूल आवश्यकतायें हैं- रोटी, कपड़ा और मकान। इनमें भी सबसे पहली और मूल आवश्यकता मनुष्य के लिये रोटी की है। यदि मनुष्य का पेट भूख से आकुल है तो वह अन्य कार्य कर ही नहीं सकता। इन मूल आवश्यकताओं के बाद मनुष्य की अन्य आवश्यकतायें भी होती हैं जिन्हें पूर्ण करने के लिये मनुष्य निरंतर प्रयत्नरत रहता है ये उसकी गौडीय आवश्यकतायें होती हैं। समाज में प्रमुखतः तीन वर्ग-उच्च, मध्य एवं निम्न होते हैं। तीनों के स्तरों में पर्याप्त अंतर होता है। लेकिन इन सबका दारोमदार अर्थ पर निर्भर करता है। इसमें उच्च-वर्ग जो पूंजीपति, उद्योगपति और पीछे लौटें तो राजा, सामंत, मंत्री, बजीर, बनिज, आदि होते हैं, जो बिना श्रम के धन को अर्जित करते हैं। एक ओर निम्न वर्ग है जो दिन-रात एक

T-7198

कर अपने खून, पसीने से इतना कमाता है कि बस दो वक्त की उदर-पूर्ति ही कर पाता है। एक तीसरा वर्ग है जो इन दोनों के बीच में होता है उसकी स्थिति न इतनी दयनीय होती है कि वह दर-दर भटकता फिरे और न इतनी शिथिल कि एक स्थान से दूसरे स्थान तक कोई वस्तु विशेष को लेने, ले जाने में दूसरों (सेवकों) का आश्रय लेना पड़े। यह वह वर्ग है जो जितना करता है उससे ज्यादा पाता है, उच्च वर्ग में वह बैठे-बिठाये ही इतना पा लेता है कि जहां निम्न वर्ग दिन-रात की दौड़-धूप के बाद उतना नहीं पाता जितना उसे चाहिये। समाज में यह व्यवस्था अब से नहीं निरंतर प्राच्य काल से रही है। इस व्यवस्था में सुधार होने चाहिये, इसके लिये अनेक आंदोलन, मत-मंतातर एवं सभायें होती हैं लेकिन इस दिशा में अभी तक वह सफलता नहीं मिल पा रही है जितनी मिलनी चाहिये अर्थात् कह सकते हैं कि अभी तक कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया है।

कबीर-कालीन समाज का ढांचा भी अत्यंत जटिल था। राजा के शोषण और प्रकृति के प्रकोपों से जनता त्राहि-त्राहि पुकार रही थी। विदेशी लुटेरों ने यहाँ आकर भारत जैसे देश जिसे 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था उसे लूट-लूट कर कंगाल और खोखला कर दिया। जहाँ दूध और दही की नदियाँ बहतीं थीं वहाँ उनकी (देशवालों की) स्थिति लकड़िहारों और भिश्तियों की-सी हो गई।<sup>20</sup>

कहा जा सकता है कि सामान्य जन जिस तरह भी अपना भरण-पोषण कर रहे थे। वे दुःखी थे एवं दरिद्रता से पीड़ित थे। उनके व्यवसाय एवं रोजगार उनकी उदर-पूर्ति के लिये पर्याप्त नहीं थे। जीविकोपार्जन के लिये ब्राह्मणों तक को राज-दरबारों पर भटकना पड़ता था। अनेक धर्म गुरु राजद्वारों पर मांगने पहुँचते थे।

कबीर से यह नहीं देखा जाता था कि लोग अपने स्वाभिमान को इतना भी गिरा देंगे। उससे कबीर बड़े चिंतित थे और केवल चिंतित ही नहीं बल्कि ऐसी स्थिति के उन्मूलन के लिये उद्यत भी थे। जो लोग माँग-माँग कर अपना निर्वाह कर रहे थे कबीर उनसे जोर देकर कहते हैं कि मांगना तो मृत्यु के समान है यदि मांगना ही है तो समस्त भू-स्वामियों का भी स्वामी अर्थात् विश्वनियंता(रघुनाथ) है, उससे ही मांगो। किसी अन्य के समक्ष हाथ मत फैलाओ। वे स्वयं के लिये भी कहते हैं-

*माँगण मरण समान है, विरला वंचै कोइ।*

*कहै कबीर रघुनाथ सँ, मतिर मँगावै मोइ।<sup>21</sup>*

इससे समाज की आर्थिक परिस्थिति का एक धुंधला चित्र हमारे सामने आ जाता है। ऐसी परिस्थिति में लोग मांगने के सिवा और कर ही क्या सकते थे लेकिन कबीर को यह मान्य नहीं था, वे न तो याचना को धंधा बनाने वाले ही थे और न किसी लोक सत्ता के समक्ष हाथ फैलाने वाले थे। वे अपने अभाव केवल और केवल अपने आराध्य देव के समक्ष ही प्रस्तुत करते हैं, उसके सामने वे किसी हीनता का अनुभव नहीं करते।

कबीर को अपने साँई पर अखण्ड विश्वास है कि वे उससे उतना ही मांगते हैं जितना कि उससे उनके उदर की पूर्ति हो सके; वे अपने साँई से इतना नहीं मांगते जिससे उसकी गठरी बनानी पड़े और उसे लादकर घूमते-फिरें। उनको अपने साँई से जब जरूरत होती है तभी मांग लेते हैं, और उनका स्वामी उन्हें तत्काल दे भी देता है-

*संत न बाँधे गाँठड़ी, पेट समाता लेइ।*

साँई सँ सनमुख रहै, जहाँ माँगे तहाँ देइ।।<sup>22</sup>

मनुष्य का यह स्वभाव है उसके पास जितना है, उससे संतुष्ट नहीं होता। यदि उसके पास उसकी आवश्यकता हेतु सब कुछ है लेकिन फिर भी उसकी तृष्णा मिटती नहीं है बल्कि बढ़ती ही जाती है। मनुष्य की यह तृष्णा आग की भट्टी की तरह से है जिसमें जितना डालोगे उतना ही ज्यादा भड़केगी। कबीर ने मनुष्य की इस तृष्णा को जवासा (यवासक) के पौधे से किस तरह साम्यता व्यक्त की है कि यह तृष्णा बुझाये बुझती ही नहीं है बल्कि निरंतर बढ़ती ही जाती है जिस तरह जवासा(यवासक) के पौधे में भी यही गुण है लेकिन जैसे ही वर्षा ऋतु आती है यह पौधा पत्रहीन होकर कुमलाने लगता है। वैसे ही मनुष्य की यह तृष्णा कभी घटती नहीं है बल्कि बढ़ती रहती है यह तभी समाप्त होती है जब उसकी मृत्यु हो जाती है। कबीर कहते हैं-

त्रिष्णाँ सींची नाँ बुझै, दिन दिन बढ़ती जाइ।

जवासा के रूष ज्युँ, घण मेहा कुमिलाइ।।<sup>23</sup>

वस्तुतः यदि देखा जाय तो यह धन, दौलत और माल-खजाना एक दिन यहीं (संसार) में सब का सब पड़ा रह जायेगा। मनुष्य के साथ उसके अच्छे एवं बुरे कर्म ही जायेंगे, शेष कुछ भी नहीं। और उसके कर्मानुसार ही उसे स्वर्ग एवं नरक किसमें जाना पड़े यह तो मृत्यु के बाद ही पता चलेगा। लेकिन मनुष्य को धन-संपत्ति उतनी ही एकत्रित करनी चाहिये जिससे उसका काम सुचारू रूप से चल सके। धन-संग्रह में यदि वह लग गया तो वह उसी में लिप्त हो जायेगा और भक्ति-भजन करने के लिये उसके पास समय ही नहीं होगा। इसीलिये कबीर ऐसे लोगों को

सावधान करते हुए कहते हैं अरे! लोगो तनिक चेतो धन-संग्रह करने के फेर में मत रहो, आज तक जिसने भी धन-एकत्र किया है वह उसे अपने सिर पर पोटली बांधकर कभी नहीं ले गया बल्कि वह यहीं पड़ा रह गया है। कबीर कहते हैं-

कबीर सो धन संचिये, जो आगे का होइ।

सीस चढ़ाये पोटली, ले जात न देख्या कोइ।<sup>24</sup>

इस तरह यदि समाज में लोग रहने लगे और कबीर की भाँति धन का सद् उपयोग करें तो निश्चित ही समाज गति के मार्ग पर अग्रसर होगा और लोगों के पारस्परिक झगड़े-विवादों का निवारण स्वमेव ही होने लगेगा। अतः कबीर के समय में जो समाज की दशा और दिशा थी वही स्थिति बल्कि उससे भी ज्यादा बिगड़ी हुई आज की है। इसलिये कबीर की वाणियों को पुनः स्मृति में लाने की आवश्यकता है, उनसे प्रेरणा लाने की भी जरूरत है। कबीर धन-संपत्ति के विरोधी नहीं थे अपितु धन को वे उतना ही महत्व देते थे जितने की मनुष्य विशेष को आवश्यकता है उससे अधिक धन को संग्रह करने के वे कायल नहीं हैं। इस तरह कबीर ने इस संबंध में जितनी बातें कहीं हैं वे आज के संदर्भ में पूर्णतया चरितार्थ करने योग्य हैं। अतएव कबीर का काव्य इस दृष्टि से सदैव महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है। इसमें संदेह नहीं।

## संदर्भ:-

1. सं० श्यामसुन्दरदास, क०ग्रं०, पृ० 44
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य सहचर, नैवैद्य निकेतन वाराणसी, 1965, पृ० 125
3. प्रेमचन्द्र, कुछ विचार, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1982, पृ० 25
4. रमेशचन्द्र शाह, छायावाद की प्रासंगिकता, पृ० 156-157
5. सं० श्यामसुन्दरदास, कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 15वां संस्करण, संवत् 2041 वि०, पृ० 51
6. वही पृष्ठ-29
7. कबीर संतबानी संग्रह भाग-2, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, 1955, पृ० 25
8. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1971, पृ० 261
9. अनु० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, 2007, वि. पृ० 319
10. सं० श्यामसुन्दरदास, क०ग्रं०, नागरी प्र० सभा, वाराणसी, 15वां संस्करण, संवत् 2041 वि० पृ० 16
11. वही पृ० 16
12. वही पृ० 221
13. सं० श्यामसुन्दरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 54
14. डॉ० मैनेजर पाण्डेय, आलोचना की सामाजिकता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005, पृ० 31
15. डॉ० सरनाम सिंह शर्मा, कबीर: व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांत, भारतीय शोध संस्थान, गुलाबपुरा, राजस्थान, प्रथम संस्करण 1969, पृ० 136
16. सं० श्यामसुन्दरदास, क०ग्रं०, पृ० 35
17. सं० फीरोज अहमद, वाङ्मय(त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका) वर्ष 2, अंक 5, अप्रैल-जून 2005, लालबहादुर शास्त्री मार्ग, अमीरनिशां, अलीगढ़, पृ० 6
18. सं० श्यामसुन्दरदास, क०ग्रं०, पृ० 41
19. वही पृ० 14
20. एस०आर० शर्मा, भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ० 213
21. सं० श्यामसुन्दरदास, क०ग्रं०, पृ० 46
22. वही पृ० 45
23. वही पृ०- 26
24. वही पृ०- 26



## तृतीय अध्यायः

समसामयिक संदर्भ में कबीर के काव्य की  
प्रासंगिकता

## समसामयिक संदर्भ में कबीर के काव्य की प्रासंगिकता

आज के औद्योगिक, भौतिकतावादी, निरंतर प्रगतिशील एवं आधुनिक समाज में कवि के कवित्व एवं उसकी सार्थकता पर प्रश्नचिन्ह लगाया जाता है कि कविता समाज के लिये अपरिहार्य है भी या नहीं, लेकिन कविता का अस्तित्व समाप्त हो जाय यह तो बहत दूर की बात है उल्टे आधुनिक समय और समाज में वह खूब पुष्पित एवं पल्लवित हो रही है। उसका कारण कविता का मनुष्य से संबद्ध होना है। आचार्य शुक्ल ने इस संबंध में कविता की आवश्यकता पर विचार करते हुए 'कविता क्या है' निबंध में कहा "मनुष्य के लिये कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है कि संसार की सभ्य, असभ्य सभी जातियों में किसी न किसी रूप में पाई जाती है चाहे इतिहास न हो, विज्ञान न हो, दर्शन न हो, पर कविता अवश्य ही रहेगी।"<sup>1</sup>

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि कविता और मनुष्य का संबंध शाश्वत है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि कविता समय के साथ-साथ परिवर्तित न होती हो, परन्तु कवि का एक अंश ऐसा होता है जो सदैव अपरिवर्तित रहता है, वह समयानुसार युगानुरूप बना रहता है। समय और परिस्थिति के अनुसार कवि की मानसिकता बदलती रहती है। इसलिये कवि को समसामयिक संदर्भ में समझने के लिये कवि की समसामयिक मानसिकता को जानना होगा कि वह क्या है और क्यों है?

समसामयिक कविता का सिंहावलोकन करते समय कवि की मानसिकता का पहला लक्षण गैर रूमनियत के रूप में उपस्थित होता है। आज का कवि रूमनियत को पंसद नहीं करता। उसे रूमनियत और भावुकता, जो कपोल-कल्पित

हो, गलदश्रु हो से चिढ़ है। जब कवि की मानसिकता इन सबसे एक प्रकार से चिढ़ती है तब स्पष्ट है कि उस समय इन कवियों की बात नहीं की जा रही है जो काव्य का उपयोग इस प्रयोजन के लिये करें कि श्रोताओं का मनोरंजन करना है। ऐसा जो करते हैं ऐसे कवियों को समसामयिक नहीं कहा जा सकता। समसामयिक कवि तो अपने समकालीन यथार्थ का सीधे-सीधे साक्षात्कार कराना चाहता है। समसामयिक कविता में भावुकता के स्थान पर विचार पक्ष का प्राबल्य रहता है जो व्यक्तियों और स्थितियों के भीतर की विसंगतियों और विडम्बनाओं का उद्घाटन करता है। इसमें स्थितियों के भीतर की तहों को सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक प्रक्रियाओं की निचली तहों सहित बिना भावविह्वल या उत्तेजित हुये पकड़ा जाता है।

कवि का विचारवान होना किसी वैचारिकता से जुड़ना नहीं है कि कवि किसी विचारधारा विशेष या किसी राजनीतिक दल से संबंध रखता है। प्रतिभावान एवं मौलिक कवियों की यह विशेषता है जो किसी विचारधारा या राजनीतिक दल से प्रतिबद्ध नहीं होते। एक समय था जब ऐसा होता था और बगैर इसके उसे प्रगतिशील कवि नहीं माना जाता था। लेकिन अब प्रतिबद्ध प्रगतिशीलता की जगह सहज प्रगतिशीलता को मिल गई है। आज के अधिकांश हिन्दी कवि एवं अन्य भारतीय भाषाओं के कवि सामाजिक विषमता, शोषण, अत्याचार, तानाशाही, जातिवाद का विरोध करते हैं लेकिन किसी राजनीतिक दल या विचारधारा विशेष से बंधने के लिये तैयार नहीं हैं। जब भी ऐसे प्रतिभावान कवियों को संघबद्ध करके अनुशासित करने की कोशिश होती है तब-तब अनुशासकों को असफलता ही हाथ लगती है। कभी-कभी कवि-प्रतिभा का विनाशक रूप भी दिखाई देता है। जब मार्क्सवादी

विचारधारा को लेकर विश्व की विभिन्न भाषाओं में प्रगतिशील लेखक संघों की स्थापना की गई थी तब तमाम रचनाकार उसकी ओर आकर्षित हुये थे, लेकिन यह आकर्षण बहुत थोड़े समय तक ही रहा। शीघ्र ही रचनाकारों का मोहभंग हो गया।

इस तरह वर्तमान से असंतुष्ट समसामयिक कवि, रूमानी कवियों की भांति न तो अतीत की ओर पलायन करता है और न भविष्य के रंगीन स्पष्ट गढ़ता है। वह वर्तमान में रहकर वर्तमान के यथार्थ का सामना करता है। इसलिये वर्तमान से असंतुष्ट समसामयिक कवि की मानसिकता की मानसिकता का अभिन्न अंग बनती है- विरोध, विद्रोह, समाज को बदलने की आकांक्षा, क्रांतिकारिता, संत्रास, घृणा, ऊब, अकेलापन, अजनबीपन, व्यक्तिपरकता, क्षोभ, विवशता आदि मनोवृत्तियाँ संवेदनशील और विचारशील व्यक्तियों को ऐसी ही अन्तर्विरोधी और निषेधात्मक मानसिकता की ओर ढेल रहीं हैं। इस मानसिकता से उबरने की आवश्यकता है। इससे उबरने के लिये केवल कवि ही नहीं बल्कि समूचा बुद्धिजीवी समुदाय प्रयत्नरत है। कबीर का काव्य शाश्वत एवं चिरंतन है जो वायवीय कल्पनाओं का नीड़ नहीं बनाता बल्कि अपने जीवन यथार्थ को प्रस्तुत करता है। सामयिकता के गर्भ से प्रसूत सत्य ही ठोस, विश्वसनीय एवं टिकाऊ होता है अतः सामयिकता से लगाव सृजनशीलता का अवरोधक नहीं अपितु उसका प्राण-तत्व है जो उसके द्वारा संप्रेषित समय-निरपेक्ष, शाश्वत सत्य की जन्मभूमि बनाता है। सामयिक चेतना के गर्भ से ही वह संभाव्य चेतना निःसृत होती है जिसकी बदौलत रचनाकार को युग-स्रष्टा का दर्जा भी प्राप्त होता है। कबीर इस दृष्टि से युग-स्रष्टा ही नहीं अपितु युग-द्रष्टा भी हैं।

कबीर ने अपनी पूर्ण चेतना में न केवल अपना युग जिया बल्कि अपना

अतीत और आगत दोनों जिये हैं, इसलिये उनकी रचना-धर्मिता जो सृजन करती है उसका महत्त्व सर्वदा एवं सर्वथा है। कबीर की वाणियों ने जो अलख जगाया वह हमारे समसामयिक टूटते-बिखरते जीवन के सापेक्ष उतना ही महत्त्व रखता है जितना अपने युगीन-संदर्भों में था।

कबीर का युग दो धार्मिक संस्कृतियों के संधि का युग था, हिन्दू संस्कृति में भी धर्म प्रधान था, क्योंकि संतों की समकालीन भारतीय संस्कृति साधु-संस्कृति का पर्याय थी। नाथ, सिद्ध, जैनाचार्य आदि न केवल धर्म-प्रचारक थे अपितु पूरा का पूरा मध्ययुगीन सामाजिक, राजनीतिक जीवन इसके दर्शनों एवं विचारों पर आधारित था। इन संप्रदायों ने आपसी विद्वेष खड़ा करके संघर्षों द्वारा समाज को टुकड़ों में बाँटकर हावी होने का प्रयास किया, इससे समाज दुर्बल हो रहा था।

मंत्र और योग साधना के सम्मिलन से महायान विकसित होकर मंत्रयान कहलाया। महासुखवाद के प्रवेश से यह बज्रयान बना और इसके बाद सहजयान में पर्यवसित होकर बौद्ध-धर्म प्रायः लुप्त सा हो चला। इस तरह डगमगाती हुई संस्कृति की विकृति को कबीर ने झेला था और इससे मुक्ति चाही। कबीर ने समस्त भ्रामक तत्वों से भोली-भाली जनता को मुक्ति दिलाई। इतिहास बताता है कि साहित्यिक, धार्मिक, राजनीतिक, दार्शनिक, प्रत्येक स्तर पर कबीर आदि संतों ने लकीर को टुकराते हए फकीर की भूमिका निभाई। जो बातें आज से पाँच सौ साल पूर्व कही गईं वे आज भी सही हैं। यह अनुभूति आज भी उतनी ही गहरी और व्यापक है जितनी तब थी। सामाजिक स्तरों पर प्रतिबंध, जड़ताओं से मुक्ति का आह्वान जो संतों ने किया वह, समसामयिक अर्थों में पूर्णरूपेण प्रासंगिक है। यहाँ हम कबीर के काव्य को

समसामयिक संदर्भों में रखकर विभिन्न बिन्दुओं द्वारा समझने की कोशिश करेंगे।

### सांप्रदायिक सद्भावना

कबीर के युग में भिन्न-भिन्न मतों, संप्रदायों के लागों ने अपने-अपने संप्रदायों को श्रेष्ठ बताने का प्रयास किया। सभी संप्रदायों के मध्य जब ऐसी भावना पनपने लगी तो पारस्परिक कलह का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। कबीर इस पारस्परिक कलह को दूर करने के लिये, आपस में सांप्रदायिक सद्भाव बनाने के लिये, सदैव सचेष्ट बने रहे। आज भी सांप्रदायिकता का बोलवाला है; कहीं न कहीं सांप्रदायिक झगड़े होते ही रहते हैं। इन सांप्रदायिक झगड़ों का परिणाम कभी भी सकारात्मक नहीं होता बल्कि नकारात्मक ही होता है; और मानवता का ह्रास होता है। कबीर की दृष्टि में जो लोग सांप्रदायिकता जैसी संकीर्ण विचारधारा रखते हैं और किसी संप्रदाय विशेष को ही अन्य संप्रदायों से श्रेयस्कर मानते हैं उन्हें वे अच्छा नहीं समझते। उनकी दृष्टि में कोई भी धर्म या संप्रदाय श्रेष्ठ नहीं; सबसे अच्छा धर्म यदि कोई है तो वह है मानव-धर्म। वे हिन्दू एवं मुसलमानों की संकुचित सांप्रदायिक सोच पर तीव्र व्यंग्य करते हुए कहते हैं-

जे तू बाँभन बामनी जाया, तो आँन बाँट हवै काहे न आया।

जे तू तुरक तुरकनी जाया, तो भीतरि खतना क्यूँ न कराया।'

कबीर का कहने का तात्पर्य यही है कि संप्रदाय विशेष की परिधि में संकुचित रहकर मानवता का पथ स्थापित नहीं हो सकता। श्री विजयेन्द्र स्नातक का कथन है "भक्त कबीर ने यह अनुभव कर लिया था कि शास्त्र मर्यादा के साथ संप्रदाय-निष्ठा अनायास ही जुड़ी रहती है और शास्त्र तथा संप्रदाय की सीमा में रहकर

मानवमात्र के लिये भक्ति का मार्ग सर्व सुलभ पथ प्रशस्त नहीं किया जा सकता।”<sup>3</sup>

### मानवीयता

कबीर वस्तुतः युग स्रष्टा ही नहीं थे अपितु युग-द्रष्टा भी थे। उन्होंने अपने समय एवं समाज में मानवीय संबंधों को भली-भाँति देखा परखा था। तत्कालीन समाज में मनुष्य, मनुष्य में वैचारिक अन्तर्द्वन्द्व एवं वैमनस्यता की भावना व्याप्त थीं कुछ लोग अपने को जन्म से श्रेष्ठ समझते थे तो कुछ जातिगत आधार पर स्वयं को उच्च समझते थे, लेकिन कबीर इस विचारधारा को छिन्न-भिन्न कर समस्त मानवजाति को एक समान मानने का संकल्प लेकर कहते हैं-

एक बूँद एक मल-मूतर, एक चाम एक गूदा।

एक जोति तें सब जग उतपनाँ कौन बामन ,कौन सूदा।।<sup>4</sup>

कबीर की व्यंग्योक्तियों से हिन्दू-मुस्लिम सभी चिढ़े हुये थे किंतु वे सभी के प्रेम-पात्र थे, क्योंकि सच्चे मानव के जैसा उनमें वैमनस्य या विद्वेष नहीं था, बल्कि उनके मन में सुधार एवं प्रेम का भाव निहित था। श्री विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार “दोनों जातियाँ उन्हें कठोर कर्कश जानते हुये भी प्यार से अपनाना चाहती थीं। यही कबीर की सबसे बड़ी विजय है। यही मानवतावाद की ही विजय समझी जानी चाहिये।”<sup>5</sup>

आज के संदर्भ में भी कबीर के उसी मानवतावाद की जरूरत है जो उन्होंने वर्षों पूर्व स्थापित किया था। आज प्रत्येक क्षेत्र में चाहे नगरीय जीवन हो या ग्रामीण सर्वत्र मानवीय मुल्यों को पतित होते देखा जा सकता है। आज मानव ही

मानव का शत्रु है और तो और मानव अपने मानवीय गुणों से इतना गिर चुका है कि वह दानव बन गया है। अतः अब फिर से कबीर की वाणियों को ताजा करने का अवसर आ गया है इस संबंध में डॉ० गोविंद लाल छावड़ा का कथन सही है—

''अतीत को झकझोर कर देखें तो आज से चार सौ वर्ष पहले का एक कवि जिसे हिन्दी-पढ़ने-पढ़ाने वाली दुनिया कबीर के नाम से जानती है, आज भी आधुनिक है, उसके स्वप्नों का भारत आज भी अपूर्ण है; उनका मानवता का संदेश आज भी रिक्तता की पूर्ति कर रहा है। इतने बड़े अन्तराल के बाद भी आज कबीर के दोहे पुराने नहीं लगते। ऐसा लगता है जैसे उनकी रचना आज की स्थिति को सामने रखकर की गई हो।''<sup>6</sup>

### पंथ-निरपेक्षता

पंथ-निरपेक्षता धर्म-निरपेक्षता का ही समानार्थी शब्द है। इसका अर्थ है सभी धर्म सम्माननीय एवं समान हैं। कोई विशेष धर्म उचित या अनुचित नहीं है। कबीर कालीन समाज में सभी धर्मानुयायी अपने-अपने धर्म एवं पंथ (मार्ग) को अच्छा समझने के फेर में पड़े हुये थे। परिणामस्वरूप धर्मों को लेकर झगड़े विवाद होना सामान्य बात हो गई थी। कबीर के यहाँ कहीं भी धर्म या पंथ विशेष को लेकर कोई साखी या पद नहीं मिलता। उन्होंने एक ईश्वर की आराधना पर बल देकर मानव-धर्म की बात कही। आज भी पंथ-निरपेक्षता या धर्म निरपेक्षता की बात होती है लेकिन कोई ठोस हल सामने नहीं आते। आज कबीर की उन वाणियों को जानने की जरूरत है जो एक धर्म-मानव धर्म की बातों से ओत-प्रोत है और कबीर का ईश्वर घट-घट वासी है वह किसी विशेष व्यक्ति की निजी संपत्ति नहीं है। उसे पहचानने



की जरूरत है कबीर उसी ओर संकेत करते हैं-

*लोका जानि न भूलौ भाई।*

*खालिक खलक खलक मैं खालिक, सब घट रहयौ समाई।<sup>7</sup>*

कबीर ने जिस ईश्वर की कल्पना अपने मन में की थी, उन्होंने उसके नाम अलग-अलग दिये हैं लेकिन सबका मर्म एवं अर्थ एक ही है। डॉ० गीता सुरेश कुमारी आचार्य का कथन है “महात्मा कबीर की दृष्टि में राम, रहीम, केशव, करीम, अल्लाह, बिसम्भर, सभी एक हैं और कोई दूसरा नहीं है। ईश्वर एक ही है, बस उसके नाम अलग-अलग हैं। यही उनकी सद्भावना थी कि वे सभी संप्रदायों के गुण अंगीकार करते हुए उसमें छुपी हुई बुराई को दूर करने का प्रयत्न करते थे।”<sup>8</sup>

कबीर ने समस्त धर्मों की बुराइयों को बाहर लाकर प्रस्तुत किया और उनकी अच्छाइयों को स्वयं भी हृदयगम किया और दूसरे लोगों को भी इसके लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया। वे कहते हैं कि इस धरा-धाम पर भिन्न-भिन्न भाँति के वन, उपवन हैं, जिनमें तरह-तरह के फल-फूल लगे हैं, यदि इनमें से जो मीठे एवं स्वादिष्ट हैं उन्हें ग्रहण कर लो और जो मीठे या स्वादिष्ट नहीं हैं उनसे दूर रहो। इसी तरह इस पृथ्वी-तल पर भिन्न भिन्न तरह के साधुजन हैं जो वस्तुतः सज्जन हैं उनसे कुछ लाभ उठाओ और जो दुर्जन हैं उनसे सर्वदा बचे रहो। कबीर ने कैसा रूपक बाँधा है जो समस्त धर्मों की सार-ग्राहिता पर बल देता है-

*बसुधा बन बहु भाँति हैं, फूल्यो फल्यो अगाध।*

*मिष्ट सुबास कबीर गहि, विषम कहै किहि साध।।<sup>9</sup>*

### बाह्याडम्बरो का विरोध

कबीर कालीन समाज में बाह्याडम्बरो, कुरीतियों, रूढियों एवं पाखण्डपन का बोल वाला था। इन सबके कारण समाज दूषित हो रहा था। लोग तरह-तरह के भेश धारण कर भोली-भाली जनता को ठग रहे थे। साधू का भेश धरकर माला-तिलक लगाकर स्वयं को भगवत-भक्त कहते-फिरते थे लेकिन उनके कर्म उन्हें भगवत-भक्त नहीं कहने देते थे, क्योंकि वे ऊपर-ऊपर से भक्त थे अन्दर से तो वे पूरे पाखण्डी थे। लोग उनके ऊपरी आवरण को देखकर उनसे ठगे जाते थे। कबीर ऐसे लोगों से दूर रहते थे और ऐसे लोगों को खरी-खोटी सुनाते थे। आज भी ऐसे लोग मिल जाते हैं जो पाखण्डी होते हैं और लोगों को ठगते-फिरते हैं। ऐसे लोगों से सचेत रहने के लिये कबीर बड़े स्पष्ट स्वरों में कहते हैं कि जो लोग अपने बालों को कटवा लेते हैं, गंजे होकर घूमते हैं और स्वयं को साधुजन कहलाते हैं। ऐसे लोग यदि अन्दर से शुद्ध नहीं हैं तो वे साधुजन नहीं हो सकते चाहे वे अपने केशों को एक बार कटवायें या सौ बार। कबीर अन्तःकरण की शुद्धि पर बल देकर पाखण्डों और बाह्याडम्बरो पर चोट करते हुए कहते हैं-

कैसों कहा बिगाड़िया, जे मूँड़ै सौ बार।

मन कौं न काहे मूँड़िये, जामै विषै बिकार।<sup>10</sup>

इस संदर्भ में डॉ० शेरसिंह बिष्ट का कथन है कि “कबीर का रास्ता बहुत साफ था..... वे समस्त बाह्याचारों के जंजालों और संस्कारों को विध्वंस करने वाले क्रांतिकारी थे।”<sup>11</sup>

### वर्ण व्यवस्था पर प्रहार

वर्ण-व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जिसने समस्त मानव समाज को धर्म, जाति के आधार पर चार वर्गों में विभक्त कर दिया है। इसमें चार वर्ग होते हैं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सूद्र। इसमें ब्राह्मण सर्वोपरि हैं और सूद्र सबसे निचले दर्जे के समझे जाते हैं। कबीर कालीन समय और समाज में भी यही पद्धति थी जिससे कबीर सहमत नहीं थे। कबीर का मानना था कि सभी मनुष्य एक ही ईश्वर (नूर) से उत्पन्न हैं तब फिर वे अलग-अलग वर्ण, जाति धर्म के कैसे हुये? कबीर का मानना है कि कोई भी धर्म, जाति, कुल या वंश से बड़ा नहीं होता। सबसे बड़ा वही होता है जिसके हृदय में मानवीयता की भावना है। यदि मनुष्य जन्म से उच्च हो परन्तु उसका कर्म इतना तुच्छ एवं निकृष्ट प्रवृत्ति का हो तो उसे भला कोई भी बड़ा नहीं कहेगा। अतः सभी मनुष्य परस्पर एक समान हैं न कोई बड़ा है और न कोई छोटा। बड़ा वही जिसका कर्म बड़ा है और छोटा वही जिसका कर्म छोटा है वे ब्राह्मण और शूद्र में भेद नहीं मानते। उनका कहना है कि सभी का स्रष्टा एक है, सभी के भीतर एक ही चर्म है, रक्त है, सभी में मल-मूत्र इत्यादि एक समान हैं इसलिये न कोई सूद्र है न कोई ब्राह्मण। कबीर कहते हैं-

एक बूँद एक मल मूतर, एक चाम एक गूदा।

एक जोति थें सब उतपनाँ, कौन ब्राह्मण कौन सूदा।।<sup>12</sup>

### प्रेम का संदेश

प्रेम ऐसी भावना है जो सर्वथा अपरिहार्य रहती है। प्रेम ही व्यक्ति-व्यक्ति को निकट लाता है, यही वह शक्ति है जो वैमनस्यता की खाई को

पाटती है। कबीर के समय में समाज के सभी लोग एक-दूसरे से अलगाव की भावना रखते थे, उनमें पारस्परिक कलह एवं द्वेष था। कबीर ने सम्पूर्ण समाज को प्रेम के सूत्र में पिरोने का अथक प्रयास किया। आज भी हम कितने आगे बढ़ गये हैं परन्तु उतना ही स्वकेन्द्रित हो गये हैं सभी जगह स्वार्थपरता है। सभी को अपने अस्तित्व की चिंता है कि उसकी अपनी एक विशेष पहचान बने। इसके लिये वह दिन-रात प्रयत्नरत है परन्तु जितना वह सैद्धांतिक है वह उतना व्यावहारिक नहीं है। कबीर भी शास्त्रीय ज्ञान को तिलांजलि देकर लोक-व्यवहार प्रेम की बात कहकर व्यक्ति को एक दूसरे के समीप लाने की चेष्टा करते हैं वे पोथी ज्ञान को त्यागकर एक प्रेम भाव की बात करते हैं-

पोथी-पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ।

एकै आषर पीव का, पढ़ै सु पंडित होइ॥<sup>13</sup>

लेकिन कबीर का यह भी कहना है कि यह प्रेम सहज ही प्राप्त नहीं होता इसके लिये समर्पण की भावना चाहिये बिना इसके प्राप्त नहीं हो सकता-

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाँहि।

सीस उतारै हाथि करि, सो पैसे घर माँहि॥<sup>14</sup>

### आचरण की शुद्धता

व्यक्ति की पहचान उसके चरित्र से ही होती है। व्यक्ति के चरित्र में सद्वृत्तियाँ हैं तो उसे सभी अच्छा कहेंगे। ये सद्वृत्तियाँ ही व्यक्ति के चरित्र को अच्छा बनाती हैं और उसका आचरण भी शुद्ध होता है। समाज में सद्जनों की आवश्यकता है। सज्जन लोग ही समाज को उचित दिशा में ले जा सकते हैं कबीर

भी ऐसे सज्जनों की बातें करते हैं जो स्वयं भी सज्जन हों और अपने जैसे लोगों को बनाने की कोशिश करते हैं। कबीर ऐसे मनुष्य की तलाश में फिरते हैं जो उनके भीतर के अवगुणों को बताकर उनके चरित्र को शुद्ध करे-

हम देखत जग जात है, जग देखत हम जाँहि।

ऐसा कोई ना मिले, पकड़ि छुड़ावे बाँहि।।<sup>15</sup>

कबीर तो स्वयं को ही दोषी ठहराते हैं कि मैं स्वयं बहुत बुरा हूँ मैं किसे बुरा कहूँ? वस्तुतः यदि समाज में यह बात हर कोई व्यक्ति अपने ऊपर लागू कर ले कि मैं ही सबसे बुरा हूँ मैं किसी दूसरे की बुराई को न बताकर उस बुराई को अपने भीतर से दूर करूँ तो निश्चित ही समाज से दुष्प्रवृत्तियाँ समाप्त हो जायेंगी कबीर तभी तो कहते हैं-

बुरा-बुरा सब को कहै, बुरा न दीसे कोइ।

जे दिल खौजा आपणा, मुझसा बुरा न कोइ।।<sup>16</sup>

### सत्संग पर बल

कबीर जिस परिवेश में जीवन यापन कर रहे थे; उसमें भाँति-भाँति के लोग थे। कबीर उन लोगों के साथ रहना पसंद करते थे जो साधुओं के संसर्ग में रहते थे। कबीर स्वयं भी सज्जन लोगों के सानिध्य में रहते थे। मनुष्य जिस परिवेश में रहता है उसका प्रभाव उस पर पड़ना स्वाभाविक है। यदि वह अच्छे वातावरण में रहता है तो उस पर वैसा ही प्रभाव होता है और यदि वह बुरे वातावरण में रहता है तो उस पर उसी के अनुरूप प्रभाव पड़ता है और वह बुरा बन जाता है। कबीर बुरे वातावरण से दूर रहने के लिये सचेत करते हैं और साधुओं की संगति में रहने

को श्रेष्ठ बताकर लोगों को प्रेरित करते हैं-

कबीर संगति साधु की, कदै न निरफल होइ।

चंदन हौसी वाँवना, नीव न कहसि कोइ।।<sup>17</sup>

आज के परिवेश में भी भिन्न-भिन्न प्रकार के वातावरण देखने को मिलते हैं कोई अपने को किसी परिवेश में पाना अच्छा समझता है तो कोई किसी अन्य में। लेकिन वास्तव में मनुष्य को उसी परिवेश में रहना चाहिये जहाँ से उसे कुछ लाभ हो अन्यथा उस स्थान विशेष का जहाँ वह रहता है उसका प्रभाव अवश्य ही पड़ेगा। कबीर सज्जन लोगों की संगति को सर्वोत्तम मानते हैं क्योंकि उससे मनुष्य का आचरण शुद्ध होता है।

### गुरु-शिष्य संबंध

कबीर गुरु-शिष्य संबंधों पर विचार करते हुये दोनों के विषय में बताते हैं कि एक अच्छे गुरु तथा एक अच्छे शिष्य को कैसा होना चाहिये? कबीर ने भी ऐसे गुरु की तलाश की जो उन्हें सद्मार्ग की ओर ले जाये और इस भव-सागर से पार करा दे-

ऐसा कोई ना मिले, हम कौं दे उपदेस।

भौसागर में डूबता, कर गहि काढ़ै केस।।<sup>18</sup>

कबीर का कहना है कि यदि शिष्य में ही कमी है तो गुरु उसे दूर करने की कोशिश ही कर सकता है लेकिन शिष्य उन कमियों को त्यागना ही न चाहे तो भला फिर गुरु क्या कर सकता है? यथा-

सतगुरु बपुरा क्या करै, जे सिषही माँहें चूक।

भावै त्यूँ प्रमोधि ले, ज्यूँ बंसि बजाई फूक।।<sup>19</sup>

कबीर का मानना है कि जिस तरह एक अच्छे गुरु का एक अच्छे शिष्य के लिये होना भी जरूरी है ठीक उसी तरह एक अच्छे शिष्य के लिये एक अच्छे गुरु का होना भी जरूरी है। यदि दोनों हीन प्रवृत्ति के हुये तो उनकी दिशा अंधों जैसी होगी जो कुये में जाकर गिर सकते हैं- तभी कबीर कहते हैं-

जाका गुरु भी अंधला, चेला निरा निरंध।

अंधा अंधा ठेलिया, दूँन्यूँ कूप पड़ंत।।<sup>20</sup>

### कथनी की अपेक्षा करनी पर बल

कबीर ने ऐसे लोगों की खूब खिल्ली उड़ाई जो कहते तो बहुत कुछ है लेकिन जो कहते हैं स्वयं उन बातों पर नहीं चलते। कबीर के युग में ऐसे लोग यत्र-तत्र पाये जाते होंगे जो दूसरों को समझाते फिरते होंगे लेकिन स्वयं उन बातों से शून्य होंगे। कबीर का ऐसे लोगों पर क्रोधित होना अस्वाभाविक नहीं है।

कबीर ने जिस बात पर बल दिया वह है- 'करनी' अर्थात् जो बात मुँह से निकालो स्वयं भी उस बात पर चलो। यदि दूसरों को चलने के लिये कहते रहोगे और स्वयं उनसे बचते रहोगे तो ऐसे लोगों से कबीर का कुछ लेना-देना नहीं है। आज के युग में भी ऐसे बहुत से लोग मिल जायेंगे जो बहुत कुछ कहते सुनते रहते हैं परन्तु स्वयं को उन बातों से अनभिज्ञ सा रखते हैं। ऐसे लोग दूसरों की दृष्टि में भला बनना चाहते हैं कबीर उनकी वास्तविक स्थिति से लोगों को परिचित कराते हैं कि देखो ऐसे लोगों से सावधान रहो जो दूसरों को उपदेश देते हैं परन्तु उन बातों को अपने ऊपर लागू नहीं करते। कबीर बड़े तीव्र स्वर में कहते हैं-

कथणीं कथी तौ क्या भया, जे करणी नाँ ठहराइ।

कालबूत के कोट ज्यूँ, देषतही ढहि जाइ।।<sup>21</sup>

जो लोग उपदेश दते फिरते हैं और स्वयं उन पर अमल नहीं करते, कबीर की दृष्टि में वे लोग पाखण्डी हैं जो स्वयं को बहुत बड़ा ज्ञानी एवं शास्त्रज्ञ समझते हैं। वास्तव में कबीर ने ऐसे लोगों के बाह्याचारों एवं कर्मकांडों पर जमकर प्रहार किया है कि वे तिलमिला जाते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि “उपासना ब्रह्मस्वरूप पर आग्रह करने वाले और कर्मकांड को प्रधानता देने वाले पंडितों और मुल्लाओं दोनों को उन्होंने खरी-खोटी सुनाई और ‘राम-रहीम’ की एकता समझाकर हृदय को शुद्ध और प्रेममय बनाने का उपदेश दिया। देशान्तर और उपासना विधि के कारण मनुष्य-मनुष्य में जो भेद उत्पन्न हो जाता है, उसे दूर करने का प्रयत्न उनकी वाणी बराबर करती रही।”<sup>22</sup>

कबीर ने एक स्थान पर उन लोगों की जो मुँह से कहते कुछ हैं और करते कुछ और हैं- बड़ी खिल्ली उड़ाई कि ऐसे लोग कुत्ते के समान होते हैं जो ऐसी चाल चालते हैं-

जैसी मुख से नीकसै, तैसी चालै नाँहि।

मानिष नहीं ते स्वानगति, बाँध्या जमपुर जाँहि।।<sup>23</sup>

कबीर की इसी बात को लक्ष्य करके आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं “व्यंग्य करने में और चुटकी लेने में भी कबीर अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानते। पंडित और काजी, अवधू और जोगिया, मुल्ला और मौलवी सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला जाते हैं। अत्यंत सीधी भाषा में वे ऐसी चोट करते हैं कि चोट खाने वाला केवल



धूल झाड़ के चल देने के सिवा और कोई रास्ता नहीं पाता।”<sup>24</sup> इस तरह कबीर ने ‘कथनी और करणी’ में तालमेल बैठाने की बात की।

### दीन-हीन मानव के हितैषी

कबीर ने अपने समय में ऐसे लोगों को बखूबी देखा था जो हर तरह से व्यथित, व्यग्र एवं बेचैन थे। जब मनुष्य चारों ओर से हताश निराश हो, उस समय में उसे शांति दिलाने की आवश्यकता होती है कबीर ऐसे महापुरुषों में से एक थे जिन्होंने मानव के प्रति मानवीयता की भावना को व्यक्त किया है।

आज का समय कबीर के समय से काफी बदल चुका है परंतु मनुष्य अब भी दुश्चिंता, अवसाद, आतंक से ग्रस्त है। चारों ओर क्रूरता, छल-प्रपंच, सत्ता की विश्वासघाती आकांक्षाओं, संहारक अस्त्र-शस्त्र से घिरा मनुष्य आत्मविपन्न हो गया है। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए जाति, धर्म, नस्ल और वर्ग के नाम पर कठपुतली की भाँति उसका उपयोग किया जाना उसकी विडम्बना हो गई है। अतीत से वंचित और भविष्य के नाम पर आशंकित आम आदमी आज जितना अप्रासंगिक हो गया है उतना कभी नहीं रहा। ऐसी स्थिति में कबीर का स्वर मानो उस पराजित, निरीह पीढ़ी के प्रति प्रस्फुटित हुआ, जिसने उसे यथार्थ से अवगत कराकर जाग्रत किया। वे कहते हैं कि मनुष्य कितना मूर्ख है कि संसार के मोह-माया में फँसकर अपने दीन, धर्म को भी खो चुका है जब मरता है तो यह सारी दुनिया यहीं रह जाती है उसके हाथ में उस समय न दीन होता है और न दुनिया। उसके हाथ खाली रह जाते हैं तब फिर पछताता है कि यह मैंने क्या किया? मैं तो संसार में गाँफिल था। कबीर तभी कहते हैं-

दीन गंवाया दुनी सौं, दुनी न चाली साथि ।

पाइ कुहाड़ा मारिया, गाफिल अपने हाथि ।<sup>25</sup>

इस प्रकार कबीर ने मानव हित के लिये नाना यत्न एवं उपाय किये। कबीर ने समाज को आदर्श बनाने के लिये कहीं शांति से काम लिया है तो कहीं क्रांति से भी। वे जीवन-पर्यन्त मानव हितैषी रहे किंतु मानव ही ऐसे थे कि उनकी मानने को तैयार ही नहीं थे। कबीर ऐसे लोगों की दशा पर चिंता व्यक्त करते हुये रोते हैं-

सुखिया सब संसार है, खाए अरु सोवै।

दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।<sup>26</sup>

लेकिन ऐसा भी नहीं है कि कबीर अपने उद्देश्य में असफल रहे हों। उन्होंने अपने साथ अनेक लोगों को लेकर यत्र-तत्र सर्वत्र देशाटन भी किया। उनके विचारों, उपदेशों से प्रभावित होकर अनेक कबीर के अनुयायी हुये जिन्होंने बाद में कबीर के नाम से अपने-अपने पंथ खड़े किये। इस तरह कबीर एक ओर मानव की दयनीय दशा पर उदासीन होते हैं तो दूसरी ओर लोगों को अपने साथ लेकर विद्रोह के लिये तत्पर होते हुए द्रष्टव्य होते हैं-

हम घर जाल्या आपणाँ, लिया मुराड़ा हाथि ।

अब घर जालौं तास का, जे चलै हमारे साथि ।<sup>27</sup>

### गुरु की महिमा-

भारतीय चिंतन परंपरा में गुरु का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। जब बालक घर, परिवार में माता-पिता, भाई, बहिन से अलग होकर विद्यालय या गुरुकुल

में जाता है तो वहाँ पर वह गुरुओं की छत्र-छाया में रहता है। बालक को जितनी शिक्षा गुरुओं द्वारा प्रदान की जाती है उतनी न तो वह घर, परिवार से ले सकता और न स्वयं ही।

आज का समय कितना ही विकसित हो गया है। दूरसंचार, तकनीकी इत्यादि ने प्रत्येक क्षेत्र में एक प्रकार की क्रांति ला दी है जिसमें शिक्षा भी सम्मिलित है। घर बैठे-बैठे कम्प्यूटर पर इन्टरनेट के माध्यम से शिक्षा को अर्जित किया जा सकता है। परन्तु फिर भी व्यक्ति को स्वयं को शिक्षित करने के लिये किसी न किसी का आश्रय लेना ही पड़ता है। अतः व्यक्ति को बिना शिक्षक या गुरु के ज्ञान प्राप्त हो जाय यह संभव नहीं है। उसे गुरु की आवश्यकता प्रत्येक क्षेत्र में पड़ती ही है। इस तरह गुरु की महत्ता सदैव रहेगी। यह बात अलग है कि अब गुरु को उस दृष्टि से न देखा जाता हो जैसा पहले देखा जाता था। इसके पीछे कई कारण हैं जैसे शिक्षार्थी पहले गुरु-सेवा में निमग्न होकर शिक्षा अर्जित करता था अब वह धन-सम्पत्ति के बल पर शिक्षा प्राप्त करता है। लेकिन गुरु की महत्ता पहले की अपेक्षा कम तो हुई है इसमें संदेह नहीं। लेकिन इससे शिक्षकों या गुरुओं को उपेक्षित नहीं कहा जा सकता।

पहले का जो समय एवं परिवेश था वह अब नहीं रहा। इसलिये समय एवं परिस्थितियों के परिवर्तित होने से समाज में उन मानकों में भी बदलाव आने लगता है और यह समय की मांग होती है। समय के बदलने से व्यवस्था में जो परिवर्तन होता है वह एकांगी न होकर बहुआयामी होता है। व्यवस्था द्वारा जो मानक या नियम निर्धारित होते हैं वे पुराने नियमों को आधार बनाकर ही होते हैं। ऐसा नहीं है कि

प्राचीन मानदण्डों को बिलकुल समाप्त कर दिया जाता हो। ठीक इसी तरह आज भी गुरु की महत्ता है। आज मनुष्य विकास की जिस चोटी तक पहुँचा है उसके पीछे गुरुओं एवं शिक्षकों के प्रयास को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

कबीर ने भी गुरु की महिमा में अनेक उद्गार प्रकट किये हैं। कबीर ऐसे गुरु पर न्योछाबर होते हैं जिसने कबीर को रामरूपी नाम दिया लेकिन बेचारे कबीर के पास अब गुरु को दक्षिणास्वरूप देने को कुछ भी पास है ही नहीं तो दें क्या? यही लालसा कबीर को खाये जाती है-

राम नाम के पटंतरे, दैबे कौं कुछ नाहिं।

क्या लै गुरु संतोषिये, हौस रही मनमाँहि।<sup>28</sup>

प्रत्येक मनुष्य को एक आदर्श गुरु बनाना चाहये जो समय-समय पर उसका दिग्दर्शन कराता रहे। यदि मनुष्य ऐसा नहीं करता तो वह दिग्भ्रमित भी हो सकता है। अर्थात् बिना गुरु के वह अधूरा सा रहता है। कबीर भी बिना गुरु के व्यक्ति को अधूरा ही मानते हैं जो दर-दर भटकता फिरता है-

कबीर सतगुरु ना मिल्या, रही अधूरी सीख।

स्वाँग जती का पहिरि करि, घरि-घरि माँगे भीख।<sup>29</sup>

सतगुरु वही होता है जो शिष्य की कमियों को दूर करता है। शिष्य की कमियों के शोधन के लिये वह जिस वाणी को अपनाता है वह ऐसी होती है कि शिष्य के अन्तःकरण को शोधित करती हुई चली जाती है। कबीर भी वैसे ही गुरु की ओर संकेत करते हुये कहते हैं- सद्गुरु ने ऐसा शब्द भेदी वाण चलाया है कि जिससे मेरा दर्प चकनाचूर होकर कलेजे में छेद पड़ गया है-

सतगुरु साँचा सूरिवाँ सबद जु बाहया एक।

लागत ही मैं मिलि गया, पढ़या कलेजे छेक॥<sup>30</sup>

एक अच्छा गुरु एक अच्छे शिष्य की तलाश में रहता है और एक अच्छा शिष्य एक अच्छे गुरु की तलाश में। जब दोनों एक विचार शैली के मिल जाते हैं तो बहुत अच्छा होता है। लेकिन यदि शिष्य अच्छा नहीं मिला तो एक बार के लिये गुरु उसे सही मार्ग पर ला सकता है परन्तु गुरु शिष्य के अनुरूप नहीं मिले या ऐसा गुरु, हो जो शिष्य जैसी मंदबुद्धि वाला हो तो इससे अनर्थ ही होगा कबीर तभी कहते हैं-

जाका गुरु भी अंधला, चेला निरा निरंध।

अंधा अंधा ठेलिया, दून्यँ कूप पड़ंत॥<sup>31</sup>

गुरु-शिष्य संबंध पर आगे विचार करते हुये कबीर कहते हैं कि एक गुरु मोह या लालचवश इस खोज में हो कि मुझे ऐसे शिष्य मिलें जिनसे धन-प्राप्ति भी हो और मेरा सम्मान भी बढ़े और उधर शिष्य मोहवश यह सोचे कि मुझे ऐसा गुरु मिले जो अच्छा ज्ञान प्रदान करे और मेरी गणना सुशिक्षित समुदाय में होने लगे। तब उस समय दोनों इसी विचार में निमग्न रहेंगे तो उनकी स्थिति बैसी ही होगी जो पत्थर की नाव पर आरूढ़ होकर नदी की धारा में डूब जाते हैं। कबीर इसी ओर इशारा करते हुये कहते हैं-

नाँ गुरु मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव।

दून्यँ बूड़ें धार में, चढ़ि पाथर की नाव॥<sup>32</sup>

कबीर ने जहाँ एक ओर एक अच्छे गुरु की अपरिहार्यता पर बल दिया

है कि उसे शिष्यानुरूप होना चाहिये। ठीक उसी तरह एक अच्छे शिष्य को अपने गुरु के अनुरूप होना चाहिए। यदि शिष्य गुरु द्वारा दिये गये प्रवचनों का अर्थ अपनी इच्छानुसार कुछ और ही समझ बैठे तो इसमें गुरु को दोषी नहीं ठहराया जायेगा बल्कि उस स्थिति में शिष्य ही दोषी होगा। इसी बात को कबीर ने बड़े सटीक ढंग से व्यक्त किया है-

*सतगुरु बपुरा क्या करै, जे सिषही माँहैं चूक*

*भावै त्यों प्रमोधि ले, ज्युँ वंसि बजाई फूक।।<sup>33</sup>*

मनुष्य के भीतर लोभ-मोह, माया इत्यादि वृत्तियां जन्मजात होती हैं जिनका संबंध मनुष्य के लिये भौतिक-जगत तक सीमित है। जब तक मनुष्य जीवित रहता है ये वृत्तियाँ तब तक उसके ऊपर आच्छादित रहती हैं। परन्तु मनुष्य इन सबके कारण मात्र भौतिक वस्तुओं तक अपने को सीमित कर ले तो इसमें उसे थोड़े समय के लिये दैहिक सुखानुभूति तो हो सकती है लेकिन आत्मिक सुख मिले यह नहीं हो सकता। आत्मिक सुखानुभूति के लिये उसे भौतिक धरातल से ऊपर उठकर आध्यात्मिकता में जाना होगा। आध्यात्मिक धरातल पर वह स्वयं अकेला नहीं आ सकता उसके लिये उसे वहाँ तक पहुँचाने में गुरु उसका मार्ग प्रशस्त करे। कबीर उसी गुरु की ओर शिष्य को इंगित करते हैं जो शिष्य को सांसारिक चकाचौंध से हटाकर आत्म-शांत्वना एवं आत्मिक सुखानुभूति के लिये मार्ग बताता है और उसका उत्थान एवं उन्नयन करता है अन्यथा उसकी गति पतंगे की भाँति होती है जो दीपक की ज्वाला से आकर्षित होकर स्वयं को नष्ट कर देता है। कबीर ने यहाँ दीपक को सांसारिक चकाचौंध एवं पतंगे को शिष्य से प्रतीकित कर बड़ा सटीक रूपक बाँधा

है जिसमें गुरु की अपरिहार्यता पूर्णतः व्यंजित होती हुई द्रष्टगत होती है-

*भली-भई जु गुरु मिल्या, नहीं तर होती हौणि।*

*दीपक दिष्टि पतंग ज्यूँ, पड़ता पूरी जौणि।।<sup>34</sup>*

सच्चा गुरु वही होता है जो अपने शिष्य का लौकिक-कल्याण के साथ-साथ अलौकिक-कल्याण भी करे। कबीर भी इसी बात पर जोर देते हैं कि सद्गुरु वही जो अपने भूले-भटके हुये शिष्य को सद्-पथ पर ले आये और इसके साथ-साथ उसका आत्म-साक्षात्कार उस अनंत, अगोचर, असीम सत्ता से करा दे जिसको वह विस्मृत कर बैठा है । सद्गुरु अपने शिष्य के बंद नेत्रों को खोल दे जिनसे वह अपने स्रष्टा को अच्छी तरह पहचान सके। कबीर ऐसे गुरु को सच्चा गुरु (सद्गुरु) मानते हुये उसकी महत्ता को वर्णित करते हैं जिसकी महिमा किसी काल विशेष तक सीमित या संकुचित नहीं हो सकती अपितु वह सदैव एवं सर्वथा रहने वाली है-

*सतगुरु की महिमा अनैत, अनैत किया उपगार।*

*लोचन अनैत उघाडिया, अनैत दिखावण हार।।<sup>35</sup>*

इस तरह कहा जा सकता है कि मनुष्य के लिये पग-पग पर एक अच्छे गुरु की नितांत आवश्यकता होती है। सद्गुरु ही उसका दिग्दर्शन भली-भाँति करता है। इसलिये गुरु के महत्व को कदापि विस्मृत नहीं किया जा सकता।

**नर-नारी के प्रति दृष्टिकोणः**

प्रायः कबीर के बारे में यह धारणा व्याप्त है कि कबीर नारी निंदक या नारी के विरोधी थे लेकिन ऐसा नहीं है। कबीर ने नारी का वहीं विरोध या निंदा की है जहाँ पर वह साधक की साधना में बाधा बनकर आई है। लेकिन दूसरी ओर

उन्होंने नारी के उस रूप की प्रशंसा भी की है जहाँ वह पतिव्रता नारी के रूप में पाई जाती है।

आज नारी को लेकर जो आलोचना-प्रत्यालोचना होती दिखती है उसमें नारी को पुरुष के समान लाने की बात है और नारी को पूर्ण स्वतंत्र करने की माँगें हैं और बहुत कुछ महिला लेखिका नारी स्वातंत्र्य लेखन के केन्द्र में भी हैं। नारी स्वतंत्रता को इतनी ऊँचाई पर लाना चाहती हैं कि पुरुष नारी से पीछे रह जाये। नारी-विमर्श में केवल महिला लेखिका ही नहीं बल्कि पुरुष लेखक भी हैं जो नारी स्वातंत्र्य की चर्चा करते हैं। वे नारी को पूर्णतः स्वच्छंद बनाने के पक्षधर हैं।

वस्तुतः नर और नारी एक ही ईश्वर की कृति हैं। उन दोनों में समानता होनी चाहिये। न तो नारी की अपेक्षा पुरुष को इतने अधिकार प्राप्त हों कि वह स्त्री को मात्र दासी समझ बैठे और उसका गलत उपयोग करें और न स्त्री को इतनी स्वच्छंदता दी जाय कि वह पुरुष पर हावी हो जाये। बल्कि दोनों के मध्य संतुलन की स्थिति होनी चाहिये तभी उन दोनों के बीच पूर्णतः सामंजस्य स्थापित हो सकेगा

प्रायः नारी के विषय में यह धारणा है कि पुरुष की तुलना में नारी कम विवेकशील होती है। वैज्ञानिक तथ्यों पर भी यह बात सिद्ध है कि नारी पुरुष की अपेक्षा अविवेकशील है। इसके अलावा समस्त धर्म-ग्रंथों में भी मिलता है कि पुरुष नारी की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। ये बातें ठीक हो सकती हैं लेकिन आजकल नारी ने इस अवधारणा को काफी पीछे छोड़ दिया है और अब वह इतनी विकसित हो चुकी है कि उसने अपनी तुलना में पुरुषों को भी पीछे छोड़ दिया है। नारी ने प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह शिक्षा हो, राजनीति हो, साहित्य हो, प्रौद्योगिकी हो, अनुशासन



हो यहाँ तक कि खेलों में भी उसने अपना स्थान सर्वोपरि बना लिया है। अतः अब वह पहले की भाँति घर की चार दीवारी में सीमित नहीं है बल्कि उसने अपनी एक अस्मिता कायम की है इसमें किसी को संदेह नहीं होना चाहिये । परंतु नारी को पूर्ण स्वच्छंद कर दिया जाय इससे स्थिति बनने की अपेक्षा बिगड़ सकती है क्योंकि स्वतंत्रता और स्वच्छंदता में अन्तर होता है। स्वतंत्रता में चाहे पुरुष हो या स्त्री उसके ऊपर कुछ अंकुश रहते हैं जिनकी परिधि के भीतर ही वह रहकर अपने व्यक्तित्व का विकास करता है लेकिन स्वच्छंदता की स्थिति में स्त्री हो या पुरुष वह उन अंकुशों के आगे अर्थात् उस सीमा का अतिक्रमण कर जाता है जो उसको सीमित किये रहती है। अतः स्वच्छंद स्थिति में चाहे वह पुरुष हो या स्त्री व्यवस्था गड़बड़ा सकती है। अतः जो लोग स्त्री स्वातंत्र्य को चर्मोत्कर्ष पर लाने की बात कहते हैं वे व्यवस्था में ऐसी कमी लाने की बात कहते हैं जिससे परिणाम घातक हो सकते हैं। अतः स्त्री को पूर्ण स्वच्छंद नहीं होना चाहिये।

समाज में जहाँ स्त्रियाँ स्वच्छंद होकर जीवन-यापन करती हैं उससे समाज की दुर्गति होती है। यही बात पुरुष के संबंध में भी कही जा सकती है क्योंकि जब वे स्वच्छंद होते हैं तो अनेक ऐसे दुष्कर्म कर बैठते हैं जिनसे समाज दूषित होता है। कबीर ने नर-नारी की इसी कुप्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुये बताया है कि नर हो या नारी जब तक वह काम-वासना युक्त जीवन यापन करता है अर्थात् वह स्वच्छंद होकर काम-प्रवृत्त रहता है या रहती है तब वे दोनों नरक की ओर ही उन्मुख रहते हैं लेकिन जब वे निष्काम भाव से ईश्वराभिमुख होने लगते हैं तो वे ईश्वर के समीप होकर स्वर्ग की ओर उन्मुख हो जाते हैं कबीर ने इसी

बात को इस तरह कहा है-

नर नारी सब नरक है, जब लग देह सकाम।

कहै कबीर तैं राम के, जे सुमिरै निहकाम।<sup>१०</sup>

कबीर ने नर-नारी के कुकृत्यों की कितनी सुन्दर एवं सार्थक व्यंजना की है। बात बिल्कुल ठोस एवं प्रासंगिक है कि जब पुरुष या स्त्री निरंकुश एवं स्वच्छंद होकर कुकर्मी की ओर अग्रसर होते हैं तो वे काम वासना के शिकार भी होते हैं इससे वे स्वयं तो दूषित होते हैं साथ में समाज को भी दूषित करते हैं। अतः कबीर ने इसी बात से सचेत रहने की ओर मानव का ध्यान आकृष्ट किया है।

कबीर ने जहाँ नारी की निंदा की है वहाँ वे उस नारी की बात कहते हैं जो मनुष्य के मार्ग में बाधा बनकर आती है। उस समय वह स्त्री मनुष्य की अपनी निजी हो या अन्य किसी की, वहाँ उन्होंने उसका खुलकर विरोध किया है कि उस स्त्री से सदैव दूर रहो जो कुलटा है अर्थात् जिसके गुण अच्छे नहीं हैं चाहे वह अपनी हो या पराई उसका भोग करने से नरक की प्राप्ति ही होगी अतः उससे सचेत रहो कबीर तभी कहते हैं-

नारि पराई आपणीं, भुगत्या नरकहि जाइ।

आगि आगि सबरौ कहै, तामैं हाथ न बाहि।<sup>११</sup>

कबीर ने उस नारी से सचेत रहने की ओर संकेत किया है जो थोड़ी देर में बुराई-भलाई करा देती है। यह नारी का वह रूप है जो जरा सी देर में लड़ाई करा दे और थोड़ी देर में मेल। अतः ऐसी स्त्री चाहे अपनी हो या अन्य की उससे दूर रहना ही श्रेष्ठकर है क्योंकि उसका पता नहीं कब अनिष्ट कर बैठे कबीर कहते हैं-

जोरू जूठणि जगत की, भल-बुरे का बीच ।

उत्थम ते अलगे रहें, निकट रहें तें नीच।<sup>38</sup>

कबीर ने स्त्री एवं पुरुष को दाम्पत्य-प्रेम के बंधन में रहने के लिए कहा है। स्त्री एवं पुरुष दोनों में से कोई यदि अन्य स्त्री या पुरुष के साथ अपने शारीरिक संबंध बनाता है तो उससे परिणाम घातक सिद्ध होते हैं। कबीर की दृष्टि में पतिव्रता प्रेम सर्वोत्तम है। उन्होंने पुरुष को परनारी के प्रभाव एवं आकर्षण से बचने के लिये सावधान किया है कि परनारी का सेवन करना और चोरी करके खाना मात्र दो चार-दिन के लिये ही सुखदाई हो सकता है परंतु उसका अंत बहुत ही दुखदाई होगा इसलिये कबीर कहते हैं-

पर नारी राता फिरै, चोरी बिढ़ता खाँहि ।

दिवस चारि सरसा रहै, अंति समूला जाँहि।<sup>39</sup>

कबीर ने बताया कि वे मनुष्य बिरले ही होते हैं जो परनारी से दूर रहते हैं और उसका सेवन करने से डरते हैं। लेकिन अधिकांश लोग परनारी के फेर में पड़ ही जाते हैं और पहले उन्हें नारी के साथ सुखानुभव होता है, वे उसके साथ भोग-विलास करते हैं किन्तु अंत में उसका फल जहरीला होता है जो मनुष्य को मृत्यु के मुँह तक पहुँचा देता है-

पर नारी पर सुन्दरी बिरला बंचे कोई ।

खाता मीठी खाँड सी, अंति कालि विष होइ ।<sup>40</sup>

कबीर एक स्थान पर कहते हैं कि नारी कोई डरावनी शेरनी (नाहरी) नहीं है लेकिन वह पुरुष को अपनी ओर अपने नेत्रों से घायल कर आकर्षित करती

है उसकी इस नेत्र-चोट से वे मनुष्य ही बच पाते हैं जिन पर ईश्वर की छत्र-छाया होती है नहीं तो अधिकतर लोग उसकी चोट से घायल ही हो जाते हैं-

*नारी नाहीं नाहरी, करै नैन की चोट ।*

*कोई एक हरिजन ऊबरै पारब्रह्म की ओट।।<sup>41</sup>*

कबीर लोगों को संबोधित करते हुये बताते हैं कि तुम लोग व्यर्थ ही नारी के फेर में पड़े रहते हो और अपनी कंचन-काया को क्यों बेकार में घुला रहे हो? अरे! इसके चक्कर में आकर तुम्हारा विवेक और बुद्धि भी चली जायेगी और तुम्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होगा । इस तरह तुम्हारा ही विनाश होगा अतः इस बात से सचेत रहो कि कहीं तुम्हारी बुद्धि और विवेक जाता न बने-

*नारी सेती नेह, बूधि विवेक सबही हरै।*

*काहि गमावै देह, कारिज कोई नाँ सरै ।।<sup>42</sup>*

कबीर स्त्री के विषय में आगे कहते हैं कि यह स्त्री ऐसी है जो मनुष्य के मार्ग में बाधा बनकर आती है। यह पुरुष को ऐसा सुखानुभव कराती है कि पुरुष उसके फेर के नशे में झूमने लगता है वह भक्ति भूल जाता है, ज्ञान की बातें भी भूल जाता है यहाँ तक कि वह मोक्ष प्राप्ति से भी वंचित हो जाता है-

*नारि नसाबैं तीनि सुखा, जा नर पासैं होइ।*

*भगति मुक्ति निज ग्यान में, पैसि न सकई कोइ।।<sup>43</sup>*

कबीर के विषय में यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने नारी की निंदा कर सभी नारियों को निंदित किया है बल्कि उन्होंने उन्हीं नारियों की निंदा की है जो मनुष्य के मार्ग में बाधा बनकर आती हैं। उन्होंने जहाँ एक ओर कुलटा,

कुलक्षणा, कामुक नारी का विरोध किया है वहीं दूसरी ओर उन्होंने पतिव्रता, अनन्या, सुलक्षणा नारियों की प्रशंसा भी बड़े ध्यान के साथ की है। कबीर तो स्वयं आत्मारूपी पत्नी हैं जो परमात्मारूपी पति से अनन्य प्रेम व्यक्त करते हैं। कबीर अपना अनन्य प्रेम पतिव्रता पत्नी के समान प्रकट करते हैं जैसे जब प्रेमिका अपने प्रेमी से कहती है कि मेरे समक्ष अनेक गुणवान, कांतियुक्त लोग हों परन्तु मैं तो आप से ही प्रेम करूंगी अर्थात् मैं उनकी तरफ यदि हँसू या बोलूँ तो मैं अपने मुँह पर कालिख लगाऊँ। मेरा तो प्रेम मात्र आप से ही है, बहुत सारे गुणशाली लोगों से नहीं। कबीर इसी बात को व्यक्त करते हुये कहते हैं-

*कबीर प्रीतड़ी तौ तुझ सौं, बहु गुणियाले कंत।*

*जे हंसि बोलौं और सौं, तौ नील रंगाऊँ दंत।।<sup>44</sup>*

कबीर की पतिव्रता नारी दो तरह की हैं- एक वे जो दूसरे की आशा छोड़कर एकासक्त भाव से अपने प्रेमी से प्रेम करती हैं और दूसरी वे जो अपने प्रिय, पति को भी अनन्य भाव से प्रेम करती हैं और प्रातःकाल नित्य उठकर प्रभु का सुमिरन भी करती हैं। कबीर ने दूसरी वाली को पहले की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ बताया है-

*क्यूँ नृप नारी नींदिये, क्यूँ पनिहारी कौ मांन।*

*वा माँग सँवारै पीव कीं, वा नित उठि सुमिरै राम।।<sup>45</sup>*

कबीर ने पतिव्रता नारी जो अपने पति के अलावा किसी अन्य को अपनी आँखों में लाना ही नहीं चाहती है और न वह अपने पति को ही किसी अन्य के साथ देख सकती- उसका प्रेम कितना अनन्य भाव का है, व्यक्त किया है-

नैना अंतरि आव तू, ज्युँ हौं नैन झँपेउँ।

ना हौं देखौं और कूँ, ना तुझ देखन देउँ।<sup>46</sup>

कबीर ने एक स्थान पर उस सौभाग्यवती नारी के स्वरूप का अंकन किया है जो अपने प्रियतम के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष को न तो अपने नेत्रों में लाती है और न उसे याद करती है। जिस तरह एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकतीं उसी तरह सौभाग्यशालिनी पत्नी के हृदय में दो प्रेमी निवास नहीं कर सकते। कबीर ने इसकी कितनी उत्तम व्यंजना की है-

कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।

नैनुँ रमइया रमि रहया, दूजा कहाँ समाइ।<sup>47</sup>

कबीर उस नारी को धन्य मानते हैं जो वैष्णवपूत(राम-भक्त) को जन्म देती है। वे राम-नाम का सुमिरन करके काल से निर्भीक हो जाते हैं। परन्तु संसार की शेष स्त्रियाँ पुत्र भले ही पैदा करें लेकिन उन्हें निपूती ही कहना चाहिये क्योंकि उनके द्वारा पैदा किये गये पूत इस संसार से खाली हाथ ही लौट गये उन्होंने हरि का ध्यान नहीं किया-

कबीर धनि ते सुंदरी, जिनि जाया बैसनों पूत।

राम सुमिरि निरभै हुवा, सब जग गया अऊत।<sup>48</sup>

### माया से सावधान

माया शब्द अद्वैत साहित्य में इन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है- भ्रमात्मिका प्रपंचरूप, चराचर जगत-सृष्टि, प्रपंच के साथ ब्रह्म के स्वरूप-विनिमय का हेतु, जगत के उद्भव की हेतुशक्ति, ब्रह्म की उपाधियों और विवर्त की हेतुशक्ति, आत्मा तथा

जगत् के परस्पर स्वरूप की अनिर्वचनीयता।

ऋग्वेद और यजुर्वेद में माया इन्द्र की शक्तियों के प्रतीक और उपनिषद् साहित्य में ब्रह्म की सहचरी शक्ति के रूप में वर्णित हुई है। अद्वैत सिद्धांत में यह त्रिगुणात्मिका नामरूपमय और संपूर्ण संसार की बीजशक्ति मानी जाती है। ब्रह्म इससे संयुक्त हो शबल और सुगण रूप में भासित होता है और इसी रूप में जगत् का कारण भी बनता है। माया त्रिगुणात्मिका भावरूप, अज्ञानमय तथा अनिर्वचनीय है। यह सत् असत् और सद्-असत् किसी भी रूप में वर्णित नहीं हो सकती, अतएव इसे अनिर्वचनीय और अव्यक्त शब्द से व्यक्त किया जाता है।

परवर्ती अद्वैत साहित्य में माया की दो शक्तियाँ- आवरण और विक्षेप बताई गई हैं। आवरण शक्ति ब्रह्म के निरुपाधिक और निर्गुण स्वरूप को आवृत्त कर लेती है और विक्षेप-शक्ति से संपूर्ण प्रपंचात्मिका नामरूपात्मक सृष्टि का उद्भव होता है। कभी-कभी आवरण-शक्ति को अविद्या और विक्षेप-शक्ति को माया कहा जाता है। जगत् कारण होने के कारण कभी-कभी माया को प्रकृति भी कहा जाता है।

हिन्दी साहित्य के निर्गुणवादियों में कबीर ने अद्वैत सिद्धांतों से प्रभावित होकर ही माया का प्रयोग किया है। माया उनके लिये ब्रह्म की फँसेरी है। यह मोहिनी और 'महा-ठगिनी' है जिसके वश में संपूर्ण संसार भ्रमित हो रहा है।

इसका स्वरूप शब्दातीत है। यह सभी को भ्रष्ट कर रही है जो 'राम' से विमुख करती है। यह तृष्णा रूप भी है, जो ज्ञान द्वारा या गुरु-कृपा से ही दूर हो सकती है।

साधारण रूप से माया को सांसारिक भ्रम और अज्ञान का ही नामान्तर

माना जाता है और इस चराचर सृष्टि के मिथ्यात्व और उसकी भ्रमात्मकताओं को भी माया शब्द से व्यक्त किया जाता है। संसार में जीवों के बंधन का कारण भी यही माया है। दुनिया और उसके समस्त प्रलोभन इसी माया के प्रतिरूप हैं। अपने आकर्षणों के कारण यह जीवों को मोहित कर लेती है। इसके बंधन से वही निकल सकता है जिसके पास विद्या (ज्ञान) है या फिर गुरु-कृपा।

माया ईश्वर द्वारा अनुशासित एवं चालित है जो इससे बचकर निकल जाता है वह ईश्वर तक पहुँच जाता है अन्यथा वह माया के फंदे में जकड़कर ही अपनी लीला समाप्त कर लेता है। इसी माया से बचने के लिये कबीर ने बार-बार लोगों को संबोधित कर उन्हें उससे दूर रहने के लिये कहा है। साधारण मनुष्य की तो क्या इसने अपने फंदे में मुनियों, पीरों, जैनों, जोगी, जंगम, ब्राह्मण, दिगंबर, सन्यासी तक को नहीं छोड़ा। लेकिन जो हरि का भक्त है उसके लिये तो यह दासी है अर्थात् उसके आगे नतमस्तक हो जाती है। कबीर जैसे महान् भक्त के लिये तो यह कुछ भी नहीं है जब भी यह उनके आगे आती है वे इसे पल-भर में तोड़-मरोड़कर रख देते हैं।

तू माया रघुनाथ की, खेलड़ चढ़ी अहेड़ें।  
 चतुर चिकारे चुणि मुणि मारे, कोई नां छोड़या नेड़ें॥  
 मुनियर पीर दिगंबर मारे, जतन करता जांगी।  
 जंगल महि के जंगम मारे, तूँरै फिरै बलिवंती।  
 वेद पढ़ंता ब्राह्मण मारा, सेवा करतौं स्वामी।  
 अरथ करंतौं मिसर पछाड़या, तूँरै फिरै मैमंती॥



साधित कैं तू हरता करता, हरिभगतन की चेरी।

दास कबीर राम के सरनै, ज्यूँ लागी त्यूँ तोरी।<sup>49</sup>

इस पापिनी माया के जंजाल से कोई बच नहीं सकता जब तक कि वह उससे सचेत न रहे। सचेत मनुष्य तभी रह सकेगा जब उसे इस बात का ज्ञान हो कि यह थोड़े समय के लिये तो अपना मोहक रूप दिखा रही है लेकिन जब मैं इसको अपनाऊंगा तो यह अपने अंदर मुझे उलझाती ही चली जायेगी और मैं ज्ञानवश उससे छूट न सकूंगा। यह अपना आकर्षक, मोहक रूप दिखाकर लोगों को भ्रमित करती रहती है। इससे सावधान रहना चाहिये कबीर कहते हैं कि भोले-भाले व्यक्ति को तो यह सर्पिणी (माया) मीठा स्वाद देकर खा जाती है-

मीठी-मीठी माया तजी न जाई।

अग्याँनी पुरिष कौँ भोलि-भोलि खाई।<sup>50</sup>

मनुष्य यह जानते हुये भी कि यह माया महाठगिनी है यह मनुष्य को अपनी ओर मोहित कर अपने वश में कर लेती है और मनुष्य इसके जंजाल में फंसकर अंततः दुख ही पाता है फिर भी वह इस के पीछे दिन-रात पड़ा रहता है। सांसारिक वस्तुओं के अलावा जितने भी धन-वैभव, मान, सम्मान एवं प्रतिष्ठा के साधन हैं ये सारे के सारे माया के ही रूप हैं जिनके लिये मनुष्य व्यग्र एवं बेचैन रहता है।

कबीर इससे सचेत रहने के लिये कहते हैं कि माया सत,रज, तम का एक वृक्ष (तटवर) है। दुःख और संताप इसकी शाखायें हैं। इसका फल भी फीका है और शीतलता भी इसमें स्वप्न में भी देखने को नहीं मिलती-

कबीर माया तरवर त्रिबिध का, साखा दुख संताप।

सीतलता सुपिनै नहीं, फल फीकौ तनि ताप।।<sup>51</sup>

लोग इस माया को त्यागना चाहते हैं परन्तु फिर भी त्याग नहीं पाते। मनुष्य आदर, सम्मान एवं प्रतिष्ठा के लिये जितने भी यत्न करता है ये सभी माया के ही प्रतिरूप हैं। इस संसार में मनुष्य के साथ जितने भी पारिवारिक एवं सामाजिक संबंध हैं ये भी माया के ही कारण हैं, माता-पिता, स्त्री, पुत्र के प्रति जो मानवीय संबंध हैं ये भी माया ही हैं जिनके धोखे में पड़कर मनुष्य ईश्वर से विमुख रहता है। कबीर तो जप, तप योग को भी माया बताते हैं यह माया इतनी विस्तृत एवं व्यापक है कि इसका निवास जल, थल और आकाश तक में है और जो चारों दिशाओं में व्याप्त है। जो मनुष्य माया को मारकर अर्थात् माया को पराजित कर देता है उसके लिये राम का आश्रय है ऐसा कबीर कहते हैं-

माया तजूँ तजी नहीं जाइ; फिर-फिर मायामोहि लपटाइ।

माया आदर माया मान, माया नहीं तहाँ ब्रह्म गियाँन।।

माया रस माया कर जोग, माया कारन तजै परान।।

माया जप तप माया जोग, माया बाँधे सबही लोग।।

माया जल थल माया आकासि, माया ब्यापि रही चहुँपासि।।

माया माता माया पिता, असि माया अस्तरी सुता।।

माया मारि करै व्यौहार, कहै कबीर मेरे राम अधार।।<sup>52</sup>

यह तथ्य सर्वथा सत्य है कि लोभी, लालची लोग सांसारिक धन, वैभव के पीछे जितना पड़ते हैं वे उसमें उतना ही फंसते चले जाते हैं और इतना अंदर तक अपने को उस मायावी कीचड़ में धँसा लेते हैं कि निकलते नहीं बनता। कहने का

तात्पर्य यह है कि यह पापिनी माया लोगों के मन में तृष्णा उत्पन्न कर देती है जिससे वे सांसारिक सुखों के प्रति आसक्त हो उठते हैं जबकि उनकी यह तृष्णा की अभिलाषा इतनी बढ़ती चली जाती है कि वे उसे पूर्ण करना चाहते हैं परन्तु पूर्ण नहीं होती। यह कैसा विचित्र संयोग है कि मनुष्य जिसके लिये लाखों, करोड़ों प्रयत्न करे परन्तु फिर भी उसकी यह बलवती इच्छा पूरी ही नहीं होती कबीर ने ऐसे लोगों को समझाते हुये उन्हें इस माया से चौकन्ना रहने का उपदेश दिया है जो कबीर को समसामयिक परिदृश्य से जोड़ता है-

कबीर माया पापिणी, लालै लाया लोग।

पूरी किनहूँ न भोगई, इनका इहै बियोग।<sup>१३</sup>

जैसाकि भागवत में भी कहा गया है-

नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान् कामानहिते, विद्भुजाये।

तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसोऽयं त्वनंतम्॥

“हे पुत्रो! इस मनुष्य यौनि में इंद्रियसुख के लिये अधिक श्रम करना व्यर्थ है। ऐसा सुख तो सूकरों को भी प्राप्य है। इसकी अपेक्षा तुम्हें इस जीवन में तप करना चाहिये, जिससे तुम्हारा जीवन पवित्र हो जाय और तुम असीम दिव्य सुख प्राप्त कर सको।”

मनुष्य माया के फेर में दिन-रात लगा रहता है मेरे पास में यह वस्तु, वह वस्तु हो लेकिन उसके मन की यह लालसा अंत तक बनी रहती है जो कभी पूरे होने का नाम नहीं लेती अर्थात् वह मायावी वस्तुओं- जो दैहिक सुख प्राप्त कराती हैं उनके पीछे जितना दौड़ता-भागता है उसे ये उतना ही परेशान करती हैं क्योंकि

मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह अपनी मन की इच्छाओं का दास होता है उसके भीतर पल-पल में अनेक वस्तुओं को संचित करने की अतीव अभिलाषायें उठतीं रहती हैं जिनसे वह सदैव घिरा रहता है और उन्हें पाने की कोशिश करता है लेकिन कुछ इच्छायें तो पूरी हो जाती हैं लेकिन अधिकांशतः अधूरी रह जाती हैं जिसके कारण वह सदैव बेचैन बना रहता है। लेकिन कबीर का कहना है कि जो व्यक्ति इस माया-मोहिनी के फंदे में पड़कर जिन ऐश्वर्यमयी, वैभवी, देह को सुख देने वाली वस्तुयें उससे उतना ही दूर चली जाती हैं और कभी हाथ नहीं लगतीं। परन्तु जो व्यक्ति इसे भ्रमात्मक, झूठा समझकर अपने से निष्कासित कर देता है तो फिर ये स्वमेव उसके पीछे-पीछे लगी फिरती हैं-

कबीर माया मोहिनी, माँगे मिलै न हाथि।

मनह उतारी झूठि कर, तब लागी डोलै साथि।<sup>54</sup>

लोग इस अंधकारमयी एवं काली छाया के समान छाई हुई माया में किस तरह भ्रमित हैं कि वे सच्चाई से अवगत नहीं होते बल्कि सोते रहते हैं और फिर बाद में रोते फिरते हैं लेकिन उन्हें मायावी मनोनुकूल सांसारिक एवं भौतिक वस्तुयें प्राप्त नहीं होती। जबकि वे इनके पीछे-पीछे दौड़ लगाते फिरते हैं फिर भी परिणाम यह होता है कि वे मिल नहीं पाती तब यह सुप्तावस्थामयी व्यक्ति उन वस्तुओं के लिये रोता है। कबीर भी इन्हीं लोगों को सचेत करते हुये बताते हैं कि यह माया तुम्हें मिलने वाली नहीं है तुम्हें यह धोखे में डाले हुये है। यदि तुम नहीं मानोगे तो बाद में तुम स्वयं ही पश्चाताप करोगे और फिर तुम्हारे अश्रुओं की लड़ी आँखों से ही बहेगी-

कबीर माया मोह की, भई अँधियारी लोइ।

जे सूते ते मुसि गये, रहे वस्तु कूँ रोइ।<sup>129</sup>

संसार की समस्त वस्तुयें नाशवान हैं और कुछ दिन ही रहने वाली हैं। लेकिन मनुष्य इस बात को समझता ही नहीं। इस विश्व में जितनी भी वस्तुयें हैं उन सबका संबंध मानव जीवन से है यह सर्वथा ठीक है लेकिन सभी को प्राप्त हो जाये असंभव है। संसार में दिन-प्रतिदिन के काम में आने वाली वस्तुओं से आवश्यकतायें तो पूरी हो सकती हैं परन्तु व्यक्ति के स्वप्न में आने वाली इच्छायें पूर्ण नहीं हो सकतीं। जैसाकि वह दिवास्वप्न देखता रहता है कि अमुक वस्तु उसके पास है मेरे पास नहीं, उसे पाने की वह कोशिश करता है और वह उसे पा भी लेता है लेकिन उसकी यह अतीव इच्छा यहीं समाप्त नहीं होती बल्कि निरंतर जीवन पर्यंत बनी रहती है किन्हीं न किन्हीं वस्तुओं को लेकर। मगर वह जितना इनके चक्कर में पड़ता है वह उतना ही पीड़ित, व्यग्र एवं बेचैन रहता है। मनुष्य कितना लोभी, लालची है कि वह अपनी प्रसन्नता को जितना बढ़ाना चाहता है वह उतना ही कष्ट पाता है क्योंकि उसकी इच्छाओं ने उसके भीतर अपना घर कर लिया है कि उसके हबस की खोपड़ी भरती ही नहीं। कबीर भी बताते हैं कि यह संसार एवं माया तुम्हें धोखे में डाले हुये हैं और ये झूठे हैं। इनके फेर में तुम जितना पड़ोगे तुम उतना ही कष्ट पाओगे-

कबीर इस संसार का, झूठा माया मोह।

जिहि घरि जिता बंधावणौ, तिहिं घर तिता अंदोह।<sup>130</sup>

लेकिन जिन लोगों ने पारिवारिक बंधनों एवं मर्यादाओं को तोड़ दिया ऐसे लोगों को यह माया मोहित नहीं कर पाती। क्योंकि वे इस माया, मोह के प्रति

तनिक भी आसक्त नहीं होते। लेकिन ऐसे लोग संख्या में बिरले या कम ही होते हैं। अधिकांश लोगों को इस माया ने अपने भ्रमात्मक जाल में फँसा न हो ऐसा नहीं है। कबीर कहते हैं कि इस पापिणी ने सकल संसार को चुन-चुन कर खा लिया है कोई बिरला संत-जन ही बच पाया है इसके जाल से जिसने कुल मार्यादाओं का उल्लंघन कर दिया है-

कबीर माया मोहिनी, सब जग घाल्या घाँणि।

कोई एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल की काँणि।<sup>127</sup>

कबीर आगे स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि यह माया केवल संतों की ही दासी है जो इसका उपभोग करके पुनः लात मारकर त्याग देते हैं। यह माया स्वयं ही इन सत जनों के पीछे-पीछे लगी रहती है परन्तु संत-जन इस मोहिनी माया में लिप्त नहीं रहते-

माया दासी संत की, ऊभी देह असीस।

बिलसी अरु लातौ छड़ी, सुमिरि-सुमिरि जगदीस।<sup>128</sup>

मनुष्य के भीतर आशा, तृष्णा, लालसा, मोह इत्यादि जो वृत्तियाँ हैं वे निरंतर सदैव बनी रहती हैं जिनका मनुष्य गुलाम है। मनुष्य इन वृत्तियों के कहने से मनानुसार दैहिक सुख भोगना चाहता है। उसके भीतर की ये वृत्तियाँ उसे तब प्रेरित एवं प्रोत्साहित करती रहती हैं जब तक कि उसकी मृत्यु न हो जाय अर्थात् दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि मनुष्य के शरीर की मृत्यु होने पर ही इन तृष्णा, आशा आदि वृत्तियों से छुटकारा मिलता है। आशा, तृष्णा की मृत्यु नहीं होती ये सदैव बनी रहती हैं। मन के भीतर की पाँच वृत्तियाँ हैं- काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर जो मन द्वारा

चालित होती है ये सभी माया के ही रूप हैं जो कदापि नहीं मरते ये अजर-अमर हैं, मरणशील हैं तो मनुष्य का शरीर । जिसमें ये समस्त वृत्तियाँ पाई जाती हैं-

*माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर।*

*आसा त्रिष्णाँ नाँ मुई, यौँ कहै दास कबीर।<sup>59</sup>*

जो मनुष्य धन, संपत्ति को संचित करने के फेर में रहते हैं लेकिन यह सारा का सारा यहीं पड़ा रह जाता है जब मनुष्य इस संसार से दूसरे लोक में जाता है। मनुष्य की मरते-मरते धन को अधिकाधिक संचित करने की अतीव जिजीविषा बनी रहती है। यह जिजीविषा अमर है परन्तु मनुष्य मरणशील है लेकिन फिर भी धन संचय के मायावी जाल से जकड़ा रहता है लेकिन जो लोग इसे क्षीण एवं तुच्छ समझकर इसे खा लेते हैं वे ही इससे मुक्त हो पाते हैं और ऐसे लोग बिरले ही होते हैं। कबीर कहते हैं-

*आसा जीवै जग मरै, लोग मरै मरि जाइ।*

*सोइ मुबे धन संचते, सो उबरे जो खाइ।<sup>60</sup>*

कबीर इसी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुये बताते हैं कि मुझे इस संसार में ऐसा कोई नहीं मिलता जो संचित धन को मरते समय अपने साथ ले गया हो बल्कि वह उसे यहीं छोड़ गया। इसलिये कबीर कहते हैं कि मनुष्य को उतना ही धन एकत्र करना चाहिये जिससे आवश्यकतायें पूरी हो जायें चाहे वह व्यक्तिगत आवश्यकतायें हों या पारिवारिक और उतना ही धन इकट्ठा करना चाहिये जो आने वाले समय में काम में आ सके अर्थात् धन को आगामी जीवन के लिये संचित किया जाय और धन को पुण्यमयी कामों में व्यय करें उसका फल आपको परलोक में

मिलेगा। कबीर ऐसे धन को संचित करने की बात करते हैं न कि सांसारिक धन की जो मनुष्य को जीवन-भर चंचल बनाये रहता है। अतः धन का उचित उपयोग हो और उसका सही संचयन हो कबीर उसी ओर लोगों को उन्मुख करते हुए कहते हैं-

कबीर सो धन संचिए, जो आगै कूँ होइ।

सीस चढ़ाये पोटली, ले जात न देख्या कोइ।<sup>61</sup>

कबीर केवल उन सांसारिक लोगों की ही बात नहीं करते बल्कि वे उन लोगों को भी माया से सावधान रहने के लिये कहते हैं जो पारब्रह्म के भक्त हैं परन्तु फिर भी उनसे यह मीठी-मीठी माया महाठगिनी त्यागी नहीं जाती क्योंकि वे अधिकाधिक भौतिक समृद्धि कर अपने को सम्माननीय लोगों के बीच प्रतिष्ठित करने के फेर में पड़ जाते हैं और भवसागर में डूब जाते हैं-

कबीर जग की को कहै, भौजलि बूड़ै दास।

पारब्रह्म पति छोड़ करि, करै मान की आस।<sup>62</sup>

कबीर लोगों को सचेत करते हुये कहते हैं कि तुम यदि माया का त्याग कर भी देते हो लेकिन मान, सम्मान, प्रतिष्ठा को नहीं त्यागा, तो तुमने माया को कैसा तजा भला? फिर तो तुम और भी अधिक अंधेरे में फँस गये जहाँ से निकल पाना भी दुष्कर है। वास्तविकता यही है कि मनुष्य मान, सम्मान की शृंखला से इस तरह जकड़ जाता है कि वह उससे मुक्त हो ही नहीं पाता। साधारण जन की तो बात जाने दीजिये इस मान, सम्मान, प्रतिष्ठा के फेर ने मुनियों तक को भी नहीं छोड़ा जो मान, प्रतिष्ठा के चक्कर में फँसकर रह जाते हैं। मान, सम्मान के जंजाल ने भला किसे छोड़ा है? इसने तो सभी को खाकर समूलतः नष्ट कर दिया है। कबीर उसी



ओर संकेत करते हैं-

माया तजी तौ का भया, मानि तजी नहिं जाइ।

मानि बड़े मुनियर मिले, मानि सबनि कौं खाइ।<sup>63</sup>

मनुष्य इतना लोभी, लालची और धन, संपत्ति को इकट्ठा करने के प्रति लालसा रखने वाला है। इसकी यह लालसा कदापि समाप्त नहीं होती बल्कि दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। इसकी इच्छाओं का कहीं अंत ही नहीं है। जबतक कि यह मौत के घाट तक न पहुँच जाय। मनुष्य इतना लोभी है कि जिस वस्तु को प्राप्त न कर सके उसको भी पाने की बड़ी कोशिशें करता रहता है और निरंतर करता ही रहता है, उसकी ये बलवती इच्छायें यवासा के पेड़ की भाँति हैं जो निरंतर बिना पानी सींचे ही पुष्पित, पल्लवित होती रहती हैं लेकिन जैसे ही वर्षा होती है यह वृक्ष सूख जाता है। उसी तरह इच्छायें भी नष्ट हो जाती हैं-

त्रिष्णाँ सींची नाँ बुझै, दिन-दिन बढ़ती जाइ।

जवास के रूष ज्युँ, घण मेहाँ कुमिलाइ।<sup>64</sup>

**संदर्भ:-**

1. सं० नामवर सिंह, चिंतामणि भाग-3, राजकमल प्रकाशन, प्रा०लि० 8, नेताजी सुभाषमार्ग, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1983, पृ० 94
2. सं० डॉ० श्यामसुन्दर दास, क०ग्रं०, पृ० 79
3. सं० विजयेन्द्र स्नातक, कबीर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1970, पृ० 244
4. सं० डॉ० श्यामसुन्दर दास, क०ग्रं०, पृ० 82
5. सं० विजयेन्द्र स्नातक, कबीर, पृ० 247
6. डॉ० गोविन्दलाल छावड़ा, क्रांतिकारी कबीर, रणजीत प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1971, पृ० 122

7. सं० डॉ० श्यामसुन्दरदास, क०ग्रं०, पृ० 81
8. सं० डॉ० कामता कमलेश, डॉ० रामकिशोर शर्मा, हिन्दी अनुशीलन, भारतीय हिन्दी परिषद, इलाहाबाद, वर्ष 41, संयुक्तांक, 1999 अंक 1,2,3,4 पृ० 121
9. सं० डॉ० श्यामसुन्दरदास, क०ग्रं०, पृ० 43
10. वही पृ० 36
11. सं० एम० फीरोज, वाङ्मय(त्रैमासिक पत्रिका) वर्ष 2, अंक 5, अप्रैल-जून 2005, अमीरनिशां, अलीगढ़, पृ० 81
12. सं० डॉ० श्यामसुन्दरदास, क०ग्रं०, पृ० 82
13. वही पृ० 30
14. वही पृ० 54
15. वही पृ० 52
16. वही पृ० 51
17. वही पृ० 38
18. वही पृ० 52
19. वही पृ० 2
20. वही पृ० 2
21. वही पृ० 29
22. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, ना०प्र० सभा, काशी(2035 वि) पृ० 55
23. सं० डॉ० श्यामसुन्दरदास, क०ग्रं०, पृ० 30
24. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1987, पृ० 185
25. सं० डॉ० श्यामसुन्दरदास, क०ग्रं०, पृ० 19
26. वही पृ० 9
27. वही पृ० 53
28. वही पृ० 1
29. वही पृ० 3
30. वही पृ० 1
31. वही पृ० 2
32. वही पृ० 2
33. वही पृ० 2
34. वही पृ० 2

- 
35. वही पृ० 1
  36. वही पृ० 31
  37. वही पृ० 32
  38. वही पृ० 31
  39. वही पृ० 30
  40. वही पृ० 30
  41. वही पृ० 30
  42. वही पृ० 30
  43. वही पृ० 30
  44. वही पृ० 14
  45. वही पृ० 41
  46. वही पृ० 14
  47. वही पृ० 14
  48. वही पृ० 41
  49. सं० डॉ० श्यामसुन्दरदास, क०ग्रं०, पृ० 113
  50. वही पृ० 124
  51. वही पृ० 26
  52. वही पृ० 89
  53. वही पृ० 25
  54. वही पृ० 26
  55. वही पृ० 27
  56. वही पृ० 27
  57. वही पृ० 25
  58. वही पृ० 26
  59. वही पृ० 26
  60. वही पृ० 26
  61. वही पृ० 26
  62. वही पृ० 26
  63. वही पृ० 26
  64. वही पृ० 26

## चतुर्थ अध्यायः

वर्तमान संदर्भ में कबीर के काव्य की  
प्रासंगिकता

## वर्तमान संदर्भ में कबीर के काव्य की प्रासंगिकता

आज हिन्दी साहित्य-जगत में नये-नये साहित्यिक आंदोलन जन्म ले रहे हैं, और लेते आये हैं। इनके बीच सहसा कबीर को क्यों याद किया जाता है? और कबीर में ऐसा क्या है जो उन्हें आज के संदर्भ में महत्वपूर्ण बना देता है? तथा उन्हें बार-बार याद किया जाता है कि हम सब को कबीर से शिक्षा लेनी चाहिये एवं उनको पहचानना चाहिये। ये सारे के सारे प्रश्न हमारे सामने आ खड़े होते हैं तब इन सबका उत्तर हमें कबीर के काव्य में देखना होगा कि वे इन सब में कहाँ तक उपादेय सिद्ध होते हैं?

कबीर जिस काल में अवतरित हुये उसमें सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक समस्याओं की बहुतायत थी। ऐसे भयंकर समय में कहीं भी शील एवं मर्यादा को नहीं देखा जा सकता था। कबीर को इसीलिये औपचारिक बंधनों एवं मर्यादाओं का अतिक्रमण करना पड़ा। और उन्होंने जीवन की गहराइयों में गहरे पैठकर उन तत्वों को अन्वेषित किया जिसके लिये न तो बाह्याडम्बरो की जरूरत थी और न किसी भी प्रकार के सांप्रदायिक पूर्वाग्रह की। बल्कि उन्होंने निष्पक्ष भाव से जीवन के सत्यानुभवों को बड़े ही गंभीरता एवं चिंतन-मनन के साथ अभिव्यक्ति दी। आज मनुष्य-मनुष्य के बीच की सौहार्द भावना किस तरह समाप्त हो चली है और जिसके लिये मनुष्य विवश एवं बेचैन है। आदमी-आदमी को आदमी रूप में न देखकर उसे जाति, वर्ग, कुल, संप्रदाय जैसे संकुचित एवं सीमित दायरे में देखने लगा है। धर्म एवं राजनीति को इस सीमा तक प्रदूषित कर दिया गया है कि उसमें जितनी आध्यात्मिकता

एवं उदात्तता की शक्ति थी वह पूर्णतः खण्डित होती हुई प्रतीत होती है। तब हमें अपने अतीत के चिंतकों, साहित्यकारों की विचारणाओं की स्मृति होने लगती है जो हमारे मार्गदर्शक एवं मार्ग प्रशस्त रहे हैं। कबीर को इस संदर्भ में पुनः स्मरण करने की नितांतावश्यकता है।

प्रसंग-गर्भत्व साहित्य को सांस्कृतिक गरिमा प्रदान करता है, परन्तु किसी साहित्य की प्रासंगिकता उसे वर्तमान के संदर्भ में प्रतिफलित होने का सामर्थ्य देती है। कोई रचनाकार अपने समय में और समय के अन्तराल में कहाँ तक और कितनी दूर तक उपयोगी सिद्ध होता है यह उसकी विशिष्टता का मानदण्ड है। जिस कवि ने अपने वर्तमान को सही रूप में भोगा होगा वही भविष्य की चिरंतर समस्याओं का समाधान भी सहज ढंग से ढूँढ़ पायेगा। किसी साहित्य की प्रासंगिकता का अर्थ उसका वर्तमान के संदर्भ में उपादेय सिद्ध होना भी है। इसीलिये कबीर के साहित्य की प्रासंगिकता से तात्पर्य उसका आज के समाज के लिये समीचीनता एवं उपादेयता से है।

किसी साहित्यकार की प्रासंगिकता पर मुख्यतः दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है-

1. सामाजिक, 2. नैतिक। सामाजिक एवं नैतिक दृष्टि से संपन्न समीक्षक के लिये किसी साहित्यकार की प्रासंगिकता का प्रश्न पूर्ववर्ती, वर्तमान या भविष्य के संदर्भ में विशेष महत्वपूर्ण होता है।

जिस तरह यह निर्विवाद है कि कविता में कवि का संपूर्ण व्यक्तित्व प्रतिफलित एवं प्रतिबिंबित होता है ठीक उसी तरह यह भी है कि किसी भी

काल-विशेष के साहित्य या काव्य में उसकी अपनी विशिष्टतायें होती हैं। समयुगीन चेतनाओं से प्रतिबिंबित साहित्य अपने समय का सवाक् (बोलता हुआ) इतिहास होता है। किन्तु उसके साथ-साथ एक विशिष्ट प्रतिभाशाली कवि युगचित्रकार के साथ ही युगांतकारी भी हुआ करता है। वह अपने समय में भी रहता है और अपने समय के आगे भी।

कबीर ने जवीन और जगत की वास्तविकताओं को पहचाना और जाना भी था। उनका युग-बोध और आत्म-बोध दोनों अत्यंत सूक्ष्म, तत्त्वपूर्ण एवं विस्तृत था। उन्होंने जो भी उपदेश दिये हैं वे दूसरों के लिये नहीं अपितु उनके अपने जीवन से छनकर निकली हुई अनुभूति हैं। उनके नैतिक मूल्य बाहर से ओढ़े हुये लबादे नहीं बल्कि उनके जीवन के निष्कर्ष हैं। उनके साहित्य में जो नैतिक तत्व हैं वे संपूर्ण जन-जीवन की सोद्देश्यता की ओर प्रेरित करने वाले हैं उन्होंने जो चेतावनियाँ दी हैं वे सदैव समाज के लिये कल्याणकारी हैं। कल भी थीं, आज भी हैं और आने वाले समय में भी रहेंगी ऐसी आशा की जाती है।

आज हमारे समक्ष जो एक काल खण्ड है और इसकी प्रासंगिकता का अर्थ कल के काल-खण्ड से जुड़ा रहना है, क्योंकि समय निरंतर प्रवाहमान है और कुछ सामाजिक- धार्मिक समस्यायें भी ऐसी हैं जो काल-खण्डों में बैठकर परंपरागत रूप धारण किये हुये हैं कबीर के आविर्भाव के पाँच सौ वर्षों से अधिक के अंतराल के बाद भी ऐसा लगता है कि उनकी उपादेयता आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। जाति-भेद, वर्ण-भेद, धार्मिक कट्टरता, अधंकार, मोहलिप्सा, अन्तः से अधिक बाह्य चमक-दमक आदि अनेक ऐसी ही विसंगतियाँ एवं उलझनें समाज में ज्यों की त्यों

पूर्ववत् व्याप्त है। इन्हीं सभी विसंगतियों एवं समस्याओं को केन्द्र में रखते हुये हम कबीर को वर्तमान संदर्भ में देखने का प्रयास करेंगे- इसके अतिरिक्त कबीर के विचारों एवं परिकल्पनाओं को पूर्णतः आद्यन्त बनाने के लिये हम महात्मा गाँधी एवं तमिल के कवि तिरुवल्लुवर के विचारों से मिलाकर देखने का भी प्रयास करेंगे, जिससे कबीर की वर्तमान संदर्भ में उपादेयता और भी बढ़ सकेगी।

कबीर के काव्य में सामाजिक, धार्मिक एवं सांप्रदायिक विसंगतियों एवं समस्याओं को हूबहू देखा जा सकता है। उन्होंने इन समस्त समस्याओं और विसंगतियों के निर्मूलन हेतु जो वाणी प्रस्फुटित की वह आज के संदर्भ में उतनी ही जीवन्त एवं उपयोगी सिद्ध होती है जितनी वह अपने समय में थी। अतः इन्हीं विसंगतियों एवं समस्याओं को आधार बनाकर कबीर की प्रासंगिकता को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास करेंगे।

### वर्ण-व्यवस्था

जिस युग में कबीर का आगमन हुआ उसमें सामाजिक जन-जीवन अस्त-व्यस्त था। चारों ओर सामाजिक एवं नैतिक जीवन कुत्सित और खोखला था। देश की जनता इनसे त्राहि-त्राहि पुकार रही थी। कबीर ने इन सभी विकृतियों एवं विसंगतियों से क्षुब्ध होकर कहा-

*हरि कौ नाउँ तत त्रिलोक सार, लौलीन भये जे उतरे पार॥*

*इक जंगम इक जटाधार, इक अंगि बिभूति करै अपार॥*

*इक मुनियर इक मनहूँलीन, ऐसे होत-होत जग जात खीन॥*



इक औराधैं सकति सीव, इक पड़दा दे दे बधैं जीव॥  
 इक कुलदैत्याँ कौ जपहि जाप, त्रिभुवनपति भूले त्रिविध ताप॥  
 अनंहि छाँडि इक पीवहि दूध, हरि न मिलै बिन हिरदै सूध॥  
 कहै कबीर ऐसैं बिचारि, राम बिना को उतरै पार॥'

### मूर्ति-पूजा का विरोध

कबीर के समाज में मूर्तिपूजा प्रचलित थी जो आज तक चली आ रही है। धर्म के ठेकेदारों ने ईश्वर को मंदिर-मस्जिदों तक ही सीमित कर दिया था। वे यह भूल गये कि मूर्ति तो साधन-मात्र है। उन्होंने साधन को ही साध्य (आराध्य) बना डाला था और यह स्थिति इतनी गंभीर हो गई कि जितने मानव उतने ही उनके देव हो गये। ऐसे में कबीर ने जनता को भ्रमजाल से निकालकर सचेत करते हुये पत्थर की मूर्तियों को पूजने को निरर्थक सिद्ध कर दिया। उन्होंने बताया कि भला यह पत्थर हमारे किस काम का है इससे तो अपना ही भला नहीं होता तो फिर यह हमारा क्या भला करेगा? वे कहते हैं कि तुम इन पत्थरों को क्यों पूजते हो जो कभी भी तुम्हारा जवाब नहीं दे सकते और तुम इन्हें पूजते फिरते हो। तुम क्यों अंधे होकर इनसे आशा बंधाये हुये हो तुम्हें इनसे कुछ भी लाभ मिलने वाला नहीं है बल्कि तुम यँ ही संशय में पड़े हो-

पाहन कूँ का पूजिये, जे जनम न देइ जवाब।

अन्धा नर आसामुखी, यों ही खौबे आब॥<sup>2</sup>

कबीर ने जब देखा कि लोग पत्थर को पत्थर न मानकर उसे देव मान

बैठे हैं और अपनी-अपनी इच्छानुसार अनेक देवों की कल्पना करके एकेश्वरवाद को नष्ट कर रहे हैं; जिसके कारण सामाजिक एकता नष्ट एवं खण्डित तो हो ही रही थी साथ ही साथ मानसिक शान्त्वना के स्थान पर अशांति दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी। यह देखकर कबीर ने कहा-

*सेवै सालिगराम कूँ, मन की भ्रांति न जाइ।*

*सीतलता सुपने नहीं, दिन-दिन अधकी लाइ।।<sup>3</sup>*

पत्थर का ही देवालय है और पत्थर ही की बनाई हुई मूर्ति है जिसे पूजने वाले ने स्वयं अपने हाथों से बनाया है। पूजने वाला कितना अंधा है कि वह उसे पूजता है जिसे उसने बनाया है और उसे भूल जाता है जिसने समस्त जगत एवं सृष्टि की रचना की। जो पत्थर की मूर्ति को पूजता है उसकी यह बुरी आदत हो गई है, वह इस मूक मूर्ति से न तो किसी की सिद्धि ही पा सकता है और न उसे उससे किसी तरह की आशा ही रखनी चाहिये। इसी बात को कबीर ने किस तरह दर्शाया है-

*पत्थर ही का देहरा, पाथर ही का देव।*

*पूजणहारा अन्धरा, लागा खोटी सेव।।<sup>4</sup>*

मूर्ति-पूजा जहाँ एक ओर भ्रम पर आधारित थी वहीं दूसरी ओर इससे समाज में पारस्परिक भेद-भाव भी बढ़ता जा रहा था। कबीर ने मूर्ति-पूजा एवं उसके परिणाम को व्यंग्यात्मक रूप में बताया है कि कहाँ तो पुजारी आशा लगाये रहते हैं कि उन्हें उससे स्वर्ग की प्राप्ति होगी और प्रत्येक प्रकार की भव-बाधाओं, समस्याओं से मुक्ति मिलेगी किन्तु वे तो वस्तुतः पाप की काली धारा में किस तरह डूब मरते

हैं-

पाहण केरा पूतला, करि पूजै करतार।

इही भरोसे जे रहे, ते बूड़े काली धार।।<sup>5</sup>

कबीर ने एक स्थान पर मूर्ति-पूजा का मजाक एवं खिल्ली उड़ाते हुये बताया कि लोग किस तरह प्रस्तर को शालिग्राम बनाकर पूजा करते हैं और फिर उस ठाकुर को पलंग पर लिटा देते हैं और ठाकुर के लिए तैयार किया गया सारा तर माल भोजन के रूप में उसे न खिलाकर स्वयं ही खा जाते हैं-

सालिगराम सिला करि पूजा, तुलसी तोड़ि भयानर दूजा ।

ठाकुर ले पाटें पौढ़ावा, भोग लगाइ अरु आपै खावा ।।<sup>6</sup>

मूर्ति-पूजन के समय उस पर भोग पर जो भोग रूप में चढ़ावा चढ़ता है, उस प्रसाद की गति कैसी होती है कि पूजने वाला चढ़ावे, प्रसाद को मूर्ति के मुँह पर छुलाकर अर्थात् उसे थोड़ी देर तक सुंघाकर फिर उसे स्वयं ही ले लेता है न कि उसी को दे देता। इसकी कबीर ने किस प्रकार खबर ली है कि हृदय पर करारी चोट उन लोगों के होती है जो ऐसी धारणा रखते हैं। इसे कबीर मूर्ति पूजन न मानकर मूर्ति के साथ पुजारी का मजाक मानते हैं-

लाडू, लावन, लापसी, पूजा चढ़े, अपार।

पूजि पुजारी ले गया, मूरत के मूहिं छार।।<sup>7</sup>

कबीर ने जहाँ एक ओर मूर्ति-पूजा का जोरदार शब्दों में खण्डन किया है वहीं पर उन्होंने समुचित समाधान के लिए लोगों को बताया कि जिन लोगों का मानसिक स्तर इतना नीचा है कि वे उपासना के लिए आकार को ही अनिवार्य समझते

हैं तो उनको संत, साधुओं, की सेवा श्रुषा करनी चाहिए जो उनकी अनेक समस्याओं को सुलझाने में सहायक भी सिद्ध हों, और फिर वे बोल भी सकते हैं ये पत्थर की मूर्तियाँ न तो बोलती हैं और न इनसे किसी शंका का समाधान हो सकता है-

जैती देषौ आत्मा, तेता सालिगराम।

साधु प्रतिष देव हैं, नहीं पाथर सूँ काम।<sup>8</sup>

### वेशभूषा छापा-तिलक का विरोध

संत कबीर ने लोगों के बाह्याचारों पर जो कुठाराघात किये वे तिलमिला देने वाले, तर्कसंगत एवं युक्ति युक्त हैं। उन्होंने जिन भी चीजों का विरोध किया वह कोरी भावुकता या कल्पनाशीलता पर आधारित होकर नहीं अपितु उन्होंने बुद्धितत्व के ठोस धरातल पर पूर्णतः कसकर किया है, और यही बजह है कि कबीर के बखान के सम्मुख लोगों का निरुत्तर रह जाना एवं दांतों तले उंगलियाँ दबा लेना भर ही रह जाता है। उनके यही उपदेश एवं व्याख्यान पहले की तरह आज भी ज्यों के त्यों लोगों पर लागू होते हैं। आज भी कबीर के उन उपदेशों एवं विचारों की जरूरत है। आज भी लोग जगह-जगह पर ऐसे मिल जाते हैं जो छापा, तिलक, माला, जटा, त्रिशूल, जनेऊ मृगछाला, आदि धारण करते मिल जायेंगे लेकिन उनका अन्तःकरण अपवित्र एवं दूषित होता है। ऐसे लोग जनता को भ्रम में डालकर छलते हैं। कबीर ने ऐसे लोगों की बड़ी ही निर्भीकतापूर्वक कलाई खोली है, और वे उन पर बड़ा ही करारा व्यंग्य करते हुये कहते हैं कि लोग हाथ में माला लिये भगवान को रिझाने जा रहे हैं भला भगवान कोई शिशु तो है नहीं जो उनके जैसे पाखण्डियों के

डहकाबे में आ जायें-

*माथे तिलक हथि माला बाना, लोगन रामु खिलउना जाना।<sup>9</sup>*

कबीर ने माला जैसे बाह्याचार को और भी अधिक स्पष्ट करने के लिये बताया कि लोग माला को हाथ में लेकर स्वयं को कितना बड़ा भक्त समझते हैं और लोगों को अपने चंगुल में किस तरह फंसाते हैं? भला माला मात्र के पहनने से या हाथ में घुमाने से भगवान की प्राप्ति संभव है? यदि ऐसा होता तो सबसे पहले कुएं के अंदर से पानी खींचने वाले रहट को भगवत्प्राप्ति होती-

*कबीर माला मन की, और संसारी भोषा।*

*माला पहन्या हरि मिलें, तो अरहट के गलि देव।<sup>10</sup>*

कबीर कहते हैं कि मात्र बाह्याचारी वैष्णव बनने से क्या लाभ? केवल छापा-तिलक लगाकर लोगों को ठगना अच्छा नहीं है। यदि तुम अपने को वैष्णव कहलवाना अच्छा और पसंद करते हो तो सुनो! पहले तुम्हें अपना विवेक जगाना होगा यदि तुम ऐसा नहीं करते तो तुम फिर लोगों को भुलावे में ही डालने वाले होंगे-

*बैसनों भया तो का भया, बूझा नहीं विवेक।*

*छापा तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक।<sup>11</sup>*

कबीर की दृष्टि इतनी पैनी एवं पारखी थी कि वे लोगों के बाह्य व्यक्तित्व के साथ-साथ उसके अन्तः व्यक्तित्व को समझने में देरी नहीं लगाते। उन्होंने अपनी कुशाग्र बुद्धि एवं पारखी दृष्टि से उन लोगों के बाह्याचारों को भलीभाँति देख लिया जो बाहर से तो उज्ज्वल वेश धारण करते थे लेकिन उनका अन्तःकरण पतित एवं कुकुर्मी था। ऐसे लोग बगुले की भाँति दूसरों को धोखा देकर कुछ भी

अनिष्ट कर सकते थे। ऐसे लोगों के कुकृत्यों को कबीर ने लोगों के सम्मुख साक्षात् रूप में प्रस्तुत किया-

उज्ज्वल देखि न धीजिए, बग ज्यूँ मांडे ध्यान।

धीरे बैठि चपेटसी, यूँ ले बूड़ै ग्यान॥<sup>12</sup>

कबीर का मुख्य लक्ष्य एक स्वस्थ एवं विकासशील समाज का निर्माण करना था। वे लोगों को अंधविश्वासों, रूढ़ियों के कीचड़ से निकालना चाहते थे। इसीलिये उन्होंने बाह्याचारी, कपटाचारी साधुओं के कुकर्मों का भंडाफोड़ किया, जो मन को नियंत्रित करने की जगह उसे स्वतंत्र छोड़ देते हैं। ऐसे पाखंडी साधू अपनी आशाओं और तृष्णओं को बढ़ावा देते हैं, विलास-भावना को उत्तेजित करते हैं, दिखावे के लिये बाहर से राम-राम की रट लगाते फिरते हैं और उसके पवित्र एवं स्वस्थ स्वभाव को समझना नहीं चाहते। ऐसे लोगों को कबीर फटकारते हुये उन पर अपने तीव्र व्यंग्य वाणों की घनघारे वर्षा करते हैं-

कबीर कलि खोटी भई, मुनियर मिले न कोई।

लालचि लोभी, मसखरा, तिनकूँ आदर होई॥<sup>13</sup>

कबीर कहते हैं कि इस संसार में कपटाचारियों, पाखंडियों की कमी नहीं है। स्थान-स्थान पर ऐसे लोग देखने को मिल ही जाते हैं जो स्वयं को बहुत बड़ा स्वामी, भक्त एवं पांडित्यपूर्ण मानते हैं और भोली-भाँली जनता को ठगते फिरते हैं। लेकिन ऐसे लोग मात्र उन्हीं को भुलावे में डाल सकते हैं जो अज्ञानी हैं। सच्चे साधु को वे नहीं ठग सकते क्योंकि जो सच्चा साधु एवं सेवक होता है वह ऐसे लोगों के कहने में नहीं आता। ऐसे लोग स्वयं को चारों वेदों का ज्ञाता मानते हुये

सज्जन पुरुषों को नहीं समझा सकते बल्कि वे उन्हीं चार वेदों में उलझकर स्वयं को ही नष्ट कर लेते हैं-

बाँहमण गुरु जगत का, साधू का गुरु नाहिं।

उरझि पुरझि करि मरि रहया, चारिउँ बेदा मांहि।<sup>14</sup>

### कथनी की अपेक्षा करनी पर बल

मनुष्य जिस बात को अपने मुँह से अपने या दूसरों के लिये कहता है यदि वह व्यवहार में उनको पूरा कर लेता है तो यह कथनी और करनी की एकता होगी। अपने द्वारा कहे गये कथन को क्रिया रूप में परिणत करना ही किसी व्यक्ति को श्रेष्ठ एवं सच्चा सिद्ध कर सकता है। व्यक्ति जानता तो बहुत है परन्तु वह उन बातों को अपने जीवन में निर्वहन नहीं कर पाता बल्कि यह उसके लिये दुष्कर कार्य हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी यही बात अपने महाकाव्य 'रामचरितमानस' में इस तरह कही है- 'पर उपदेस कुसल बहुतेरे, जे आचरहिं ते नर न घनेरे।' कथनी-करनी की ऐक्यता श्रेष्ठता एवं सफलता की ही परिचायक नहीं बल्कि वह उदात्ता का प्रतीक एवं कसौटी भी है। व्यक्ति की कथनी और करनी में जितना अधिक सामंजस्य होगा वह व्यक्ति उतना ही श्रेयष्कर होगा। श्रेष्ठता की यही पहचान है कि जो कुछ कहा जाय उसे पूरा किया जाय। इसे ही कथनी-करनी की एकता कहते हैं।

कबीर की वाणियों में कथनी और करनी की एकता थी। उन्होंने व्यावहारिक आचरण की दृष्टि से दूसरों को उपदेश देने से पहले स्वयं को उन उपदेशों

पर कसा, और वे इस दृष्टि से पूर्ण खरे उतरे। उन्होंने एक स्थान पर कहा है कि मैं जो कुछ कहता हूँ वह सर्वप्रथम अपने लिये ही, मैं जब-जब दूसरों को बुरा देखने के लिये निकलता हूँ तब-तब मैं स्वयं को ही बुरा पाता हूँ-

बुरा जो देखन मैं चल्या, बुरा न दीषा कोइ।

जे दिल खोजा आपनां, मुसझा बुरा न कोइ।<sup>15</sup>

कबीर ने अपने संपूर्ण जीवन का साक्षात् एवं प्रत्यक्ष प्रमाण देकर समाज के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत किया। इसीलिये इनकी कथनी और करनी में कहीं भी लेसमात्र अंतर नहीं मिलता। कबीर ने जो कहा वे उस पर पूर्णतः खरे उतरे। कबीर का इस आदर्श पर खरा उतरना इस बात का प्रमाण है कि उन्हें हिन्दुओं एवं मुसलमानों दोनों ने ही अपनाया और उनसे पर्याप्त प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्राप्त किया। लेकिन इन्होंने उन लोगों को कड़वी-कषैली खूब सुनाई जो कहते तो बहुत कुछ थे लेकिन उनकी करतूत कुछ और ही थी। ऐसे लोगों की उन्होंने खूब अच्छी खबर ली है। कबीर ने ऐसे लोगों के बारे में तो यहाँ तक कहा कि जो लोग अपनी कथनी करनी में एकता लाते हैं वे भगवान के निकट जा पहुँचते हैं और जो ऐसा नहीं करते उनकी दशा कुत्तों के समान होती है जो यमपुर के बंधनों में जा बंधते हैं-

जैसी मुख ते नीकसै, तैसी चाले चाल।

पारब्रह्म नेड़ा रहै, पल में करै निहाल॥

जैसी मुख तै नीकसै, तैसी चाले नांहि।

मानुष नहीं ते स्वानगति, बांधे जमपुर जांहि॥<sup>16</sup>

किसी भी बात को कहना तो बहुत आसान है और वह उस समय खांड



के समान मीठी लगती है और उसे आसानी से खा भी जाते हैं परन्तु उस बात को करना कठिन होता है वह विष के समान लगती है लेकिन यदि कोई व्यक्ति कथनी को छोड़कर करनी पर ही बल देता है तो उसके लिये कड़वी बात भी अमृत तुल्य हो जाती है। यही बात कबीर ने समाज के समक्ष रखी-

*कथनी मीठी खांड सी, करनी विष की लोइ।*

*कथनी तज करनी करै, तौ विष अमृत होइ॥<sup>17</sup>*

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपने उपदेशों में दूसरों के द्वारा अनुभव किये गये उदाहरणों को ग्रहण करते हैं, लेकिन कबीर ऐसे उपदेशों को तनिक भी महत्ता नहीं देते, बल्कि वे उसी बात को महत्त्व देते हैं जो अपने अनुभवों द्वारा अर्जित की गई हो। ऐसी बात प्रभावशालिनी एवं प्रेरणादायक भी होती है जिसकी प्रखरता एवं प्रबलता को देखकर लोग उसे अपने लिये आदर्श मान लते हैं। कबीर सिद्धान्तों की अपेक्षा व्यावहारिक जीवनानुभवों को प्रश्रय देते हैं। वे कहते हैं कि उस बात का मूल्य ही क्या है जो जीवन में व्यावहारिक न हो। अर्थात् वे कथनी की अपेक्षा करणी (करनी) पर बल देते हैं-

*कथणीं कथी तौ क्या भया, जे करणीं ना ठहराइ।*

*कालबूत के कोट ज्यूँ, देषतहीं ढहि जाइ॥<sup>18</sup>*

जो लोग दूसरों को रास्ता दिखाते फिरते हैं परन्तु स्वयं उस पर नहीं चलते, उनकी स्थिति बैसी ही होती है जो दूसरों को तो दूध बांटता डोले और स्वयं को पानी भी नसीब न हो, यह तो बड़ी अविश्वसनीय एवं हास्यास्पद बात होगी। जो दूसरों को धैर्य बंधाता फिरे और स्वयं का मन दृढ़ एवं नियंत्रित न हो, ऐसा होना

बहुत ही निरर्थक एवं अप्रासंगिक होगा-

पानी मिले न आपको, औरन बकसत छीर।

आपन मन निश्चल नहीं, और बंधावत धीर।।<sup>19</sup>

कबीर का ऐसे लोगों से बहुत मतभेद है जो जानते- बूझते तो कुछ नहीं हैं लेकिन स्वयं को इस प्रकार प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं मानो उनके समान कोई और है ही नहीं। अर्थात् ऐसे लोग वे होते हैं जिनके पास थोड़ा बहुत ज्ञान होता है उसे वे इतना अधिक समझकर स्वयं को बहुज्ञ ठहराने लगते हैं। उन लोगों की स्थिति 'अधगर गगरी छलकत जाय' जैसी होती है। जो अल्पज्ञान रखकर स्वयं को बहुज्ञाता समझकर लोगों को दिग्भ्रमित करते रहते हैं। ऐसे लोगों को कबीर आधा-अधूरा ही समझते हैं जो अपने मुँह से न जाने कैसे-कैसे कुवचन बोल जाते हैं जिनका मनुष्य पर कैसा प्रभाव परिलक्षित होगा इसकी इन्हें प्रतीति नहीं होती। अर्थात् ऐसे लोग अल्पज्ञ होकर बहुज्ञ बनने का ढोंग रचाते फिरते हैं। कबीर ऐसे लोगों की ओर संबोधित करते हुये उनकी करतूतियों का भंडाफोड़ किस तरह करते हैं? देखिये-

करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि तूँड।

जाँणै बूझै कुछ नहीं, यौं ही आंधा रूँड।।<sup>20</sup>

कबीर ने ऐसे लोगों को भी आधा-अधूरा माना है जो ईश्वर तत्व को समझे बिना ही पदगान और साखियाँ गा-गाकर स्वयं को प्रसन्नचित कर लेते हैं। परन्तु फिर भी इन लोगों का कल्याण नहीं हो पाता वे सांसारिक भवचक्र में फँसकर ही रह जाते हैं। वास्तविक ब्रह्म के स्वरूप को पहचानते ही नहीं। पहचाने भी कैसे? उन्होंने उसके लिये न तो कोई बाह्य प्रयत्न किया और न आंतरिक तो भला फिर ये अल्पज्ञ,

मूर्ख उस ब्रह्म के स्वरूप को कैसे पहचान सकते हैं। अर्थात् कबीर का कहने का आशय यही है कि ऐसे लोग साखी या पद गाकर मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते बल्कि उन्हें इसके साथ-साथ परमेश्वर के स्वरूप को पहचानने की आवश्यकता है, जिससे वे मोक्ष प्राप्त कर सकें और सदैव के लिये सांसारिक मोह-माया त्यागकर भवसागर से पार उतर सकें। लेकिन जो लोग इस बात को नहीं समझते तो फिर वे चाहे कितने ही पद गायें या साखी गायें इन सबसे कुछ होने वाला नहीं है फिर तो वे सदैव के लिये अपने गले में भवसागर का फँदा डाल लेते हैं जिससे मुक्त होना असंभव है-

*पदगोएँ मन हरषिया, साषी कह्याँ अनंद।*

*सो तन नाँव न जाँणिया, गल मै पड़िया फंद।<sup>21</sup>*

इस प्रकार कबीर ने कथनी की अपेक्षा करनी पर अधिक जोर दिया। उनका मानना है कि जो लोग किसी सिद्धांत को स्थापित करना चाहते हैं और उसे व्यावहारिक जीवन में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं तो सर्वप्रथम उन्हीं को उन विचारों, मतों को अपने ऊपर लागू करना होगा। तभी कथनी करनी में एकसमान तालमेल बैठ सकेगा। इसके लिये वे समस्त बाह्याचारों एवं आडंबरों का विरोध करते हैं तभी तो आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि “सब बाहरी धर्माचारों को अस्वीकार करने का अपार साहस लेकर कबीरदास साधना के क्षेत्र में अवतीर्ण हुए।”<sup>22</sup>

### हिन्दू-मुस्लिम: साम्य भावना

इस्लाम धर्म मध्यकालीन भारतीय समाज का एक अंग बन चुका था। यहाँ का अन्न और पानी बाहर से आये हुए मुसलमानों में रक्त बनकर संचरित हो रहा था। ऐसी दशा में उन्हें भारतीय समाज से पृथक् कर देना संभव जान नहीं पड़ता,

फलस्वरूप हिन्दू तथा मुसलमान दोनों में एकता लाने का जो प्रयास भारतीय संतों ने किया है उसे विस्मृत नहीं किया जा सकता। गुरु गोखनाथ ने इसी बात को लक्ष्य करते हुये कहा-

हिन्दू आषै राम को, मुसलमान खुदाइ।

जोगी आषै अलष को, राम आछै न खुदाइ।<sup>23</sup>

एक ओर हिन्दू समाज बहुदेवोपासनावादी था और दूसरी ओर मुसलमान एक खुदा के अतिरिक्त किसी अन्य की पूजा, अर्चना करना कुफ्र समझते थे और जो ऐसा करता था उसे मौत के घाट उतारना बहुत बड़ा पुण्य समझते थे। इसी कारण दोनों वर्गों के मध्य विद्वेष का सागर उमड़ रहा था। न तो मुसलमानों के अत्याचार ही समाप्त हो रहे थे और न हिन्दुओं की मुसलमानों के प्रति घृणा ही। ऐसी स्थिति में दोनों समुदायों के बीच शांति भावना को स्थापित करने की आवश्यकता थी जिसे कबीर जैसे संत भक्त कवि ने करने का प्रयास किया और उन दोनों को बुरा-भला कहा-

कहै कबीरा दास फकीरा, अपनी राह चलि भाई।

हिन्दू तुरक का करता एकै ता गति लखी न जाई।<sup>24</sup>

कबीर ने मनुष्य-मनुष्य के बीच की वैमनस्यता को निर्मूल सिद्ध करते हुये मानवता का पाठ पढ़ाकर राम-रहीम का भेदभाव समाप्त कर दिया। वे इस बात का अनुभव करते थे कि न तो मुसलमानों को ही इस देश से बाहर किया जा सकता और न धर्म परिवर्तन करके हिन्दुओं को सताया ही जा सकता है, बल्कि उन्होंने दोनों के बीच का रास्ता अपनाया। डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थवाल ने ठीक ही कहा है “उस

समय की यही स्पष्ट माँग थी कि हिन्दू और मुसलमान अड़ोसी-पड़ोसी की भाँति प्रेम और शांति से रहें और इन उदार चेताओं को भी इसी बात का अनुभव हुआ था। दोनों जातियों के दूरदर्शी विरक्त महात्माओं को जिन्हें जातीय पक्षपात छू नहीं गया था, जिनकी दृष्टि तत्काल के हानि, लाभ, सुख-दुख, हर्ष-विषाद से परे जा सकती थी, इस आवश्यकता का सबसे तीव्र अनुभव हुआ।”<sup>25</sup>

संकीर्णता के उस युग में जिसमें समाज के दोनों समुदायों- हिन्दू और मुसलमान के मध्य वैमनस्य की भावना बढ़ती ही जा रही थी, घटने के आसार नजर नहीं आ रहे थे, ऐसे में कबीर जैसे साहसी संत कवि ने वीड़ा उठाया और उसे कम करने का प्रयास किया। कबीर ने सामाजिक ऐक्यता की भावना को साकार करना चाहा था, जिसमें जाति, वर्ग तथा धर्म का कोई भी स्थान नहीं था। इन्होंने धर्म-भेद को भी पारस्परिक संघर्ष का प्रमुख कारण माना और प्रगतिगामी पंथ का सुझाव इस प्रकार दिया-

रज गुन ब्रह्मा तम गुन संकर, सत गुन हरि है सोई।

कहै कबीर एक राम जपहुँ रे, हिन्दू तुरक न कोई॥<sup>26</sup>

जहाँ हिन्दुओं का आराध्य देव कुछ और है और मुसलमानों का कुछ और, इस प्रकार दो देव हुये, जबकि कबीर इससे हटकर एकेश्वरवाद की बात करते हैं- तुम दोनों व्यर्थ ही भ्रम में पड़े हो। कबीर कहते हैं कि मेरा तो एक ही आराध्य है। जिस तरह एक ही भाँति का जल होता है और एक ही प्रकार की हवा होती है, एक ही ने सृष्टि की रचना की और वही एक ही इसे नष्ट करेगा। जिस तरह बढ़ई लकड़ी (काठ) ही को काटता है आग को नहीं काटता। परन्तु जो लोग

माया-मोह, धन दौलत के फेर में पड़कर अपने को गौरवमयी अनुभव करते हैं उन्हें तनिक भी भय नहीं लगता कि ये सब चमक-दमक कुछ ही दिन की है। सदैव व्याप्त रहने वाला और असीम जो समस्त जीवों में निहित है उसकी सत्ता निरंतर निवास करने वाली है। इसलिये जो लोग ईश्वर को दो खानों में रखकर उसके कई रूप दे देते हैं कबीर कहते हैं कि वे नरक को प्राप्त होंगे क्योंकि वे ईश्वर के असली एवं वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचानते-

हम तौँ एक एक करि जानाँ।

दोइ कहै तिनहीं कौं दोजग, जिन नाँहिन पहिचाना।

एकै पवन एक ही पानी, एक जोति संसारा।

एक ही खाक घड़े सब भाई, एक ही सिरजन हारा॥

जैसे बाढ़ी काठ ही काटै, अगिनि न काटै कोई।

सब घटि अंतरि तूँही व्यापक, धरै सरूपै सोई॥

माया-मोह, अर्थ देखि करि, काहै कूँ गरबाना।

निरभै भया कछू नाही ब्यापै, कहै कबीर दिवाना।<sup>27</sup>

डॉ० गीता सुरेश कुमार आचार्य का कहना है कि “महात्मा कबीर की दृष्टि में राम, रहीम, केशव, करीम, अल्लाह, बिसंभर सभी एक हैं कोई दूसरा नहीं है। ईश्वर एक ही है, बस उसके नाम अलग-अलग हैं।”<sup>28</sup>

कबीर तुर्क और हिन्दुओं के मध्य अभेद स्थापित करते हुये उन्हें समझाते हैं कि अरे मंद-बुद्धि, मुखौं! तुम्हारी स्मरण शक्ति कहाँ चली गई है? न तो तुम तुरक हो और न तुममें से कोई भी हिन्दू है बल्कि दोनों का एक दीन, धर्म है

वह है मानवीयता। जो लोग अपने-अपने विचारानुसार धार्मिक अवधारणायें गढ़ते हैं कबीर का उनसे पूछना है कि भला ये लोग बीच में किस तरह भ्रम की स्थिति को जन्म देते फिरते हैं? मैं तो इस भ्रम में पड़ने वाला हूँ नहीं। आगे बताते हैं कि हिन्दुओं को राम की माला और तुरकों को तसबीह पढ़ते हुये एक युग बीत गया है जिसके कारण इनकी बुद्धि की स्मरण-शक्ति समाप्त हो चली है। इन्हें अभी तक ईश्वर की एक शक्ति का बोध नहीं हो पाया। भला ये कितने अफ़सोस की बात है? जबकि स्वयं कबीर समझा रहे हैं फिर भी इनकी बुद्धि पर पड़ा हुआ भ्रम का आवरण हटने का नाम ही नहीं लेता-

अरे भाई दोड़ कहाँ सौ मोहि बतायौ।

बिचिही भ्रम का भेद लगावौ॥

जोनि उपाइ रची है धरनी, दीन एक बीच भई करनी।

राम-रहीम जपत सुधि गई, उनि माला उनि तसबी लई॥

कहै कबीर चेतहु रे भाँदू, बोलनहारा तुरक न हिन्दू॥<sup>29</sup>

कबीर ने राम और रहीम में फैले हुये इस विश्वास को कि राम और रहीम दो अलग-अलग देव हैं का बड़ा ही कड़ा विरोध किया है। उन्होंने दोनों को सम्मान देते हुये दोनों के भीतर एक ही ईश्वरीय शक्ति के दर्शन किये और वे उसी सत्ता का बार-बार बखान करते हैं।

वस्तुतः अंधविश्वासी, पापाचारी, कपटाचारी, दकियानूसी, परंपरावादी, बुद्धिहीन लोगों की कमी नहीं है वे हर समय हर युग में रहे हैं उनके 'आगे रोना अपने ननों को खोना' वाली कहावत ही चरितार्थ होती है। आज भी ऐसे रूढ़िवादी

अंधविश्वासियों, कलहवादियों एवं जाति-वर्ण के आधार पर परस्पर ईर्ष्या, द्वेष रखने वालों की एक बहुत बड़ी भीड़ मिल जायेगी जो अपने आगे किसी साधुजन के विचारों को हृदयंगम करना तो दूर उसे सुनना भी पसंद नहीं करेंगे। कबीर ऐसे ही लोगों को सचेत करते हुये एक तत्व, एक सत्ता एक ही परम पिता परमेश्वर की पहचान को लोगों के दिलों-दिमाग में बैठाने की कोशिश करते हैं जो मंदिर-मस्जिद, पीर बिसंभर तथा दिशाओं में पूरब और पश्चिम को लेकर जो भ्रातियाँ फैली हुई हैं कि पूरब दिशा में हिन्दुओं का खड़े होकर पूजन-अर्चन करना तथा पश्चिम दिशा में मुसलमानों का नमाज़ पढ़ना निश्चित है। कबीर ने इन समस्त भ्रातियों को तिलांजलि देकर एक सर्वव्याप्त, असीम, अगोचर शक्ति स्वरूप एक ही ईश्वर की भक्ति करने पर बल दिया है। जिसका वर्णन अत्यन्त दुर्लभ है और जो वर्णनातीत है-

हमारै राम रहीम करीमा कैसौ, अलाह राम सति सोई।  
 बिसमिल मेटि बिसंभर एकै, और न दूजा कोई॥  
 इनकै मुला काँजी पीर पैकंबर, रोजा पछिम-निबाजा।  
 इनकै पूरब दिसा देव दिज पूजा, ग्यारसि गंग दिवाजा॥  
 तुरक मसीति, देहुरे हिन्दू, दहुँटा राम खुदाई।  
 जहाँ मसीति देहुरा नाँही तहाँ काकी ठकुराई॥  
 हिन्दू तुरक दोऊ रह तूटी, फूटी अरु कनराई।  
 अरध उरध दसहुँ दिस जित तित, पूरि रह्या राम राई॥  
 कहै कबीरा दास फकीरा, अपनी राह चलि भाई।  
 हिन्दू तुरक का करता एकै, ता गति लखी न जाई॥<sup>30</sup>



### बहुदेवोपासना का विरोध

कबीर कालीन समाज में मुख्यतः दो ही धर्म थे- हिन्दू और इस्लाम। जहाँ हिन्दू बहुदेववाद के जंजाल में फंसे थे वहीं मुसलमान एकेश्वरवाद के मार्ग से भटक चुके थे। इससे समाज की स्थिति बिगड़ती ही चली जा रही थी। ऐसे में किसी संत महात्मा की आवश्यकता थी जो उन्हें ईश्वर के सच्चे स्वरूप का ज्ञान करा सके। ऐसे ही समय में संत कवि कबीरदास का आविर्भाव हुआ जिन्होंने मानववाद को स्थापित करने के लिये एकेश्वरवाद के उपदेश दिये। इनका कहना था कि जब समाज का प्रत्येक प्राणी एक ईश्वर में आस्था रखेगा तभी समाज का उत्थान हो सकेगा और साथ ही सामाजिक एकता भी स्थापित हो सकेगी अन्यथा समाज में वर्ग-भेद, समुदाय जन्म ले लेंगे और स्थिति पतनोन्मुखी होने लगेगी। कबीर ने बहुदेवोपासना जैसी भ्रांत धारणाओं को जड़ से समाप्त करने का जो व्रत लिया उसके लिये वे जीवनपर्यंत प्रयासरत रहे और उन्होंने पर्याप्त भ्रांत विचारों को समाज से निकाला भी-

कहै कबीर भरम सब भागा।

एक निरंजन सँ मन लागा।<sup>31</sup>

कबीर का मानना है कि जो लोग बहुत से देवी-देवताओं में विश्वास, आस्था रखते हैं उनके अंदर कभी भी एकनिष्ठता की भावना जागृत नहीं हो सकती। ऐसी स्थिति में उन लोगों की दशा वैश्या के पुत्र के समान होती है जिसे यह भी नहीं ज्ञात कि उनका मूल पितृ कौन है? जब इन लोगों का कोई एक निश्चित आराध्य देव नहीं होता और ये बहुत से देवों को इसीलिये मानते हैं कि जिनसे इनके अनेक अभावों की पूर्ति अलग-अलग देवों से हो सके, जो एक देव के अतिरिक्त

कोई कर ही नहीं सकता परन्तु इन लोभी, लालचियों का मन एक स्थान पर केन्द्रित ही नहीं होता तो क्या किया जाय? तब तो इन्हें वैश्या पुत्र कहना ही समीचीन होगा-

राम पियारा छाँड़ि करि करै आन का जाप।

वेश्वां केरा पूत ज्यूँ, कहै कौन सँ बाप।<sup>32</sup>

मनुष्य का यह अजीब स्वभाव है कि उसे जिधर से अपने काम बनते दिखाई पड़ते हैं वह उसी ओर खिंचा चला जाता है और उसी के आगे नतमस्तक होने में ही अपनी भलाई समझता है। उस समय वह अपने मूल-कर्ता (ईश्वर) को विस्मृत कर देता है जिसने उसे पैदा ही नहीं किया अपितु उसे अनेक वस्तुओं- खाद्य-पदार्थ, पानी, हवा, आग, पेड़ फल, फूल इत्यादि से सराबोर कर रखा है परन्तु यह लोभी, लालची, भूला व्यक्ति उसकी इन वस्तुओं के बदले में उसकी प्रशस्ति करता या उसके स्वरूप को पहचानने का थोड़ा प्रयास भर कर लेता सो तो वह करता नहीं बल्कि उसने तो उसकी जगह अनेक नये-नये देवी-देवताओं को अपना पूजक बना रखा है तब भला उसकी यह सांसारिक जिजीविषा जिसके लिये वह निरंतर प्रयासरत है और व्याकुल है कैसे पूर्ण हो सकती है? यह बात तो उसी तरह है जैसे कोई प्यासा व्यक्ति है उसे घास पर पड़ी ओस को चाटने के लिये कह दिया जाय तो भला उससे उसकी शान्त्वना मिट सकेगी? अर्थात् नहीं। इसी ओर लक्ष्य करते हुये कबीर ने भूले हुये मनुष्य को पुनः जगाने का प्रयास किया है कि अरे! भाई जाग, और उस परम पिता परमात्मा को याद कर जिसने संपूर्ण सृष्टि को पैदा किया और वही एक शक्ति है उसके आगे समस्त देवी-देवता फीके हैं। यदि तू ऐसा नहीं करेगा तो तेरी दशा तेरे देवी-देवताओं से लाभान्वित न होकर एक प्यासे व्यग्र, व्यथित मनुष्य की सी हो

जायेगी जो प्यास से बेचैन है जिसकी प्यास ओस कणों से भला क्या बुझेगी? जब तक उसे पानी न पिलाया जाय तब तक वह बेचैनी की स्थिति में ही बना रहेगा। इसी बात को कबीर ने इस प्रकार कहा है-

जिहि हरि जैसा जाणियां, तिनकूँ तैसा लाभ।

ओसौ प्यास न भाजई, जब लग धसै न आभ।।<sup>33</sup>

कहने का तात्पर्य यहाँ कबीर का यही है कि जिसने ईश्वर को जिस रूप में समझा है उसको उसी के अनुरूप लाभ मिलेगा। अन्य देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना या उपासना करना ओस चाटने की तरह है क्योंकि ये देवी-देवता अल्पशक्तियुक्त हैं। जीव (मनुष्य) की पिपासा की शांति ओस चाटने अर्थात् इन (देवी-देवताओं से) नहीं है जब तक कि वह पूर्ण ब्रह्म का भक्ति रस पान न कर ले तब तक उसे तृप्ति नहीं मिलेगी। गीता में भी एक स्थान पर कहा गया है-“ये यथा माम् प्रपद्यन्ते तानस्तथैव भजाम्यहम्।”

कबीर लोगों को संबोधित करते हुये कहते हैं कि मैं तो एक राम नाम का जाप (आराधना) करता रहता हूँ लेकिन देख रहा हूँ कि लोग मुझे अनदेखा करते हुये मेरी बात को अनसुना कर रहे हैं और न जाने कैसी-कैसी साधना-पद्धतियों के फेर में पड़े हुये हैं। जिनसे इन्हें किसी भी प्रकार की भलाई मिलने वाली नहीं है, अर्थात् कबीर ने अपने समय की प्रचलित विविध साधना-पद्धतियों, योग-साधना, ज्ञान-साधना, कर्म-साधना तथा और ऐसी ही अन्य साधनाओं में भक्ति-साधना को ही श्रेष्ठ ठहराते हुये इसी से जीवों का कल्याण हो सकेगा, की ओर लोगों को आगाह किया है, और उन्होंने इस साधना पद्धति (भक्त-पद्धति) को सबके लिये सरल, सहज

एवं सुगम मानते हुये कहा है कि एक राम नाम रूपी भक्ति से ही जीवों का कल्याण संभव है जो मैं करता रहता हूँ लेकिन मेरी कोई सुनने वाला कोई हो तब न अर्थात् मुझे (कबीर) सब कोई अनदेखा एवं अनसुना कर रहा है-

कबीर कहता जात हूँ, सुणता है सब कोइ।

राम कहें भला होइगा, नाहिं तर भला न होइ।<sup>34</sup>

कबीर का एक ईश्वर में अखण्ड एवं अगाध विश्वास है, उन्होंने तद्युगीन बहु देवी-देवताओं की उपासना पद्धति को निर्मूल सिद्ध कर दिया। इससे कबीर की एकेश्वरवादी दृष्टि का परिचय मिलता है। उन्होंने एक ईश्वर की भक्ति के समक्ष समस्त उपासना-पद्धतियों को तुच्छ, जंजाल, झंझट एवं दिग्भ्रमित करने वाली तक सिद्ध कर दिया कि जो भी बहुदेवापासना पद्धति के जंजाल में पड़ेगा उसका कल्याण कदापि न हो सकेगा। वह व्यक्ति सदैव भवसागर में पड़ा रहकर व्यग्र, बैचैन एवं पीड़ित होता रहेगा। इसीलिये कबीर लोगों को केवल और केवल राम नाम रूपी सुमिरन देकर उन्हें भवसागर से पार कराने के लिये सचेत करते हैं कि यही भक्ति श्रेष्ठ एवं सार्थक है अन्यथा जितनी भी उपासनायें हैं ये समस्त कालव्यापी हैं जिनसे छुटकारा पाना असंभव है। कबीर ने ये जो भी बातें कहीं हैं कि राम नाम रूपी सुमिरन ही सर्वोत्तम है अन्य समस्त उपासना पद्धति उसके आगे जंजाल हैं बड़े ही सोच और विचार करने के उपरांत ही कहीं-

कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल।

आदि अंत सब सोधिया, दूजा देखौ काल।<sup>35</sup>

इस तरह कबीर ने बहुदेवोपसना का घोर विरोध कर एकेश्वरवाद की

स्थापना की। उन्होंने एक ईश्वर पर विश्वास करने तथा परम परमेश्वर से जीवों के कल्याण की भावना को लोगों के मस्तिष्क में बैठाने का भरसक प्रयास किया। उन्होंने एकेश्वरवाद की स्थापना के लिये तद्युगीन मठाधीशों से जो प्रतिशोध लिया यह उनकी निर्भीकता एवं क्रांतिकारिता का परिचायक है। इसीलिये तो डॉ० शेर सिंह विष्ट का कथन बड़ा ही सटीक है कि “कबीर अपने युग के निविड़ अज्ञानरूपी अंधकार का विषपान करके भक्तों को ज्ञानरूपी प्याले में प्रभु की प्रेम भक्ति का अमृतपान कराने वाले भारत के सुकरात थे।”<sup>36</sup>

### तीर्थ-यात्रा का विरोध

कबीर कालीन समाज में व्याप्त बाह्याचारों में हिन्दुओं की तीर्थ-यात्रा तथा मुसलमानों की हज-यात्रा भी एक थी। लोग पहले तो अनेक दुष्कर्म कर लेते हैं और फिर बाद में पश्चाताप स्वरूप अपने पापों को धोने के लिये गंगा, जमुना, हज-काबा की ओर उन्मुख होते हैं जिससे उन्हें मुक्ति की प्राप्ति हो सके। यह ठीक है कि किसी तीर्थ पर जाकर वहाँ की पावन नदी में स्नान करना और हज, काबा जाने से पुण्य होता है लेकिन उसके बाद भी यदि मनुष्य में तनिक भी परिवर्तन न हो सके तो फिर भला ऐसे तीर्थाटनों, यात्राओं से क्या लाभ? फिर तो उसे कुछ भी प्राप्त न हो सका अर्थात् यदि वहाँ जाकर व्यर्थ ही अपना समय गँवा दिया। उसने वहाँ जाकर उसके हृदय में पवित्रता, सरलता, सहजता एवं साधुत्व आता है तभी उसकी तीर्थ यात्रा सफल एवं सार्थक मानी जा सकती है अन्यथा नहीं। लेकिन कबीर ने अपने खुले नेत्रों से व्यवहार जगत में देखा कि लोग हज-यात्रा, तीर्थयात्रा, गंगा-स्नान आदि जाते हैं लेकिन उनके अंतःकरण में फिर भी अपवित्रता, कुटिलता

एवं कूटनीतिज्ञता आदि का त्याग नहीं हो पाता। ऐसे लोगों का कबीर ने खूब उपहास किया और उन पर उन्होंने व्यंग्य-वाणों की घनघोर बौछार की। कबीर बताते हैं कि लोगों को तीर्थयात्रा पर जाते-जाते एक जमाना हो गया और गंगा में डूब-डूब कर नहाते-नहाते बहुत समय बीत चुका लेकिन लोगों को अंत में कुछ भी हाथ न लगा बल्कि जितने लोगों ने तीर्थाटन या गंगा-स्नान किया वे सभी के सभी इन बाह्याचारों में फँस-फँस कर मर गये लेकिन मूल तत्व (राम) को नहीं पहचाना तो फिर अंत में कालरूपी मृत्यु ने आकर उन्हें आ दबोचा-

*तीरथ करि करि जग मुवा, डूँघै पाँणी न्हाइ।*

*रामहिं राम जपंतड़ा, काल घसीटयाँ जाइ।।<sup>37</sup>*

कबीर का कहने का मूल तात्पर्य यही है कि लोगो! तुम्हारा संपूर्ण जीवन यूँ ही बीता जा रहा है तुम व्यर्थ ही बाह्याचारों में फंसे हो। तुम अपने आप को इन रूढ़ियों में फँसाकर क्यों अपने जीवन को नष्ट कर रहे हो? जब तक तुम राम नाम का जाप नहीं करोगे तब तक तुम्हें मुक्ति नहीं मिल सकती। तुम्हारा जीवन इन बुरे कर्मों में पड़कर व्यर्थ ही अंतकाल की ओर अग्रसर हो रहा है और तुम उससे सचेत नहीं होते। अब तो तुम्हारे सिर पर काल रूपी मृत्यु सवार हो चुकी है अब तो तुम्हें अंत में सचेत हो जाना चाहिये और ईश्वर का भजन, जाप कर अपने हृदय को पवित्र करके इस भवसागर से मोक्ष प्राप्त करना चाहिये। तुम उन लोगों का भला क्यों अनुगमन करते हो? जिन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन को तीर्थाटनों, तीर्थयात्राओं एवं गंगा स्नान में नष्ट कर दिया फिर भी वे जीवन-मरण से मुक्त न हो सके। अर्थात् कबीर लोगों को भवसागर से मुक्ति दिलाने का प्रयास करते हैं। इस संबंध में डॉ०

लक्ष्मण सहाय का कथन उल्लेखनीय है वे कबीर के बारे में कहते हैं। कि “वे (कबीर) उन्हें (लोगों को) अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न, शोषण से उबारने, उनसे मुक्त कराने के लिये आह्वानित करते हैं।”<sup>38</sup>

कबीर का मानना है कि वास्तव में तीर्थाटन तो विषैली लता के समान होता है जिसकी न तो कोई जड़ है और न उसमें किसी तरह का सार है। यदि मन में सच्चाई नहीं है और हृदय में वासना की आग धधक रही है तो तीर्थाटन से कुछ भी होने वाला नहीं है। कबीर का कहना था कि जिस प्रकार ब्रह्म शरीर के भीतर है, वैसे ही तीर्थस्थान भी शरीर में विद्यमान हैं, बात है उनको पहचानने एवं जानने की। वे कहते हैं कि लोगों को अपना अन्तःकरण पवित्र एवं शुद्ध रखना चाहिये उसके लिये तीर्थाटनों की आवश्यकता नहीं तीर्थस्थल तो शरीर के भीतर ही निहित हैं अतः तीर्थयात्रा जाना व्यर्थ ही है। इसी ओर संकेत करते हुए कबीर कहते हैं मनुष्य के शरीर के अंदर दस द्वार हैं ये ही उसके तीर्थस्थल हैं जहाँ पर एक दिव्य-शक्ति का साक्षात् पुंज है अतः लोगों को उसे जानना चाहिये, कैलाश, काबा हज़, मथुरा, द्वारिकाधीश जाने से कोई भी लाभ होने वाला नहीं है अतः तुम्हें अपने मन को पवित्र करने और अनेक कुकर्मों से बचकर शुद्ध रहने की आवश्यकता है-

*मन मथुरा दिल द्वारिका, काबा कासी जाँणि।*

*दसबाँ द्वारा देहुराँ, तामैं ज्योति पिछाँणि॥*<sup>39</sup>

कबीर ने तीर्थयात्रा, गंगास्नान तथा तीर्थाटनों का विरोध करते हुये लोगों को जो उपदेश दिये हैं उसके कई कारण रहे हैं धर्म के ठेकेदार के पद पर सुशोभित पुजारी स्वयं अनेक विकारों से ग्रसित होते हैं जो सरल एवं निश्छल हृदय जनता को

लूटने के लिये तरह-तरह के साधन अपनाकर उन्हें पथभ्रष्ट करते हैं और स्वयं मंदिरों के मठाधीश बनकर गद्दियों पर अलंकृत होकर धन्य समझते हैं। पंडों द्वारा दर्शनार्थियों का शोषण-उत्पीड़न एवं व्यभिचार के विषय में हम सभी जानते हैं कि उनकी करतूती कैसी होती है वे लोगों को किस तरह छलते हैं कि उन्हें तनिक भी अपनी मान-मर्यादा का ख्याल नहीं रहता। इसीलिये कबीर ने इन समस्त बाह्याचारों से दूर रहकर गृहस्थ जीवन में रहकर ही ईश्वरोपासना करने पर बल दिया है। उनका कहना है कि जब ईश्वर सर्वव्यापी है, सर्वत्र विद्यमान है वह केवल तीर्थ-स्थलों तक ही सीमित नहीं है तो फिर भला हमें वहाँ भटकने की क्या पड़ी? यदि तीर्थ-स्नान के पश्चात् भी मन की कुटिलता, अपवित्रता यथावत् बनी रही तो इससे क्या लाभ हुआ? हानि ही हाथ लगी। अतः कबीर इन्हें व्यर्थ सिद्ध ठहराते हुये लोगों को सचेत करते हुये कहते हैं- बिना राम नाम की भक्ति के समस्त बाह्याचार बेकार हैं ये भ्रमित करने वाले हैं इन्हीं में पड़कर मनुष्य अपनी जवीन लीला को समाप्त कर लेता है अतः लोगों! जरा सा तो चेतो-

जोगी जती तपी सन्यासी बहु तीरथ भ्रमना।

लुंजित मुंजित मौनि जटा धरि अंत तऊ मरना।

ताते सेविअ लै रमना

रसना राम नाम हितु जाकै कहा करै जमना।<sup>40</sup>

कबीर में जप, तप, तीर्थ-व्रत, उपवास इत्यादि को सारहीन और निस्सार माना है वे कहते हैं जो लोग इन सब झंझटों में पड़ते हैं वे अपना समय उसी प्रकार व्यर्थ कर देते हैं जिस प्रकार शुक (तोता) सेमल के फूल के पास बैठा अपना समय



व्यतीत कर देता है और अन्ततः उसे फल नहीं मिलता बल्कि उसे निराशा ही हाथ लगती है। इसी प्रकार संसारी लोग आडम्बरों के पीछे लगकर निराश ही होते हैं उन्हें उनसे कोई भी लाभ प्राप्त नहीं होता इसीलिये कबीर कहते हैं-

जप तप दीसै थोथरा, तीरथ व्रत बेसास।

सूबै सैंबल सेबिया, यौं जग चल्या निरास।।<sup>41</sup>

कबीर युगीन परिवेश में चारों ओर बाह्याडम्बरों का बोलवाला था इन बाह्याडम्बरों से भोले भाले लोगों को मुक्ति दिलाने के लिये एक बुद्धिमान, विवेकशील एवं व्यवहार कुशल मनुष्य की आवश्यकता थी। कबीर इसी प्रकार के व्यक्ति थे, उन्होंने इन समस्त तीर्थ, व्रत, स्नान, जप, तप, इत्यादि को समूलतः नष्ट करने का बीड़ा उठाया क्योंकि वे सामान्य जन से बिल्कुल भिन्न थे। उनके पास एक अनुपम तार्किक शक्ति थी जिससे वे लोगों को हतप्रभ कर देते थे और लोगों को उनके समक्ष मौन होना पड़ जाता था। यह थी कबीर की बाह्याडम्बरों पर तीव्र चोट जिससे तीर्थरूपी विषैली बेल कटकर गिर पड़ी जो समस्त संसार पर आच्छादित होकर लोगों को दिग्भ्रमित कर रही थी-

तीरथ तो सब बेलड़ी, सब जग मेल्या छाड़।

कबीर मूल निकंदिया, कौण हलाहल खाड़।।<sup>42</sup>

### अवतारवाद का विरोध

ईश्वर में विश्वास रखने वाले मनुष्य अपने बीच उसकी उपस्थित से एक प्रकार की सुरक्षा एवं तृप्ति का अनुभव करते हैं। सत्य की रक्षा में किये गये

जितने भी महत्वपूर्ण कार्यों में सदैव ईश्वर की कृपा समझकर प्रसन्नचित होते हैं। व्यक्ति इस तरह का विश्वास बहुत पहले से करता आया है मध्यकाल में आते-आते इसने अपना रूप और भी विस्तृत एवं व्यापक कर लिया। लोगों की प्रायः अवधारणा यह बन चुकी थी कि ईश्वर शरीर धारण कर अवतार लेता है।

सगुण-भक्ति के व्यापक प्रचार वाले वैष्णव मध्यकालीन समाज में ईश्वर को मात्र अवतारों तक सीमित करके अपनी-अपनी आस्थानुसार अलग-अलग अवतारों के समर्थक हो गये। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक ही था कि समाज में लोगों के मध्य भिन्नता एवं द्वेष की भावना फैलती। और बिलकुल वैसा ही हुआ लोग समाज में अवतारों को लेकर खंडित हो गये। ऐसी स्थिति में संत महात्मा कबीर ने सारी स्थिति का जाइजा लिया और उन्हें यह अस्वाभाविक सा प्रतीत हुआ कि जो ईश्वर जन्म-मरण से असंपृक्त एवं परे है वह भला मनुष्यरूप या अन्य जीव-जन्तु (जैसे मत्स्य, कच्छप, नृसिंह, वाराह) के रूप में जन्म क्यों लेगा और उसे इसकी क्या पड़ी? संत कबीर के मतानुसार रक्त-मांस के रूप में जन्म लेने वाला कोई भी भौतिक शरीर परमात्मा, ईश्वर या ब्रह्म नहीं हो सकता। क्योंकि वह तो अगम्य, अगोचर, असीम एवं अनंतस्वरूप है। उसे तो भक्ति के द्वारा ही अनुभूत एवं जाना जा सकता है वह बाह्यस्वरूप विधानों- आकार, रंग, रूप, रेख से सर्वथा एवं सर्वदा परे है।

अवतारवाद के विरोधी कारणों में मनुष्य ही मनुष्य को पूजने लगता है जो ईश्वर के लिये त्याज्य है। यदि मनुष्य ही मनुष्य को सर्वेसर्वा समझ उसे ईश्वरावतार के रूप में पूजने लगेगा तो फिर वहां ईश्वर का अस्तित्व कहां रहा? फिर तो ईश्वर के पद पर आसीन हो गया। इससे तो समाज का भला तो क्या होगा? समाज में

लोगों में पृथक-पृथक अवतारों को लेकर भ्रांतियां फैलेंगी कि अमुक अवतार ठीक है कोई दूसरा किसी अन्य अवतार को श्रेष्ठ बतायेगा। इस तरह समाज में शांत्वना के स्थान पर वह पूर्णतः विकृत होता चला जायेगा। डॉ० पीताम्बरदत्त बड़धवाल का इस संबंध में जो कहना है वह उल्लेखनीय है- “अवतार विरोध का एक प्रधान कारण यह भी हो सकता है कि उसके द्वारा नर-पूजा का विधान हो जाने के कारण धर्म में पाखण्ड घुसने का मार्ग मिल जाता है।”<sup>43</sup> डॉ० बड़धवाल अपनी बात की पुष्टि में आगे मानते हैं कि एक तो अवतार पद किसी व्यक्ति को इसी जीवन में प्राप्त नहीं हो पाता, द्वितीय निर्गुणियों ने इस प्रकार से साधुओं के विशेषतः गुरुओं के महत्त्व को बढ़ाने के लिये अवतारवाद का प्रयोग किया। वस्तुतः तत्कालीन परिस्थितियां बड़ी विषम थीं। लोग अवतारवाद के बाह्य रूप पर मुग्ध थे, अंधविश्वास उन लोगों का धर्म बन चुका था। मनमाने अवतार और उनके कर्म निर्धारित किये जा रहे थे। अपने उपास्य अवतार की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिये दूसरों की निंदा का प्रचलन हो गया था। जनता इस तथ्य को भूल बैठी थी कि समस्त अवतारों में उसी एक ईश्वर का स्वरूप या शक्ति दृष्टिगोचर होती है।

इन सब बातों के अलावा शिव के उपासक शाक्तों से और शाक्तों के उपासक वैष्णवों से कलह किया करते थे। राम और कृष्ण के भक्तजनों में पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता चल रही थी। दूसरे के इष्टदेव के सामने सिर झुकाना लोग पाप और अपने अराध्य देव की अवहेलना समझते थे। इस तरह ईश्वरीय आस्था की सात्विक भावना से उद्भूत अवतारवाद समाज में वैमनस्य का कारण बनता जा रहा था। अवतार के साथ-साथ पूजा, उपासना के नाना विधान और आडम्बरों से तत्कालीन

समाज में धर्म दूषित होता चला जा रहा था। इन सबको दूर करने की नितांतावश्यकता थी। इस कार्य को हर कोई क्यों और कैसे करता? इसके लिये एक अद्भुत एवं विलक्षण व्यक्तित्व की आवश्यकता थी। इस दृष्टि से संत महात्मा कबीर ने जो अपना योग दिया वह वस्तुतः अनुपम एवं अतुलनीय है। उन्होंने समाज से बाह्याडम्बरों और अवतारवाद जैसी अवधारणाओं को समूलतः उखाड़ दिखाया और एकेश्वरवाद को लाकर प्रतिष्ठित किया। इसमें किसी प्रकार की न तो कलह थी और न ही इष्टदेव को लेकर एक दूसरे के में इष्टदेव को ऊँचा-नीचा देखने जैसी संकीर्णताओं की ही भावना थी।

संत महात्मा कबीर ने अवतार का खण्डन कर समाज को सजग एवं सचेत किया। उनका लक्ष्य जनता को अवतारवाद के स्वरूप के प्रति सावधान करना था। अपने इस लक्ष्य में कबीर काफी सीमा तक सफल भी हुए। परन्तु यह बात बहुत ही विचित्र लगने वाली है कि कबीर ने जिस अवतारवाद का खण्डन किया इन्हीं के अनुयायियों ने उनके मरने के बाद ही कबीर को अवतारी रूप दे दिया और उनको अपना गुरु मानकर उनका गुरु-पूजन करना शुरू कर दिया। अर्थात् उन लोगों ने कबीर को अवतार मान लिया, लेकिन यदि कबीर जीवित रहे होते तो वे इसे कदापि स्वीकार नहीं करते।

कबीर ने स्वयं अपने विषय में बताया कि मैं इस संसार में नाना-विधानों एवं रूपों को देखने के लिये आया था लेकिन ईश्वरीय कृपा से मुझे ऐसे गुरु मिल गए जिन्होंने मुझे परम ब्रह्म से जाकर मिला दिया जिसका स्वरूप अनुपम है-

*आया था संसार में देषण कोँ बहुरूप।*

*कहै कबीरा संत ही, पड़ि गया नजरि अनूप।<sup>44</sup>*

कबीर के विषय में एक प्रश्न यह भी उठाया जा सकता है कि जब वे सर्वशक्तिशाली एवं अगम्य, अगोचर, असीम, ब्रह्म को ही एक सृष्टिकर्ता मानते हैं परन्तु गुरु को उस ब्रह्म की तुलना में प्रश्रयता भला क्यों देते हैं? और ऐसे (गुरु को) ब्रह्म से भी बड़ा मानते हैं। इसका उत्तर है कि इन्होंने गुरु को ईश्वर, गोविंद से अधिक महत्व इसलिये नहीं दिया कि गुरु ईश्वर की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली एवं सर्वश्रेष्ठ है या सर्वज्ञ है बल्कि ये गुरु को ईश्वर से बड़ा इसलिये तब मानते हैं जबकि गुरु ही वह ज्ञानरूपी संचित कोश है जिसने अपने संसर्ग में रखकर कबीर को ब्रह्म के स्वरूप के बारे में बताया और उनसे पूर्ण साक्षात्कार भी कराया। अतः उस स्थिति में गुरु ईश्वर, ब्रह्म या गोविंद से बड़ा बन जाता है।

कबीर ने अवतार का जो विरोध किया है उसमें उन्होंने किसी अवतार-राम, कृष्ण या मुसलमानों के पैगम्बरों को बुरा-भला नहीं कहा अपितु उन्हें ईश्वर समझकर पूजने लगना जैसी भ्रांति का खण्डन किया है।

कबीर ने पीर, पैगम्बरों, अवतार लेने वाले महापुरुषों राम, कृष्ण, गुरु-जनों आदि की महत्ता को पूर्णतः समझा था लेकिन उन्हें आराध्य के रूप में नहीं बल्कि उनको उन्होंने सम्मान एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखा। कबीर ने तो एक अगम्य, अगोचर, असीम, अनुपम, निर्गुणस्वरूपानंद ब्रह्म की भक्ति पर जोर दिया जो सर्वत्र व्याप्त है, उसकी भक्ति किये बिना जीव संसार में व्यथित, पीड़ित एवं भटकता फिरता है। अतः लोगों को अवतारी महापुरुषों जैसे दशरथी रामादि को अपना उपासक न समझें बल्कि उस असीम शक्तिस्वरूप ब्रह्म की भक्ति करें जिसका मर्म दशरथी राम का भक्त नहीं समझ सकता अपितु वह तो कबीर के अनुसार अनुभूति का विषय है जिसे

अन्तःकरणरूपी नेत्रों से ही देखा जा सकता है। अतः कबीर ने खुलकर दशरथी राम के अवतारी रूप का जिसने समाज में अनेकानेक विसंगतियां एवं भ्रांतियां फैला रखीं थीं का खूब खुलकर विरोध किया है-

दसरथ सुत तिहु लोक बखाना।

राम नाम का मरम है आना।।<sup>45</sup>

कबीर ने राम का ही नहीं, दसों अवतारों का विरोध किया। उनका कहना है कि न तो राम ने दशरथ के घर जन्म लिया, न लंकापित से युद्ध किया, न देवकी की कोख से जन्म लिया, न जसोदा ने ही उसे गोद खिलाया। न वह ग्वालबालाओं के साथ घूमा, न उसने गोवर्धन पर्वत धारण किया। न उसने मत्स्य का रूप धारण किया न कच्छप का ही। न उसने बद्रीनाथ में नारायण बनकर तपस्या की और न परशुराम के रूप में क्षत्रिय संहार किया। न उसने द्वारावती में शरीर त्यागा और न उसका जगन्नाथ में पिंड गाढ़ा गया है। बल्कि वह तो इन समस्त बाह्य विधानों से परे है। वस्तुतः जो परमब्रह्म सकल विश्व-ब्रह्माण्ड में व्याप्त है वह उन अवतारी विधानों से बहुत ऊपर है, वह अगम है, वह प्रत्येक व्यक्ति को सहज ही प्राप्त हो जाय ऐसा नहीं है-

तू सकल गहगरा, सफ सफा दिलदार दीदार।

तेरी कुदरति किनहूँ न जानी, पीर मुरीद काजी मुसलमानी।।

देवी देव सुर नर गण गंधर्प, ब्रह्मा देव महंसुर।

तेरी कुदरति तिनहूँ न जानी।

x

x

x

x

अविगत पुरिस की गति लखी न जाई दास कबीरा अगह रहे ल्यौ लाई।<sup>46</sup>

संत रैदास (रविदास) ने भी अवतार का खण्डन करते हुये लोगों को सचेत किया कि तुम हरि (ब्रह्म) जैसे हीरे को छोड़कर अन्य किसी अवतारी पुरुष से भला क्यों आशायें लगाये हो? तुम्हें तो चाहिए कि एक ब्रह्म की भक्ति कर हरि जैसे हीरे को पाकर स्वयं को नरकाग्नि से बचाना चाहिए यदि ऐसा नहीं करोगे तो फिर तुम स्वयं जान लो कि तुम्हारी भी गणना नरक वाले पापियों में ही होगी। अतः मैं (रविदास) सत्य कह रहा हूँ-

हरि सा हीरा छाँड़ि के, करहिं आन की आस।

ते नर दोजख जाहिंगे, सत भाषै रविदास।<sup>47</sup>

अतः कहा जा सकता है कि कबीर ने अवतारवाद का जो विरोध किया है, उसमें उन्होंने किसी, पीर, पैगम्बर या अवतारी की निंदा नहीं कि बल्कि उससे समाज में जो वैमनस्यता व्याप्त थी उसको समूलतः नष्ट करने और जनता को सतपथ पर लाने के लिये ही इन्होंने अवतारों का खण्डन किया, जो परम आवश्यक था। यदि वे ऐसा न करते तो जनता और भी अधिक दिग्भ्रमित होकर पारस्परिक कलह एवं कलेश में पिसती रहती और इस तरह समाज पतनोन्मुख की ओर ही अग्रसर होता। स्वयं कबीर के प्रतिष्ठित एवं मर्मज्ञ आलोचक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी भी 'कबीर' नामक ग्रंथ में सगुण, साकार, अवतार का विरोध कर उसे भ्रम सिद्ध करते हुये कहते हैं- "वस्तुतः सोपाधिक ब्रह्म भ्रममात्र है, ठीक उसी तरह तो नहीं जिस तरह

सीपी को चाँदी समझ लेनेवाले का भ्रममात्र है, असल में वह आर्यभ्रम है, फिर भी गलती से यदि कोई सीपी को चाँदी समझ ले तो भी सीपी सीपी ही रहेगी, चाँदी नहीं हो जायेगी। इसी प्रकार निर्गुण और निरुपाधि ब्रह्म को जब हम गलती से सगुण और सोपाधि मान लेते हैं तब भी हम वस्तुतः भ्रम में होते हैं, ब्रह्म तो निर्गुण का निर्गुण और निरुपाधि का निरुपाधि ही बना रहता है।”<sup>48</sup>

### वेद, शास्त्र, पुराणों की उपेक्षा

मध्ययुगीन समाज वर्गों में विभक्त था। समाज के तथाकथित नेता आज की ही भाँति भिन्न-भिन्न वर्गों को बढ़ावा दे रहे थे और साथ-साथ विभिन्न धर्म-ग्रंथों को आधार बनाकर उस वर्गीकरण को आवश्यक एवं धर्म-संगत बतलाकर पारस्परिक वैमनस्य की भावना को और भी पुष्टता देने में लगे हुये थे। धर्म के ठेकेदारों ने स्वनिर्मित पाखण्डों एवं आडम्बरों का उत्तरदायित्व भी धर्मग्रंथों पर छोड़ दिया जिसके कारण सामाजिक विशृंखलता ही नहीं बढ़ रही थी अपितु बह्याचारों तथा नाना विधानों से लोगों का समय व्यर्थ के झमेलों में व्यतीत हो रहा था। विभिन्न धर्मों के गुरु अपनी-अपनी इच्छानुसार धर्म-ग्रंथों की भिन्न-भिन्न व्याख्या कर रहे थे। इन विभिन्न धर्मावलंबियों का विश्वास अलग-अलग ग्रंथों में भिन्न-भिन्न था। यही सभी मूल कारण थे जो समाज में विषमता को जन्म दे रहे थे।

तद्युगीन जनता भी शिक्षित न होने कारण इन धर्मावलंबियों के व्याख्यानों को सुनकर उनकी अनुगामी बनी हुई थी। अतः पोथी ज्ञान के इस प्रपंच को धार्मिक नेताओं ने दिन-प्रतिदिन बढ़ावा ही दिया। ऐसे धार्मिक नेताओं की संख्या अनगिनत हो चली थी। इस विषय में डॉ० मोती सिंह लिखते हैं, “साधकों तथा संतों



(कबीर) ने पुस्तकों के ज्ञान और पांडित्य को सदैव ही शंका और अविश्वास की दृष्टि से देखा था, कारण यह कि ज्ञान कुछ थोड़े से व्यक्तियों की धरोहर था। आम जनता यदि शिक्षित भी रही हो तो वह तत्त्वज्ञान संबंधी इन सूक्ष्म भेदों से उदासीन अवश्य रही। इस प्रकार पांडित्य मुट्ठी भर लोगों की निधि होने कारण सामान्य जनता के शोषण का कारण बन गया।”<sup>49</sup>

इस प्रकार समस्त बुराइयों को देखकर संतों (कबीरादि) ने ही पोथी ज्ञान का खण्डन किया हो ऐसा नहीं है बल्कि उनसे भी पूर्व संतों के प्रेरणास्रोत सिद्धों ने भी इनका खण्डन जोरदार शब्दों में किया है। मुनि रामसिंह कहते हैं “हे पंडित, कणों को छोड़कर तूने भूमी को ही कूटा है। ग्रंथ और उसके अर्थ में तुझे संतोष है, किन्तु हे मूढ़ परमार्थ से तेरा परिचय नहीं। मूर्ख तूने बहुत पढ़ लिया तो क्या? ज्ञान की चिनगारी को पढ़ जो प्रज्वलित होते ही पुण्य और पाप दोनों को एक क्षण में भस्म कर देती है-

पंडिय पंडिय पंडिया कणु छंडिवि तुस कंडिया।

अत्थे गंथे तुट्ठो सि, परमत्थुण जाणहि मूढो सि।

णाण तिडिक्की सिक्ख बढकिं पढियहं बहुएण।

जा सुधुक्की णिडहइ, पुराण वि पाउ खणेण।<sup>50</sup>

इसी तरह संत नामदेव ने भी इस संबंध में वेद, शास्त्र, पुराणों की निंदा करते हुये अपने उद्गार प्रकट किये-

वेदहिं झूठा, शास्त्रहिं झूठा, भक्त कहां से पछानी।<sup>51</sup>

थोथे पुस्तकीय ज्ञान की निरर्थकता को ज्ञापित करते हुये कबीर काजियों

से भी कहते हैं- काजी जी, तुम्हें पढ़ते-पढ़ते तो अनेक दिन बीत चले परन्तु वास्तविकता से तुम्हारा परिचय नहीं हो पाया-

काजी कौन कतेव बषानै।

पढ़त-पढ़त केते दिन बीते, गति एकौ नहिं जानै।<sup>52</sup>

कबीर ने एक जगह वेद-पुराण पढ़ने वाले पंडितों को खूब फटकारा है। उनका कहना है कि केवल वेद-पुराण-शास्त्रों के पढ़ने से क्या लाभ है? जब तक ब्राह्मण उनके मूल अर्थ को हृदयंगम नहीं करता तब तक वह पाखण्डी ही बना रहेगा, और वह कदापि भवसागर से पार नहीं उतर सकेगा। यह तो वैसा ही हुआ जैसे गधे की पीठ पर चाहे चंदन का बोझ हो या किसी अन्य वस्तु विशेष का गधे को इससे क्या लेना देना उसे बोझा ही ढोना है। अर्थात् गधे को चंदन जैसी गुणवान एवं शोभायमान वस्तु के विषय में पता ही नहीं कि यह कितनी मूल्यवान है? ठीक उसी प्रकार ब्राह्मण जब तक वेद, उपनिषद्, पुराण-शास्त्रों के मूलार्थ को नहीं समझेगा और व्यर्थ ही अपने गाल बजाता रहेगा तब तक पाखण्डी, धूर्त ही बना रहेगा। वह इस भवसागर से मुक्ति प्राप्त कर ले असंभव है-

वेद पुराण पढ़े का क्या गुनु, खर चंदन जस भारा।

राम नाम की गति नहिं जानी, कैसे उतरसि पारा।<sup>53</sup>

समाज में पंडितों और मुल्लाओं ने वेद-पुराण शास्त्र आदि धर्म-ग्रंथों का सहारा लेकर समाज में बाह्याडम्बरों और पाखण्डों को जन्म दे रखा था और यह स्थिति रात-दिन अधिकाधिक होती चली जा रही थी। कबीरादि जैसे संतों ने इन कुत्सित और घृणित कार्यों को रोकने का प्रयास किया और भोली भाली जनता को

बाह्याडम्बरो के पंक से बाहर निकाला-

*हिन्दू-मुसलमान दीन सरहद बने, वेद कितेब परंच साजी।<sup>54</sup>*

कबीर का स्पष्ट कहना था कि असंख्य, अनगिनत ऐसे लोग मर गये जिन्होंने धर्म-शास्त्रों को ऊपरी तौर से पढ़ा उसके आंतरिक अर्थ को न पहचानकर उसके शाब्दिक स्वरूप को ही पढ़ते रहे। ऐसे लोगों से भला कैसी आशा रखी जा सकती थी कि वे लोगों का कल्याण कर उन्हें सत्यमार्ग पर लाते अपितु इसके विपरीत तो उन्होंने लोगों को दिग्भ्रमित ही किया और उन्हें लूटा-खसोटा था। ऐसे लोग चाहे वे मुसलमान हों या हिन्दू रहे हों जब उन्होंने धर्म-शास्त्रों के अंतरंग अर्थ को नहीं जाना-पहचाना अर्थात् उनकी एक तरह से उपेक्षा ही कर दी तो फिर भला वे स्वर्गवासी किन कर्मों से हो सकते हैं? अर्थात् वे स्वर्ग जाने के पात्र ही नहीं हैं वे तो नरकवासी ही हैं-

*पंडित वेद पुरान पढ़ै, औ मौलाना पढ़ै कुराना।*

*कहै कबीर वे नरक गये, जिन हिरदय राम न जाना।।<sup>55</sup>*

प्राचीन धर्म ग्रंथ-वेद, उपनिषद्, पुराण, गीता आदि में जो बातें व्याप्त थीं, उनकी पढ़े-लिखे विद्वान, ब्राह्मण, पंडे अपने-अपने ढंग से व्याख्या कर रहे थे। वे उनकी मूल-बातों से सर्वथा अनभिज्ञ ही रहे। वे स्वयं ही उनमें उलझे हुये थे तो भला भोली-भाला जनता को वे क्या समझा सकते थे अर्थात् धर्मग्रंथों में उलझ-पुलझ कर स्वयं को ही मृत्यु के निकट कर रहे थे-

*ब्राह्मण गुरु है जगत का, साधु का गुरु नाहिं।*

*उरझि-पुरझि करि मरि रह्या, चारिउ वेदा मांहि।।<sup>56</sup>*

कबीर कालीन समाज में ब्राह्मण, पंडित को जाति, कुल के आधार पर बहुत बड़ा ज्ञानी माना जाता था, लेकिन ये पंडित लोग अपने ज्ञान द्वारा जनता का कुछ भला करते यह तो उनसे हुआ ही नहीं अपितु उन्होंने उल्टे ही जनता से, जो कुछ लूटना, खसोटना चाहे उसके लिये वे चूके नहीं। दूसरी ओर इन्हें शास्त्रों पर पूर्णतः अधिकार प्राप्त नहीं था क्योंकि ये धर्म-शास्त्रों के ऊपरी, बाह्य शाब्दिक स्वरूप से ही परिचित थे, शास्त्रों का भीतरी रहस्य या आत्मा क्या थी? उस तक ये अपनी पहुँच नहीं बना सके, और बना भी कैसे सकते थे इन्हें बाह्याडम्बरो, पाखण्डों एवं भोली-भाली जनता को लूटने, दिग्भ्रमित करने से अवकाश मिले तब न। अर्थात् इन पंडे, पुजारी, ब्राह्मणों ने समाज में वर्ग वैषम्य की भावना फैलाकर समाज को पूर्णतः विकृत कर रखा था। कबीर ने केवल पंडित, पंडे, ब्राह्मणों का ही नहीं अपितु मुल्लाओं के बाह्याडम्बरो, कुकृत्यों की निर्भीकता के साथ कलाई खोली। इन लोगों को धर्म-ग्रंथों के ज्ञान पर पूरी जानकारी प्राप्त नहीं थी। इन्होंने उनके रहस्यों को नहीं जाना, बल्कि उनका अध्ययन ऐसे ही करते रहे, और लोगों को छलते रहे। आज भी ऐसा देखने को मिल जायेगा कि लोग अब भी बाह्याडम्बरो, भ्रांतियों के शिकार होते हैं और ये पाखण्डी पंडित, मुल्ला ऐसा करने में नहीं चूकते। ऐसे लोगों की करतूतियों का भंडा-फोड़ करते हुये कबीर उन्हें फटकारते हैं-

पढ़ि-पढ़ि पंडित वेद बषाणै।

भीतरि हूति बसत नां जाणै।<sup>57</sup>

महात्मा संत कबीर ने जो कुछ कहा उसे पूर्णतः अनुभव की कसौटी पर कसकर कहा था। उन्होंने पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा आँखों द्वारा देखी हुई वस्तु

पर विश्वास करने पर बल दिया, और वैसे भी जो शास्त्रीय ज्ञान है वह मात्र शिक्षित लोगों तक सीमित रहता है और कबीर कालीन समाज में अधिकांश लोग अशिक्षित ही थे। और जो लोग शिक्षित भी थे वे उसे अपने तक ही सीमित रखते थे और जो लोग उस ज्ञान के बारे में बताते भी थे तो उन्हें उस ज्ञान की भीतरी, रहस्यमयी बातों का पता नहीं था, कुछ लोगों को पता होते हुये भी वे लोगों को वर्गों में विभक्त कर पारस्परिक वर्ग वैषम्य एवं कलह की स्थिति को जन्म देने में लगे थे। इसीलिये इन संतों ने शास्त्रीय ज्ञान को प्रश्रय न देकर स्वानुभूतियों द्वारा अर्जित व्यावहारिक ज्ञान को प्रश्रयता या प्राथमिकता दी। जब तक ये स्वयं किसी बात को अपने ज्ञानरूपी चक्षुओं से होता हुआ नहीं देख लेते थे तब तक ये मूक रहकर उस पर कुछ भी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते थे। इन्होंने जो कुछ, जिस विषय पर कहा उसे अनुभव की तुला पर तौलकर कहा था। कबीर ने भी 'आंखिन देखी' पर ही विश्वास किया न कि 'कागद की लेखी' पर-

तू कहता कागद की लेखी।

मैं कहता हूँ आंखिन देखी॥

मैं कहता सुरझावनहारी।

तू रहता उरझाय रे॥<sup>58</sup>

संत कबीर ने जिन धर्म-ग्रंथों-वेद, पुराण, उपनिषद् शास्त्रादि का जो विरोध किया है उसका अभिप्राय यह नहीं था कि उन्होंने इन धर्म-ग्रंथों या शास्त्रों का खण्डन किया या उनकी निंदा की, बल्कि उन्होंने उनका तो सम्मान किया लेकिन जिन लोगों- ब्राह्मण, पंडित ने उनकी व्याख्या की, जो मूलार्थ से भिन्न थी, जिससे

जनता दिग्भ्रमित और बाह्याडम्बरों के दल-दल में फंसी थी। ऐसे लोगों के पाखण्डों, कुकृत्यों एवं बाह्याडम्बरों पर ही उन्होंने कुठाराघात किया है। उन्होंने वेद, कतेब(कुरान) आदि का सम्मान करते हुये ऐसे लोगों पर वज्रपात किया है जो मिथ्याचारी, पापाचारी, अनाचारी, दुराचारी एवं बात-बात में झूठ बोलने वाले हैं और वे जो कहते हैं उस पर स्वयं विचार नहीं करते। ऐसे लोगों को कबीर ने अपने व्यंग्य वाणों से किस तरह घायल किया है कि उन लोगों का हृदय विदीर्ण हुए बिना नहीं रहता-

*वेद कतेब कहहुमत झूठेइ झूठा जो न बिचारै।<sup>59</sup>*

उपर्युक्त विचार एवं विवेचन के पश्चात हम कबीर को महात्मा गाँधी एवं तमिल कवि तिरुवल्लुवर के विचारों से मिलाते एवं तौलते हुये वर्तमान संदर्भ में उनकी अर्थवत्ता पर प्रकाश डालेंगे। इस संबंध में हम पहले कबीर और गाँधी को लेंगे उसके पश्चात कबीर एवं तिरुवल्लुवर पर तुलनात्मक विवेचन करते हुये कबीर को वर्तमान संदर्भ में देखने का प्रयास करेंगे।

महात्मा गाँधी को राष्ट्रपिता (Father of the nation) कहा जाता है जो आज तक चला आ रहा है। आखिर गाँधी जी के जीवन-दर्शन में ऐसी कौनसी गुणवत्ता थी, क्या विशेषता थी? जिसके कारण आज भी लोग उनसे प्रेरित एवं प्रोत्साहित होकर प्रेरणा लेते हैं और उन्हें अपना आदर्श, पथ-प्रदर्शक मानते हैं। उन्हीं समस्त उपलब्धियों के कारण कबीर को भी स्मरण किया जाता है अतः यहाँ हम दोनों के मध्य विचार करते हुये इनके जीवनानुभवों पर तुलनात्मक दृष्टि से प्रकाश डालेंगे-

### समाज सुधार की भावना

कबीर के अनुसार व्यक्ति को सदाचरणशील और गुणवान होना चाहिए जिससे वह समाज में अपने इन गुणों के कारण समाज को परिष्कृत एवं परिमार्जित कर सके। जिस प्रकार चंदन का वृक्ष अपने पास स्थिर आक और पलाश के पेड़ों को अपने जैसा कर देता है अर्थात् उन्हें भी अपने गुणों से आप्लावित कर देता है-

*कबीर चंदन का बिड़ा, बैठ्या आक पलास।*

*आप सरीखे करि लिए, जे होते उन पास।<sup>60</sup>*

कबीर की ही भाँति गाँधी जी भी यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्तिगत आचरण का समाज पर प्रभाव होता ही है। गाँधी जी के शब्दों में-

“व्यक्तिगत आचरण और सामाजिक आचरण में कोई विरोध नहीं है। सदाचार का नियम दोनों पर लागू है।”<sup>61</sup>

समाज में एकता को प्रतिष्ठित करने वाला और समाज के विकास के लिये अपना सर्वस्व उत्सर्ग करने वाला व्यक्ति ही व्यक्ति है। कबीर ने तो अपने घर-परिवार सब को इसके लिये त्याग दिया, उन्होंने अपनी ही भाँति अपने सर्वस्व को त्यागने और समाज को उन्नयन एवं उन्नति प्रदान करने के लिये अनेक लोगों को प्रेरित एवं प्रोत्साहित करते हुये उन लोगों को आह्वान किया-

*हम घर जाल्या आपणां लिया मुराड़ा हाथि।*

*अब घर जालौं तासु का, जे चलै हमारे साथि।<sup>62</sup>*

कबीर का मानना था कि समाज में समस्त मनुष्य समान हैं न कोई ऊंचा है न कोई नीचा, अपितु सभी सम्मान के पात्र हैं। हम सभी में एक ही तत्व

की प्रधानता है अतः एक-दूसरे के प्रति किसी के मन में मतभेद या वर्ग वैषम्य की भावना नहीं होनी चाहिए। हम सभी को आत्मदर्शी एवं सर्वात्मवादी होना चाहिए। महात्मा संत कबीर ने तो स्त्री-पुरुष तक में भी किसी को न ऊंचा कहा न किसी को नीचा बल्कि स्त्री या पुरुष ये सब मनुष्य के ही दो रूप हैं। कबीर कहते हैं-

एते औरत मरदां साजे, ये सब रूप तुमारे।

कबीर पूँगरा राम अलह का, सब गुरु पीर हमारे।<sup>64</sup>

कबीर ने बताया कि समस्त मनुष्य एक ही गर्भ में से निकलते हैं तब फिर कौन कहाँ से ब्राह्मण और शूद्र हो गया?— गर्भ के अंदर न तो कोई जाति ही है और न कुल, सभी एक ही ज्योति से (ब्रह्म बिन्दु से) निकले हैं—

गर्भ बास में कुल नहिं जाती।

ब्रह्म बिन्दु से सब उतपाती।<sup>65</sup>

कबीर ने समाज में फैले हुये वर्ग वैषम्य एवं पारस्परिक मतभेदों को समूलतः नष्ट करते हुए न किसी को उच्च बताया और न किसी को हीन। अपितु उन्होंने एक अल्लाह के नूर(ज्योति) से सबको उत्पन्न मानते हुए स्पष्ट कहा-

अव्वल अल्लह नूर उपाया, कुदरत के सब बंदे।

एक नूर ते सब जन उपज्या, कौन भले कौन मंदे।<sup>66</sup>

महात्मा गाँधी जी ने बिलकुल हूबहू कबीर की भाँति अपने शब्दों में उन्हीं विचारों को इस तरह व्यक्त किया- “ईश्वर के सामने सब मनुष्य समान हैं। किसी आदमी को इसलिये तिरस्कार से देखना कि वह सहधर्मी नहीं है, ईश्वर और मनुष्य के समाने पाप है।”<sup>67</sup>



कबीर के अनुसार व्यक्ति निस्पृहणीय, अहंकारहीन, निस्संगी, निर्विषयी एवं संतवत होना चाहिए-

*निरबैरी निहः काँमता, साँई सेती नेह।*

*विषिया सँ न्यारा रहै, संतन का अंग एह।।<sup>68</sup>*

ठीक उसी तरह कबीर से भाव साम्य रखते हुये गाँधी जी ने कहा-  
“जिसके अहंकार का सर्वथा नाश हुआ है, वह साक्षात् सत्य बन जाता है। उसे ब्रह्म कहने में भी बाधा नहीं हो सकती।”<sup>69</sup>

### नारी के प्रति दृष्टि

स्त्री-पुरुष में चारित्र्य की दृष्टि से स्त्री का स्थान ज्यादा ऊँचा माना जाता है क्योंकि वह त्याग, मूक तपस्या, नम्रता, श्रद्धा और प्रेम की प्रतीक होती है। कबीर ने समाज को दूषित करने वाली भ्रष्ट नारी की घोर निंदा की है जिसके कारण उन्हें नारी निंदक माना जाता है लेकिन उन्होंने नारी के उस रूप की भी प्रशंसा की जो अपने प्रियतम पति के अतिरिक्त किसी अन्य की ओर उन्मुख होना नहीं चाहती बल्कि उसके नेत्रों में तो केवल अपने पति का ही बिंब सदैव बना रहता है तो फिर उन नेत्रों में किसी अन्य का बिंब भला कैसे बन सकता है? कबीर कहते हैं-

*कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।*

*नैँ नूँ रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ।।<sup>70</sup>*

महात्मा गाँधी ने भी स्त्री को पुरुष की अपेक्षा अधिक गुणवान और चारित्रिक माना है वे कहते हैं- “स्त्री पुरुष में चारित्र्य की दृष्टि से स्त्री का आसन ज्यादा ऊँचा है, क्योंकि आज भी वह त्याग, मूक-तपस्या, नम्रता,, श्रद्धा और ज्ञान

का प्रतीक है।”<sup>71</sup>

### विद्यार्थी समाज

मानव समाज में विद्यार्थी जीवन की अपनी महत्ता है। यही विद्यार्थी भावी नागरिक, भावी समाजसेवी एवं भावी देशभक्त बनता है। वह समाज की आधारशिला है। आधुनिक युग की शिक्षा-पद्धति ने तो विद्यार्थी एवं शिक्षक के आदर्श एवं निश्चल स्वरूप को धूल-धूसरित ही कर डाला है। प्राचीन समय की शिक्षा-पद्धति में शिक्षा का आदर्श यह था कि विद्यार्थी में आध्यात्मिक एवं मानवीय गुणों का विकास किया जाता था। गुरु-शिष्य संबंध को समस्त संबंधों में उच्च, सर्वोत्तम एवं पवित्रतम माना जाता था। महात्मा कबीर का समय भी गुरु-शिष्य के पवित्रतम संबंध पर आधारित था। शिष्य अपने गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा एवं अनन्यनिष्ठा का भाव अपने हृदय में रखता था-

*सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।*

*लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावड़हार।।<sup>72</sup>*

जहाँ कबीर ने गुरु को श्रद्धायुक्त वचनों से विभूषित किया है वहीं पथभ्रष्ट और पाखण्डी गुरु की घोर निंदा करते हुये शिष्य को सचेत किया है कि यदि वह उसके निकट जायेगा तो वह भी पतनोन्मुखी होगा-

*जाका गुरु भी अंधला, चेला निरा निरंध।*

*अंधहिं अंधा ठेलियाँ, दून्यँ कूप पड़ंत।।<sup>73</sup>*

जो गुरु सर्वगुण संपन्न, सहजशील एवं आध्यात्मिकता से परिपूर्ण है उसे कबीर ब्रह्मवत् मानते हैं-

गुरु गोविन्द तौ एक है, दूजा यहु आकार।

आपा मेट जीवत मरै, तो पाबे करतार।।<sup>74</sup>

कबीर सात्विक गुरु की प्राप्ति के लिये शिष्य को अपना सर्वस्व अर्पित कर देना चाहिए की ओर संकेत करते हुए कहते हैं-

मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सौ तेरा।

तेरा तुझको सौंपता, क्या लागे है मेरा।।<sup>75</sup>

महात्मा गाँधी जी ने भी गुरु तथा शिष्य के संबंध पर जो विचार किया है वह कबीर से मिलता जुलता है। गाँधी जी का मानना है कि शिक्षक को स्वयं आदर्शवान एवं चरित्रवान होना चाहिए तभी वह शिक्षार्थी (विद्यार्थी, शिष्य) में समुचित गुणों को भर सकता है। शिक्षक का बाह्य तथा आभ्यांतर एक समान होने चाहिए और उसकी कथनी करनी में सामंजस्य होना अत्यावश्यक है। उन्हीं के शब्दों में-

“वह शिक्षक (गुरु) आभागा है जो मुख से एक बात पढ़ाता है और हृदय में दूसरी ही रखता है।”<sup>76</sup>

उनका मानना था के शिक्षा का लक्ष्य है विद्यार्थियों में दिव्य गुणों का विकास करना। वे कहते हैं- “शिक्षा से मेरा अभिप्राय यह है कि बच्चे और मनुष्य के बीच शरीर, बुद्धि और आत्मा के सभी उत्तम गुणों को प्रकट किया जाय।”<sup>77</sup> आगे कहते हैं- “सच्ची शिक्षा का काम शिक्षा पाने वाले लड़के-लड़कियों के उत्तम गुणों को बाहर लाना है।”<sup>78</sup> गाँधी जी विद्यार्थी को कर्तव्यवान, संयमी, पवित्र एवं शौर्य से युक्त होना चाहिए की अपेक्षा करते हुए कहते हैं- “शूरवीर लड़का हमेशा अपना मन पवित्र रखेगा, अपनी आँखें पवित्र रखेगा और अपने हाथ पवित्र रखेगा। जीवन

के इन बुनियादी उसूलों को सीखने के लिए तुम्हें किसी स्कूल में जाने की आवश्यकता नहीं।”<sup>79</sup>

### साम्प्रदायिक एकता के प्रति दृष्टिकोण

साम्प्रदायिक वैमनस्य से समाज की स्थिति एवं प्रगति का सदैव ही भय बना रहता है। साम्प्रदायिक विशेष के कारण पारस्परिक कलह, उपद्रवों का सृजन होता है। कभी-कभी तो इसके कारण विनाशकारी कृत्य हो जाते हैं जिससे जन-धन की अपार हानि होती है।

कबीर ने साम्प्रदायिक एकता लाने का अथक प्रयत्न किया। वे हिन्दू और मुसलमानों को एक जुट करना चाहते थे परन्तु लोग उनकी सुनते कहाँ थे तब फिर कबीर उनकी इस करतूती की किस तरह निंदा करते हैं-

एक निरंजन अलह मेरा, हिन्दू तुरक दहू नहीं नेरा।

राखूँ ब्रत न मरहम जानाँ, तिसही सुमिरूँ जो रहै निदाना।

पूजा करूँ न निमाज गुजारूँ, एक निराकर हिरदै नमसकारूँ।

नाँ हज जाँऊँ न तीरथ पूजा, एक पिछाँण्या तौ का दूजा।

कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सँ मन लागा।।<sup>80</sup>

कबीर की भाँति गाँधी जी भी समस्त धर्मों का सम्मान कर सभी संप्रदायों को एक भावनात्मक सूत्र में बाँधने और पिरोने का भरसक प्रयास करते हुए कहते हैं- “सभी मज़हब अच्छे हैं। विश्वास रखें जितने भी धर्म हैं, सबके सब ऊँचे हैं। धर्म में कसर नहीं है। कसर है तो उनके आदमियों में।”<sup>81</sup>

### दरिद्रनारायण सेवा

जिस समाज में आर्थिक विषमता, धनी और निर्धन के मध्य भेदभाव पनपने लगेगा, वह समाज निश्चय ही पतनोन्मुखी होता चला जायेगा। कबीर के समय में समाज का आर्थिक ढांचा इसी तरह था-

सातो सबद जु बाजते, घरि-घरि होते राग।

ते मंदिर खाली पड़े, पैसणि लागे कागि।।<sup>82</sup>

कबीर ने उन्हीं लोगों को अच्छा कहा है जो दूसरों की सेवा करें और एक ईश्वर पर आस्था रखें-

कहि कबीर अब जानिया संतन रिदै मझारि।

सेवक सो सेवा करै जिहि घट बसै मुरारि।।<sup>83</sup>

इसीलिए डॉ० रामजीलाल सहायक का कहना है “समय की आवश्यकताओं के अनुसार किंचित परिवर्तन के साथ कबीर-दर्शन, गाँधी दर्शन बन गया। दोनों में तात्त्विक भेद था अंतर नहीं है।”<sup>84</sup>

जिस तरह हमने कबीर के जीवन-दर्शन को गाँधी दर्शन में देखने का प्रयास किया उसी तरह कबीर के विचार तमिल कविवर तिरुवल्लुवर से किस तरह मेल खाते हैं इस पर विचार करेंगे-

कबीर ने जिस प्रकार गृहस्थ और विरक्त जीवन दोनों को ही स्वीकार किया है और किसी एक की अधिकता पर जोर नहीं दिया अपितु दोनों में सामंजस्य बैठाने की बात की। न तो व्यक्ति इतना गृहस्थी ही बन जाय कि दिन-रात स्त्री के

फेर में घर ही न छोड़े और न इतना वैरागी हो जाय कि बिल्कुल पाखण्डी, ढोंगी हो जाय। उन्होंने दोनों बातों को स्पष्ट करते हुए कहा-

1. परनारी राता फिरै, चोरी बिढ़ता खाँहिं।

दिवस चारि सरसा रहै, अंति समूला जाँहि।<sup>85</sup>

2. कैसौं कहा बिगाड़िया, जे मूँड़ै सौ बार।

मन कौं न काहे मूँड़िये, जामै विषै बिकार।<sup>86</sup>

उसी प्रकार कविवर तिरुवल्लुवर कहते हैं- गृहस्थ ही धर्म का पूर्णरूप है।<sup>87</sup> गृहस्थ की तुलना स्वर्ग के देवता के साथ की गई है।<sup>88</sup> जो गृहस्थ को छोड़कर तपस्वी बनना चाहते हैं लेकिन पाखण्डी ही बन जाते हैं उनसे कविवर तिरुवल्लुवर कहते हैं कि वे सत्यगामी और सदाचार का पालन करें। उन्होंने तपस्वी, सन्यासी, वेशधारी मनुष्यों का उल्लेख किया है। सन्यासी के प्रमुख लक्ष्यों में 'स्व' का ज्ञान प्राप्त करना।<sup>89</sup> कामना का नियंत्रण करना।<sup>90</sup> 'मैं' और 'मेरा' के अहंकार का दमन करना<sup>91</sup> तथा बंधन मुक्त होकर भव से मुक्ति प्राप्त करना था।<sup>92</sup>

इस प्रकार से कबीर को वर्तमान संदर्भ में पूर्णतः समीचीन और प्रासंगिक कहा जा सकता है। इनका काव्य केवल तिरुवल्लुवर या गाँधी जी से ही मेल खाये इतना ही नहीं बल्कि कबीर के काव्य ने बहुत से चिंतकों एवं साहित्यिकारों को प्रोत्साहित एवं प्रेरित किया है जिनमें गाँधी, टैगोर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, माखन लाल चतुर्वेदी, मैथिली शरण गुप्त, निराला, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध हैं।

## संदर्भ:-

1. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 161-162
2. वही पृ० 34
3. वही पृ० 34
4. वही पृ० 34
5. वही पृ० 34
6. वही पृ० 186
7. सं० पारसनाथ तिवारी, कबीर ग्रंथावली, पृ० 109
8. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ०, 34
9. सं० डॉ० रामकुमार वर्मा, संत कबीर, पृ० 211
10. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 35
11. वही पृ० 36
12. वही पृ० 38
13. वही पृ० 28
14. वही पृ० 28
15. वही पृ० 51
16. वही पृ० 30
17. संतबानी संग्रह(कबीर), भाग-1, पृ० 47
18. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं० पृ० 29
19. सं० परशुराम चतुर्वेदी, संतकाव्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीय संस्करण, संवत् 2007, पृ० 241
20. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क० ग्रं०, पृ० 30
21. वही पृ० 30
22. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० 191
23. संत बानी संग्रह(कबीर), भाग-1, पृ० 33
24. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 83
25. अनु० परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, पृ० 15
26. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 82
27. वही पृ० 82
28. सं० डॉ० कामता कमलेश, डॉ० रामकिशोर शर्मा, हिन्दी अनुशीलन, संयुक्तांक मार्च, जून,

सितम्बर, दिसम्बर 1999 अंक 1,2,3,4 वर्ष 41, भारतीय हिन्दी परिषद, इलाहाबाद, पृ० 121

29. सं० डॉ० श्यामसुन्दरदास, क०ग्रं०, पृ० 82
30. वही पृ० 83
31. वही पृ० 5
32. वही पृ० 5
33. वही पृ० 5
34. वही पृ० 4
35. वही पृ० 4
36. सं० डॉ० एम० फ़ीरोज़ अहमद, वाङ्मय, अप्रैल-जून(2005) वर्ष-2 अंक-5, ई-3, अब्दुल्लाह क्वाटर्स, लालबहादुर शास्त्री मार्ग, अमीर निंशा, अलीगढ़, पृ० 82
37. सं० डॉ० श्यामसुन्दरदास, क०ग्रं०, पृ० 29
38. सं० डॉ० कामता कमलेश, डॉ० रामकिशोर शर्मा, हिन्दी-अनुशीलन, संयुक्तांक मार्च, जून, सितम्बर, दिसम्बर(1999) अंक 1,2,3,4 वर्ष 41, भारतीय हिन्दी परिषद, इलाहाबाद, पृ० 106
39. सं० डॉ० श्यामसुन्दरदास, क०ग्रं०, पृ० 35
40. वही पृ० 243
41. वही पृ० 35
42. वही पृ० 35
43. अनु० परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, पृ० 221
44. सं० डॉ० श्यामसुन्दरदास, क०ग्रं०, पृ० 11
45. बीजक शब्द, 109
46. सं० डॉ० श्यामसुन्दरदास, क०ग्रं०, पृ० 169
47. संतसुधाकर, रैदास, खण्ड-1, पृ० 197
48. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० 111
49. डॉ० मोतीसिंह, निर्गुण साहित्य, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, ना०प्र० सभा, वाराणसी, 2019 वि०, पृ० 112
50. संत सुधासार, खण्ड-1, पृ० 21
51. सं० डॉ० विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, शोध प्रबंध नागपुर विश्वविद्यालय, 1957, पृ० 133
52. सं० डॉ० श्यामसुन्दरदास, क०ग्रं०, पृ० 83



53. सं० पारसनाथ तिवारी, क०ग्रं०, पृ० 111
54. कबीर ज्ञान गूदड़ी, पृ० 16
55. सं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', कबीर वचनाकली, पृ० 139
56. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 28
57. वही पृ० 65
58. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० 324
59. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 248
60. वही पृ० 39
61. मेरे सपनों का भारत, पृ० 14
62. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 53
63. बापू के आशीर्वाद, रामनाथ सुमन, गाँधी जी सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, पृ० 225
64. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 203
65. वही पृ० 214
66. वही पृ० 203
67. दिल्ली डायरी-1, गाँधी जी, रामजी भाई पटेल, अहमदाबाद, पृ० 216
68. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 39
69. बापू के पत्र, बजाज परिवार के नाम, गाँधी जी सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, पृ० 27
70. सं० श्यामसुंदरदास-क०ग्रं० पृ० 14
71. स्त्रियों की समस्याएँ, गाँधी जी सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, पृ० 9
72. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 1
73. वही पृ० 2
74. वही पृ० 3
75. वही पृ० 14
76. विद्यार्थियों से, गाँधी जी सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, पृ० 17
77. सर्वोदय, गाँधी जी, अमृतलाल नागावटी, न०प्र०, पृ० 292
78. मेरे सपनों का भारत, गाँधी जी, सं० आर०के० प्रभु, न०प्र०, पृ० 207
79. विप गाँधी इन सीलोन, गाँधी जी सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली, पृ० 109
80. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 152

- 
81. प्रार्थना प्रवचन, भाग प्रथम, गाँधी जी सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, पृ० 63
  82. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 16
  83. वही पृ० 253
  84. डॉ० रामजीलाल सहायक, महात्मा कबीर एवं महात्मा गाँधी के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन, (आमुख से)
  85. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 30
  86. वही पृ० 36
  87. कुरल पृ० 49
  88. वही पृ० 50
  89. वही पृ० 268
  90. वही पृ० 343
  91. वही पृ० 346
  92. वही पृ० 349

## पंचम अध्यायः

भावी जीवन के निर्माण में कबीर के काव्य की  
प्रासंगिकताः

## भावी जीवन के निर्माण में कबीर के काव्य की प्रासंगिकता:

कबीर के काव्य की प्रासंगिकता को भावी जीवन के निर्माण से अभिप्राय प्रायः यही हो सकता है कि कबीर ने अपने काव्य द्वारा समाज के भावी जीवन का निर्माण कहाँ तक किया है या उनका काव्य कहाँ तक सिद्ध ठहरता है? इससे है। इसे और भी स्पष्ट करें तो कह सकते हैं कि क्या कबीर का काव्य अपने तद्युगीन परिवेश तक ही सीमित एवं संकुचित था या उसमें अपने युग को लांघने या युग को अतिक्रमित करने की विलक्षण प्रतिभा एवं क्षमता थी? उन्होंने समाज में जिन मानदण्डों एवं आदर्शों को प्रतिष्ठित किया था वे आज के समय में और इससे आगे आने वाले भावी समय में समाज पर लागू हो सकेंगे? क्या लोग उनके इन मानदण्डों को स्वीकृति प्रदान कर सकेंगे? या उनसे प्रोत्साहित एवं प्रेरित होने को उन्मुख हो सकेंगे? कबीर ने अपने काव्य की रस-गगरी से समाज को कहाँ तक सींचा है? या सींचकर उसे यौं ही बिना पुष्पित एवं पल्लवित होने से पूर्व ही छोड़ दिया है? ये समस्त प्रश्न हमारे समक्ष आ खड़े उस समय होते हैं जब हम उनको भावी जीवन के निर्माणकर्ता के रूप में देखने की चेष्टा करते हैं।

काव्य या साहित्य भावी जीवन के लिये तभी निर्माणकारी सहायक एवं सिद्ध होता है जब वह समाज का पोषक हो, विशृंखलित एवं असंगठित समाज को एक सूत्रता के धागे में पिरोये, पतनोन्मुखी समाज को प्रगति-पथ पर लाने का प्रयास करे, परंपराओं एवं रूढ़ियों से प्रतिशोध लेकर समाज को परिष्कृत, परिमार्जित कर आलोक्ति करे।

काव्य जब एक नये युग का सूत्रपात करता है तब वह विध्वंसक एवं निर्मायक भी हो सकता है। विध्वंसक उसी समय होता है जब ऐसे समाज में व्याप्त कुरीतियों, असंगतियों, पापाचारों, अनाचारों से निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। कबीर के काव्य में इसलिये क्रांतिकारिता के स्वर गुंजायमान होते प्रतीत होते हैं। इस तरह क्रांति करने से भी समाज का नवीन निर्माण होता है अर्थात् क्रांति करने के लिये भी साहित्यकार को विवश होना पड़ता है।

साधारणतः साहित्य (काव्य) समाज का साक्षात् बिम्ब प्रस्तुत करता है, वह कौमों, समुदायों को जगाता है, सुलाता नहीं है और लोगों के भीतर नूतन जीवनानुभवों का संचार करता है। प्रेमचन्द कहते हैं “जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हम में शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौंदर्य-प्रेम न जाग्रत हो- जो हम में सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे वह आज हमारे लिये बेकार है। वह साहित्य कहाने का अधिकारी नहीं”<sup>1</sup> आगे कहते हैं “हमारी कसौटी पर वह साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो- जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे सुलाये नहीं।”<sup>2</sup>

यही कारण है कि मार्क्सवादी विचारक भी साहित्य की प्रभावक्षमता को स्वीकृत कर सामाजिक पुनर्निर्माण हेतु साहित्यकार को अपने साथ लेकर चलते हैं। साहित्य पुनर्निर्माण का औजार बन सके और सामाजिक परिवर्तन की तीव्र गति के बीच संतुलन स्थापित करने में सहायक बना रहे मार्क्सवादी विचारक सदैव से इस ओर प्रयत्नरत रहे हैं। रैल्फ फॉक्स का कहना है कि “अन्य सब कलाकारों की तुलना

में लेखक ही अपने देश को अधिक व्यक्त करता है।”<sup>3</sup> यही नहीं वे कहते हैं कि “कोई उपन्यासकार इस दुनिया की समस्याओं से, जिसमें कि वह रहता है, बेखबर रह सकता है?..... क्या वह अपने देश की स्थिति की ओर से अपनी आँखें मूँद सकता है? क्या उस समय अपना मुँह बंद रख सकता है जबकि चारों ओर विभीषिका मंडरा रही हो”.....<sup>4</sup>

एक विचारक व राजनीतिज्ञ की भाँति साहित्यकार भी समाज को पुनर्गठित कर उसे पुनः निर्मित करने में अभिरुचि लेता है। साहित्य के क्षेत्र में मैक्सिम गोर्की की वैसी ही महत्वपूर्ण भूमिका थी जिस तरह राजनीतिक क्षेत्र में लेनिन की। हमारे यहाँ भी प्रेमचंद सामाजिक चेतना को संगठित करने में अग्रणी रहे। आज़ादी का सही अर्थ और समाज-श्रेणी एवं वर्ग रचना तथा उनके हित-विरोध समझने के विषय में अपने तत्कालीन नेतों से भी आगे बढ़ते हुये दिखाई पड़ते हैं। तुलसी का लोकनायकत्व उनके काव्य में निहित समाज-हित भावना के कारण ही असंदिग्ध है।

यदि साहित्य के पाठक हैं और पाठकों में वह रुचि उत्पन्न करता है तथा वह साधारण जन को सुलभ होता है तो वह व्यापक रूप से जनमानस को प्रभावित करता है। साहित्यकार स्वयं संघर्षशील रहकर जन चेतना को उभारता है, विस्तार करता है तथा समाज को संगठित करता है। उपेन्द्रनाथ अशक कहते हैं “मैं खुद संघर्षरत जनता में हूँ और उसी के बारे में लिखता हूँ। इसलिये मैं अपने सारे साहित्य को जनवादी समझता हूँ”<sup>5</sup> वास्तव में यदि लेखक जनमानस के निकट है तो उसकी प्रभाव क्षमता निश्चय ही प्रबल होगी और वह साहित्य के माध्यम से युग निर्माण करने में भी सहायक रहेगा। जनसामान्य से दूर रहकर एकांत में लिखने वाले

साहित्यकार विश्वसनीय एवं विश्वजनीन नहीं कहे जा सकते। विश्वसनीय स्रष्टा साहित्यकार तो जनता के बीच रहकर संघर्ष करता है, लिखता है जनता का नेतृत्व करता है तथा अपने भावों, विचारों को काव्य में परिणत कर जनता के मध्य एक नव्य ज्योति प्रज्वलित करता है तभी वह युग स्रष्टा का पदाधिकारी होता है।

युगांतकारी साहित्यकार का साहित्य किसी निश्चित संकुचित सीमित घेरे में कैद नहीं रहता बल्कि उसका फलक असीम व्यापक होता है। उसका साहित्य किसी एक भाषा का न होकर विश्व साहित्य हो जाता है, वह विश्वदर्शन हो जाता है। जब वह लिखता है तो अपने समाज के बारे में लेकिन वह हो जाता है विश्व समाज का। ऐसा साहित्य जो युगांतकारी हो वह निश्चित ही भावी जीवन के निर्माण में पूर्णतः सफल, सार्थक एवं प्रासंगिक होगा। कबीर का साहित्य (काव्य) अपने रचनायुगीन संदर्भों में तो सार्थक था ही वह वर्तमान में और कहे कि समसामयिक जीवन संदर्भों में ही प्रासंगिक हो ऐसा नहीं है बल्कि वह इससे भी आगे भावी जीवन को पूर्णतः आलोकित करता रहेगा इसमें संदेह नहीं होना चाहिये। जो समस्यायें कबीर के समय में थीं वे समसामयिक भी हैं और आज भी विद्यमान हैं और भविष्य में भी रहेंगी केवल समय के बदलने से उनके स्वरूप एवं रचना में अंतर आता है। जैसे हिन्दू व मुस्लिम के मध्य वैमनस्यता की भावना कबीर के समय में भी थी और वह आज भी है। दोनों ही अपने-अपने को श्रेष्ठ सझमते हैं जिससे सांप्रदायिकता पनपती है। यह सांप्रदायिकता नाम कबीर के काव्य में कहीं देखने को नहीं मिलता। यह जो नाम दिया गया है वह समय के परिवर्तन स्वरूप दिया गया है। अर्थात् समस्यायें अपने यथावत रूप में रहती हैं, समयानुसार उनकी रूप संरचना {हिन्दू-मुस्लिम में वैमनस्य की भावना

(सांप्रदायिकता)) में बदलाव आता है।

साहित्य भावी जीवन के निर्माण में किस प्रकार सहायक है? इस पर विचार करते समय कुछ महत्वपूर्ण पक्ष उभरकर सामने आते हैं—

- \* काव्य-सृजन के प्रति साहित्यकार की मूल-प्रेरणा क्या रही है? उसका उद्देश्य एवं संदेश क्या है?
- \* काव्य किस कोटि का है? उसने सामाजिक चेतना को किस रूप में प्रतिबिंबित किया है?
- \* काव्य ने किसी नवीन विचार धारा को जन्म दिया? सामाजिक चेतना को संगठित करने में क्या योगदान दिया? काव्य ने किस प्रकार नेतृत्व का सृजन किया?
- \* काव्य में सामाजिक समस्याओं, विसंगतियों और विकृतियों के विश्लेषण का ही प्राबल्य रहा या उसने निराशा के होते हुये भी समाज को नई दिशा देने का प्रयास भी किया।

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में काव्य (साहित्य) की भूमिका एवं योगदान के मूल्यांकन हेतु कुछ प्रमुख दिशाओं को निर्धारित किया जा सकता है—

- \* सामाजिक पुनर्जागरण।
- \* मानव एवं युग के व्यक्तित्व का निर्माण।
- \* राष्ट्रीय एकीकरण में योग।
- \* रूढ़ि एवं परंपरागत मूल्यों से संघर्ष कर नवीन मूल्यों की स्थापना।
- \* नवीन आंदोलन का संगठन, नेतृत्व एवं स्वस्थ जनमत का निर्माण।



- \* समाज को परिवर्तित कर गतिशील बनाना।
- \* लक्ष्योन्मुखी प्रेरणा प्रदान करना।
- \* सामंजस्य हेतु परिस्थितियों का निर्माण करना।

उपर्युक्त इन बिंदुओं पर विचार करें तो कबीर का काव्य पूर्णतः खरा उतरता है जो भावी जीवन के निर्माण में सहायक सिद्ध होता है।

### सामाजिक पुनर्जागरणः

कबीर कालीन समाज अंधविश्वासों रूढ़ियों से आप्लावित था। वह समय दो संस्कृतियों एवं दो धर्मों तथा सभ्यताओं के संघर्ष का था। दोनों के मध्य टकराव, भेदभाव, झगड़े की स्थिति बनी हुई थी। इसलिये कबीर उन्हें एकता के सूत्र में बाँधकर भाई-चारे के साथ देखना चाहते थे। कबीर ने लोगों को सचेत किया कि तुमने मानवरूपी जो चोला धारण किया है यह बहुत ही कीमती है, तुम्हें इसका सही ढंग से उपयोग कर ईश्वर की उपासना करनी चाहिये अन्यथा यह घड़े की तरह ढबका (मृत्यु) लगते ही फूट जायेगा--

यह तन काचा कुंभ है, लिया फिरे था साथि।

ढबका लागा फूटि गया, कछू न आया हाथि।।<sup>६</sup>

कबीर लोगों को सचेत करते हुये ऐसे लोगों की तरफ से बचने के लिये कहते हैं जो पाखण्डी हैं, साधू, सन्यासी का वेश धारण करके लोगों को छलते हैं, भ्रम फैलाते हैं लेकिन उनका अंतःकरण नहीं शुद्ध होता जो सिर के कंशों को मुड़ाकर साधू, सन्यासी कहाते फिरते हैं परन्तु भला इससे क्या होता है चाहे एक बार मुंडन करा लो या सौ बार जब तक ऐसे लोग मन को मोड़ने या उसे परिष्कृत, परिमार्जित

नहीं कर लेते तब तक उनके ये आडम्बर बेकार हैं कबीर ऐसे लोगों से सचेत रहने के लिये लोगों को संबोधित करते हैं-

कैसेँ कहा बिगाड़िया, जे मूँड़े सौ बार।

मन को न काहे मूँड़िये, जामै विषै बिकार।।<sup>7</sup>

### युग एवं मानव व्यक्तित्व का निर्मायक

साहित्य का प्रयोजन मात्र आजीविका ही नहीं बल्कि उसमें युग निर्माण और विचार नेतृत्व की क्षमता भी होती है। इतना ही नहीं वह व्यक्ति का सर्वांगीण विकास भी करता है। डॉ० रांगेय राघव कहते हैं, “साहित्य का उद्देश्य व्यक्ति का विकास है और व्यक्ति का असली विकास उसके समस्त वातावरण का विकास है इसी को जन कल्याण की भावना कहते हैं”।<sup>8</sup>

कबीर का काव्य केवल मानव-व्यक्तित्व को निर्मित करता हो ऐसा नहीं अपितु वह एक समूचे युग का निर्माण एवं नेतृत्व करता है। कबीर के काव्य में युग मूर्तमान रहता है और साथ में युग निर्माण की क्षमता भी। साहित्य की आत्मा यथार्थ है और यथार्थ की आत्मा संघर्ष में निहित होती है। कबीर ने अपने समय और समाज से संघर्ष कर आगामी युग की सर्जनात्मक आशा-अकांक्षाओं को साकार रूप देने के साथ-साथ मानव जीवन का जीवंत चित्र प्रस्तुत कर दिया है जो सर्वथा समीचीनी बना रहेगा। उन्होंने मानव-मानव में अभेद स्थापित कर समतामूलक समाज की आकांक्षा का स्वप्न देखा वे मनुष्य को जाति, कुल, मान मर्यादा के बल पर बड़ा नहीं बताते अपितु उसको कर्म के आधार पर छोटा, बड़ा सिद्ध करते हैं-

ऊँचे कुल का जनमियाँ, जे करणी ऊँच न होइ।

सोवन कलस सुरे भरया, साधुँ निंदा सोइ।।<sup>9</sup>

### राष्ट्रीय एकीकरण में योग

राष्ट्रीय एकता लाने के लिये व्यापक फलक पर भावनात्मक एकीकरण स्थापित करना होगा, तभी वह राष्ट्र, देश की एकता और अखण्डता का परिचायक बन सकता है। भावनात्मक एकीकरण भिन्न-भिन्न संप्रदायों, विचारों के बीच भिन्नता में एकता एवं समरूपता की भावना को विकसित कर परस्पर सद्भाव, सहानुभूति एवं एकरसता में सहायक होता है। अनेक सामाजिक समस्याएँ जैसे- जातिवाद, क्षेत्रीयतावाद, सांप्रदायिकता आदि भावनात्मक एकीकरण के विकास से स्वमेव सुलझ जाती हैं। इस दिशा में नेतृत्व, हितकारी संस्थाएँ, राजनीतिज्ञ, समाज सुधारकों आदि के द्वारा सदैव से पहल होती रही है। साहित्य भी इससे अछूता नहीं है, वह भी भाई-चारे एवं मानवतावाद का प्रचार-प्रसार एवं अनेकता में एकता स्थापित करने में सहायक रहा है। भावी जीवन के निर्माण की सफलता एवं विश्व दृष्टिकोण का विकास भी भावनात्मक एकीकरण पर ही निर्भर करता है। डॉ० मुंशीराम शर्मा कहते हैं “साहित्य में सह का भाव विभिन्न तत्वों में सामंजस्य की स्थापना करता है तो हित का भाव उसे सबके लिये उपयोगी भी बनाता है। उसमें अकर्मण्य को कर्मण्य बनाने की शक्ति है।”<sup>10</sup> कबीर ने भी विभिन्न धर्मों एवं संप्रदायों के स्थान पर एक निराकार ब्रह्म की उपासना पर जोर देकर भावनात्मक एकीकरण की ही बात की है जिससे अनेकता में एकता की भावना साकार होती है-

एक बूँद एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा।

एक जोति तै सब उतपत्राँ कौन बामन कौन सूदा।।”

### रूढ़ि एवं परंपराओं से संघर्ष और नवीन मूल्यों की स्थापना

रूढ़िग्रस्त या परंपराप्रसूत विचारधाराओं की अपेक्षा नूतन एवं प्रगतिशील विचारधारायें भी भावी युग के जीवन का निर्माण किया करती हैं। साहित्य जहाँ युगीन विचारणाओं से प्रभावित होता है, वहाँ वह नवीन विचारधाराओं का भी सृजन करता है और उनका प्रचार-प्रसार भी करता है। समाज में विकासशील विचारधाराओं को स्वीकृत करके उन्हें ग्राह्य बनाता है तथा उपादेयता प्रदान करता है कवि का काव्य केवल स्थूल वस्तुओं का प्रतिबिंबन ही नहीं करता अपितु अपने अनुभव से सामाजिक, धार्मिक दार्शनिक एवं नैतिक विचारों को वैश्विक धरातल पर प्रेरणार्थक भी बनाता चलता है। ये विचारधारायें ही नवीन संगठनों एवं आंदोलनों का रूप धारण कर समाज में नूतन जीवन मूल्यों को प्रतिष्ठित करती हैं, काव्य ऐसा करने में सहायक रहता है। इसी संदर्भ में प्रेमचंद कहते हैं “दुनिया में मानव जाति के कल्याण के जितने आंदोलन हुये हैं उन सभी के लिये साहित्य (काव्य) ने ही जमीन तैयार की, बीज भी बोये और उनकी सिचाई भी की।”<sup>12</sup>

कबीर ने अपने समाज में व्याप्त रूढ़िगत विचारधाराओं, परंपराओं को समूल उखाड़ फेंका और उनके स्थान पर अनुभव की कसौटी पर कसी हुई सत्य बातों को निर्भीकता (अनभय) के साथ प्रस्तुत किया। कबीर अपने समाज के लोगों की दुर्दशा देख और भोग रहे थे। उसके कर्ता धर्म-व्यवसायी पाखंडियों से मधुर व्यवहार करने का समय उनके पास नहीं था। जिस प्रकार विवेकानंद अपने समय में सत्यमार्ग

पर चलकर असत्यवादी अधर्मियों को ललकार रहे थे उसी तरह कबीर ने भी अपने समय के पाखण्डी, व्यभिचारी एवं पापचारियों को ललकारा जिसने मानव मानव की एकता में बाधा डाली, वह समाज में कितना बड़ा ही क्यों न हो कबीर और विवेकानंद दोनों ने उसे अस्वीकार किया। विवेकानंद का स्पष्ट मानना था कि स्मृति व पुराण सीमित बुद्धि वाले व्यक्तियों की रचनायें हैं, और भ्रम, प्रमाद, भेद तथा द्वेषभाव से परिपूर्ण हैं। उनके कुछ अंश जिनमें मन की उदारता और प्रेम का आविर्भाव है वे ग्राह्य हैं बाकी सब त्याज्य हैं। इसी प्रकार कबीर ने भी वेद, उपनिषदों आदि शास्त्रों की तीव्र एवं कटु आलोचना करते हुये कहा-

मन रे सर्यौ न एकौ काजा; ताथै भज्यौ न जगपति राजा॥

वेद पुराँन सुमृत गुन पढ़ि पढ़ि गुनि भरम न पावा।

संध्या गायत्री अरू षठ करमाँ, तिन थैं दूरि बताबा॥<sup>13</sup>

हिन्दू धर्म में प्रायः यह परंपरा प्रचलित है कि मथुरा, द्वारिकाधीश काशी इत्यादि तीर्थस्थलों पर जाकर अपने पापों एवं कुकर्मों से मुक्ति मिल जाती है लेकिन कबीर ने मन में ही इन समस्त तीर्थस्थलों को बताया है कि इसे ही नियंत्रित कर स्वयं को परिशोधित कर लो इन सब बाह्याडम्बरों एवं रूढ़ियों में पड़ने की जरूरत नहीं-

मन मथुरा दिल द्वारिका, कावा कासी जाँणि।

दसवाँ द्वारा देहरा, तामैं जोति पिछाँणि॥<sup>14</sup>

### सामाजिक परिवर्तन का वाहक

परिवर्तन समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। समाज में परिवर्तन

स्वाभाविक एवं योजनाबद्ध ढंग से सदैव से होता आया है। साहित्य के माध्यम से भी समाज में परिवर्तन होते हैं अतः समाज में परिवर्तन लाने में साहित्य भी साधन सिद्ध होता है। स्वच्छंद एवं असंगठित समाज को नियंत्रित एवं संगठित कर उसका पुनर्निर्माण किया जाता है जो समाज में परिवर्तन द्वारा ही होता है। साहित्य एवं साहित्यकार जहाँ युग के साथ चलने तथा युग को अभिव्यक्त करने का प्रयास करते हैं वहाँ वे उन कारकों को भी प्रतिबिंबित करने का प्रयत्न करते हैं जो सामाजिक जीवन में परिवर्तन उत्पन्न कर सामाजिक संरचना एवं संबंधों को प्रभावित करते हैं।

साहित्य प्रगति के मार्ग द्वारा ऐसे सामाजिक मानण्डों को निर्धारित करता है जो भविष्य में भी प्रेरणादायक एवं उपयोगी सिद्ध होते हैं। ऐसा करने के लिए साहित्यकार स्वस्थ परिस्थितियों का निर्माण करता है, रचनात्मक प्रवृत्तियों का विकास करता है, अधिकार एवं कर्तव्यों का बोध कराके लोगों में बौद्धिक व विवेकपूर्ण प्रवृत्ति जाग्रत करता है। कबीर का काव्य और कबीर इस दृष्टि से सामाजिक परिवर्तन में सहायक सिद्ध होते हुये दृष्टिगोचर होते हैं।

यूरोप में घटित हुई सन् 1784 ईसवी की फ्रांस-क्रांति के विषय में कहा जाता है कि इस क्रांति ने समाज में स्वतंत्रता, समानता तथा भाई चारे के तत्त्व स्थापित करके मध्ययुगीन यूरोप को आधुनिक युग के प्रवेश द्वार तक पहुँचा दिया जिसका श्रेय रूसो, वाल्टेयर, मांटेस्क्यू, दिदरो आदि दार्शनिकों को प्राप्त हुआ। इन्होंने समाज, राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्था तथा धर्म आदि समस्त सांस्कृतिक परिवेश में रूढ़िगत परंपराओं को ध्वंस करके नव्य-जीवन संस्कृति का श्रीगणेश किया। जबकि इससे लगभग 300 वर्ष पूर्व भारतवर्ष में संत कबीर समाज के प्रत्येक क्षेत्र की प्रचलित

परंपरित रूढ़ियों, मान्यताओं, विकृतियों विडंबनाओं तथा मूल्यहीन विचारों का सशक्त एवं प्रभावशाली शैली में खण्डन तथा विघटन करते हुये, स्वानुभूत सत्य की कसौटी प्रस्तुत करते हुए डंके की चोटपर कहते हैं कि समस्त मानव एक ही नूर (प्रकाश) से उत्पन्न हैं न कोई किसी से श्रेष्ठ है और न कोई नीच एवं निम्न। इस प्रकार कबीर स्वतंत्रता, समानता एवं विश्वबन्धुत्व का संदेश देकर एक नवीन समाज का निर्माण करते हुये दृष्टिगोचर होते हैं-

*अव्वल अल्लह नूर उपाया. कुदरत के सब बंदे।*

*एक नूर ते सब जग उपज्या, कौन भले को मंदे।।<sup>15</sup>*

इस प्रकार कबीर ने अपने समय की विघटनकारी शक्तियों से प्रतिशोध लेकर एक जीवंत समाज की संरचना की, जो भावी जीवन के निर्माण में भी प्रेरणादायी सिद्ध होगी।

### मानव जीवन का उन्नयन

जीवन साहित्य का स्रोत है। जीवन से उद्भासित होकर ही वह विकास एवं उत्थान का आधार ग्रहण करता है साहित्य जीवन का चरम विकास है परंतु उससे बाहर होकर वह शून्य या अस्तित्वहीन हो जाता है उसमें पाचनवृद्धि, गति और पुनरुत्पादन आदि जीवन की समस्त क्रियायें सन्निहित रहती हैं जिससे मनोविकारों का परिष्कार होता है इसलिये ही साहित्य मानवीय चेतना का जनक कहलाता है। साहित्य ही मनुष्य को जीवन में आने वाले उतार-चढ़ाव, संघर्ष तनाव विषम परिस्थितियों से जूझने की क्षमता देता है और उसे मुक्ति पथ पर लाने को अग्रसर भी करता है। कबीर और उनका काव्य इस परिप्रेक्ष्य में खरा उतरता है।

कबीर के समय और समाज में चारों ओर सामाजिक रूढ़ियों, रीति-रिवाजों के प्रकोप का सघन कोहरा आच्छादित था, जिसके कारण जनसामान्य ज्ञान-चक्षुओं से सत्य को नहीं देख पा रहा था। वह जाति पांति, ऊँच, नीच, बाह्याडम्बरों जैसी कुत्सित एवं घृणित विचारधारा वाले वातावरण से जूझ रहा था। कबीर ने ऐसे अत्याचार, अन्याय, उत्पीड़न, शोषण से उबारने, उससे मुक्ति दिलाने के लिये लुकाठी हाथ में लेकर जन-मुक्ति आंदोलन को सफल बनाने के लिये आह्वानित करते हुये कहा-

कबिरा खड़ा बजार में लिये लुकाठी हाथ।

जो घर जालै आपणा, सो चलै हमारे साथ।।

हम घर जाल्या आपणाँ, लिया मुराड़ा हाथि।

अब घर जालौं तासु का, जे चलै हमारे साथि।।<sup>16</sup>

पीछे अब तक हम भावी जीवन के निर्माण में साहित्य की क्या भूमिका होती है, इस पर विचार मंथन करते हुये हमने कबीर के साहित्य को देखने परखने का प्रयास किया। अब हम भावी जीवन के निर्माण में एक साहित्यकार की क्या भूमिका रहती है इस संदर्भ में कबीर को देखने का प्रयास करेंगे

समाज सदैव से गतिमय एवं प्रवाहपूर्ण रहा है। उसमें निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं, जीवन के उतार-चढ़ाव का प्रतिबिंबन होता है और वह समय के सापेक्ष विकसित भी होता रहता है। समाज को विकसित बनाने में मात्र समाजवेत्ता, राजनेता, तकनीशियन आदि का योग रहता है ऐसा नहीं अपितु एक स्वस्थ समाज को निर्मित कर उसे विकास के पथ पर लाने का कार्य साहित्यकार भी करता है। इस बात को



सदैव से स्वीकृत किया गया है एक सर्जक के रूप में वह किसी निर्माता से पीछे नहीं रहता। यही कारण है कि उसे इस दृष्टि से 'प्रजापति', 'कविरेव प्रजापति' की संज्ञा से अलंकृत किया जाता है वह अपनी रचना का निर्माता होता है जिसे वह योजनाबद्ध एवं बौद्धिक साँचे में ढालकर रूपायित करता है जो साधारण जन के वश की बात नहीं है। वह अपनी लेखनी से व्यक्ति और समाज का साक्षात् एवं साकार रूप प्रस्तुत कर देता है। इसीलिये किसी ने ठीक ही कहा है कि 'जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि' ऐसा अद्भुत कौशल किसी-किसी कवि या साहित्यकार में ही पाया जाता है। इसीलिये ऐसे साहित्यकार की रचना की ओर आलोचक, सामाजिक, विज्ञानवेत्ता और सामान्य जन भी आकर्षित होकर उसको हृदयंगम करने की जिज्ञासा प्रकट करते हैं।

साहित्यकार रचना-प्रक्रिया के समय किसी विशेष विचारधारा से बंधित न होकर निरपेक्षतापूर्वक रचना की सृष्टि करता है। एक अनुसंधानकर्ता के रूप में वह अपनी लेखनी से युग को वाणी प्रदान करता है, युग का सृजन करता है जो मानव हित का साधन बनकर समाज में संतुलन बैठाता है। भारत में तुलसी, प्रेमचंद जैसे मनीषी साहित्यकारों ने समाज का नेतृत्व कर विदेशी लोगों को भी अपनी ओर अनायास ही आकृष्ट किया है। कबीर इस धरातल पर किसी विशेष वर्ग के हित की बात न कर समस्त समाज को एक स्वर में बाँधने की बात करते हैं-

कबिरा खड़ा बजार में, माँगे सबकी खैर।

नाँ काहूँ सों दोसती, नाँ काहूँ सों बैर।।

कबीर केवल हित की ही बात नहीं करते बल्कि उन्होंने अपनी अमूक वाणियों से जीवन की समस्याओं, विसंगतियों का विश्लेषण कर उनका समुचित

समाधान भी प्रस्तुत कर दिखाया है, इतना ही नहीं उन्होंने निष्पेक्ष, सुप्त, जड़वत, विस्मृत मनुष्यों में एक बेचैनी जगाकर उन्हें उच्च चिंतन की ओर प्रेरित भी किया है—वे कहते हैं कि मनुष्य सांसारिक मोह माया के वशीभूत होकर, लोभ, लालच स्वार्थ के भुलावे में आकर स्वयं ही अपने जीवन को नष्ट कर लेता है अर्थात् मरने के समय न तो उसके साथ ये सांसारिक सुख-साधन ही जाते हैं और न वह स्वर्ग में स्थान पाने का अधिकारी होता है क्योंकि उसने अपना सर्वस्व जीवन इन्हीं सुख-साधनों के संचयन में ही लगा दिया, आध्यात्मिक कर्मों के लिये उसे अवकाश ही न मिला। तब उस समय उसकी दशा धोबी के कुत्ते की सी हो जाती है जो न घर का ही होता है और न घाट का ही। अर्थात् कबीर मनुष्यों को इस भवसागर से उबरने के लिये और आत्मिक सुखानुभूति के लिये उसे सचेष्ट करते हुये कहते हैं—

दीन गँवाया दुनी सौं, दुनी न चाली साथि।

पाइ कुहाड़ा मारिया, गाफिल अपणै हाथि।<sup>17</sup>

### युगद्रष्टा एवं युगस्रष्टा

युगद्रष्टा एवं युगस्रष्टा—ये दो पदवीं हैं जो हर साहित्यकार को प्राप्त नहीं होतीं। इन्हें वही प्राप्त कर सकता है जिसने अपने समय और समाज को उन्मीलित नेत्रों से जाँचा-परखा हो, जिसने समाज में नूतन क्रांति लाकर स्थापित की हो, जिसने विशृंखलित समाज को व्यवस्थित कर उसे पूर्णतः संगठित करने का प्रयास किया हो, जिसने परंपरित एवं पूर्व प्रचलित मान्यताओं के स्थान पर या उनको परिमार्जित, परिष्कृत कर नवीन मान्यताओं का प्रणयन किया हो। ऐसा साहित्यकार अपने खुले नेत्रों से वैज्ञानिक की भाँति अवलोकन करता है, संकल्पनायें करके अपने बाह्य एवं

आंतरिक व्यक्तित्व के साथ-साथ एक समूचे युग को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इससे गठित, संतुलित, स्वस्थ, समतामूलक इत्यादि आयामों वाले समाज का साक्षात्-साकार रूप प्रतिबिंबित होता है। इस रूप में वह एक द्रष्टा एवं स्रष्टा के रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन करता है। कोन्स्तान्तिन फेदिन के शब्दों में “.....वह केवल लेखक ही नहीं, बल्कि स्रष्टा भी है, एक ऐसा मानव जो अन्य लोगों के साथ जीवन का ताना बना बुनता है, ऐसा आदमी जो अपनी एक निजी घुटी बंद दुनिया का नहीं, अपितु विश्वव्यापी मानव जगत् का निर्माण करता है। न केवल रूस में बल्कि पाश्चात्य देशों में भी, पश्चिम का इतिहास भी ऐसे लेखकों से परिचित है जो सक्रिय कार्यकर्ता थे।”<sup>18</sup> इससे स्पष्ट विदित होता है कि सकल विश्व में ऐसे साहित्यकार पैदा हुये हैं जिन्होंने नये युग का निर्माण करने में अपनी सक्रिय भूमिका का पालन करके युगस्रष्टा एवं युगद्रष्टा जैसी बड़ी पदवियों को पा लिया है। कबीर भी उन्हीं साहित्यकारों की श्रेणी में हैं जो किसी विशेष क्षेत्र, जनपद या देश के संकुचित दायरों में नहीं आते बल्कि उनको वैश्विक धरातल पर स्मरण किया जाता है।

कबीर के अनुयायियों ने कबीर के नाम से ही पंथ स्थापित कर लिये जो कबीरपंथ के नाम से जाने जाते हैं। भारत में कबीर के अनुयायी, गौरखपुर, बलिया, बस्ती, जौनपुर, गौण्डा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, आजमगढ़, प्रतापगढ़, बनारस, देवरिया, पटना, छपरा, आदि में रहते हैं। इतना ही नहीं विदेशों में भी कबीर पंथी पाये जाते हैं जिनका श्रेय भारतीय कबीर पंथियों को दिया जाता है। इसमें श्रमिक लोगों की गणना है। फिजी द्वीप समूह जो प्रशांतमहासागर में स्थित है वहाँ कबीर पंथ कैसे स्थापित हुआ? इसका उल्लेख करते हुये डॉ० कामता कमलेश ने अपनी त्रैमासिक

पत्रिका, 'हिन्दी अनुशीलन' में भारतीय श्रमिकों को ही कबीर पंथ स्थापित करने का श्रेय प्रदान करते हुये कहा है कि "भारत से लगभग सोलह हजार मील दूर स्थित प्रशांत महासागर में फिजी द्वीप समूह में कबीर पंथ का उद्भव उसी दिन हो गया था जब वहाँ प्रथम बार (15 मई 1879 में) भारतीय श्रमिक पहुँचे थे।"<sup>19</sup>

इस तरह हम स्पष्ट समझ सकते हैं कि ऐसे लोगों का साहित्य जो चिरंतन, निरंतर प्रवाहमान होता हुआ अपने नाम पर ऐसे प्रतीकों (स्टेचू, पंथ, समाधि) को संकेतित करता है जिन्हें लोग प्रेरित, प्रभावित होकर स्थापित करते हैं कबीर के अनुयायियों ने भी ऐसा ही किया है इससे अछूते नहीं रहे। कबीर के न होने पर भी लोग उन पर गर्व का अनुभव करते हैं। वस्तुतः ऐसा कबीर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में क्या था? जिसने अनायास ही लोगों को अपनी ओर मोहित एवं आकर्षित कर लिया। उसका उत्तर यही हो सकता है कि कबीर-वाङ्मय किसी काल विशेष या युग-विशेष में परिबद्ध नहीं था प्रत्युत उनकी वाणियों का विशाल एवं विस्तृत सागर अपने अतीत, वर्तमान को भी अतिक्रमित कर देता है और यहाँ आकर वह एक नव्य युग का पुनर्निर्माण करने में अपनी दायमी भूमिका का पालन करता हुआ दिखाई देता है। अतः कबीर को उन्हीं विशिष्टताओं के कारण युग-स्रष्टा एवं युग-द्रष्टा कवि या साहित्यकार नाम से अभिहित किया जाता है। इसीलिये ऐसे साहित्यकारों का साहित्य सदैव जीवंत रहता है। किसी संस्कृत कवि का कथन इस संदर्भ में बहुत ही सटीक है--

*'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः।'*

वस्तुतः कबीर थे ही जन्मजात कविप्रज्ञाशील, मनीषी, चिंतक, स्वयंभू

साहित्यकार।

### सृजनशील चिंतक

साहित्यकार प्रायः एक सृजनशील विचारक होता है। जब समाज में संक्रांति होती है तब वह सत्य को उद्भासित करने के साथ-साथ मानवीय आत्मा को शिल्प के साँचे में ढालकर उसे नव्य-चेतना की ओर उन्मुख करता है। प्राचीन, प्रचलित, परंपरित जीवन के ढर्रे को नूतन दिशा प्रदत्त करता है। उसके सुप्त मस्तिष्क एवं हृदय में अभिलाषायें, स्वप्न, विचार, अन्तर्निहित रहा करते हैं जो छुट-पुट रूप में होते हैं लेकिन जब लेखक देखते-देखते तथा प्रतीक्षा करते-करते संक्रांति समाज से विमुख होने लगता है तब ये समस्त छुट-पुट चिनगारियाँ शोला (ज्वालामुखी) का रूप ले लेती हैं और साहित्यकार केवल उस समय मात्र चिंतन-मनन ही नहीं करता, प्रत्युत अपनी काव्य सृजना द्वारा संक्रांत युक्त समाज को नई धारा में परिणत कर देता है यह बड़े ही साहस की बात है जो कबीर जैसा ही कर सकता है। ऐसे साहित्यकार के प्रति अपना अभिमत प्रस्तुत करते हुये अलेक्सेई तोल्सतोय ने कहा है “मुझमें इच्छायें, सपने, विचार पड़े सोते हैं। सांकल्पिक रूप में नहीं जैसे कि नेता, सेनापति, जीवन निर्माता में होते हैं, बल्कि स्त्रीवत् भावनात्मक सृजनात्मक रूप में। नेता, सेनापति एवं निर्माता क्रियाशील होते हैं, जीवन के ढर्रे को तोड़ते हैं और उनका पुनः निर्माण करते हैं मगर कलाकार प्रतीक्षा और खोज करता है, और फिर अपनी कलाकृतियों में जीवन के ढर्रे का निर्माण करता है।”<sup>20</sup>

वस्तुतः सृजनशील विचारक या चिंतक अपने समय, समाज की परिस्थितियों से बनता है। समाज में जब उसे कुछ भी असंगत, कुत्सित दृष्टिगोचर होने

लगता है उस समय उसकी लेखनी अनायास ही कागज, पत्री पर चलने लगती है। कबीर तो अपने मुख विवर से साक्षात् सत्य उद्घाटित कर देते हैं जिन्हें उनके सहचर लेखनीबद्ध कर लिया करते रहे थे। बाबू गुलाबराय भी ऐसे मनीषी चिंतक एवं साहित्यकार के विषय में अपना जो मत प्रस्तुत करते हैं वह इस बात को और भी स्पष्ट करने में सक्षम रहेगा। वे कहते हैं—

“समाज कवि और लेखकों को बनाता है और लेखक तथा कवि समाज को बनाते हैं। दोनों में आदान-प्रदान तथा क्रिया-प्रतिक्रिया भाव चलता रहता है। यही सामाजिक उन्नति का नियामक सूत्र बनता है”<sup>21</sup>

इस तरह एक सृजनशील चिंतक(Creative thinker) अविकसित, अर्द्धविकसित समाज को पूर्ण्यता बनाने के लिये जो भी प्रयास करता है और कहें कि निरंतर प्रयासरत रहता है तब वह अपने लक्ष्य में निश्चय ही सफलता को प्राप्त कर लेता है। कबीर के साथ कुछ ऐसा ही हुआ।

### समाज सुधारक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण

साधारणतः एक सफल साहित्यकार समाज का हितैषी होता है। समाज को उन्नत एवं ऊर्ध्वगामी बनाने के लिये ही उसके मानस-मस्तिष्क में कल्पनाओं का सागर उमड़ता है इसीलिये उसे कल्पनाशील संज्ञा से अविभूत किया जाता रहा है। समाज को उन्नयन एवं गतिशील बनाने के साथ-साथ साहित्यकार को एक वैज्ञानिक की भाँति समाज और समय को देखने-परखने की चेष्टा भी करनी होती है क्योंकि साहित्यकार की कल्पना कोरी उड़ान ही नहीं हुआ करती अपितु उसका संबंध समाज एवं भूत-पदार्थों से भी होता है। साहित्यकार की कल्पना में विभिन्न जीवन के

स्रोत-यथा-संस्कृति, इतिहास, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक इत्यादि परिस्थितियों का प्रभाव अन्तर्निहित रहता है, जिनका बिंब उसके सृजन में साक्षात्तः दिखाई पड़ता है। साहित्यकार इन समस्त जीवन स्रोतों के आधार पर विविध घटनाओं के कार्य-कारण सूत्रों को अन्वेषित कर उनकी व्याख्या करता है। तभी वह एक समाजसुधारक एवं वैज्ञानिक कहलाने का अधिकारी बनता है। इसीलिये मैक्सिम गोर्की का कहना है “एक साहित्यकार का काम भी वैज्ञानिक के काम के समान होता है और उसे भी अक्सर पर्यवेक्षण द्वारा, प्रस्तुत आधार प्राप्त होने के पहले ही कारण का पता चल जाता है।”<sup>22</sup>

वे आगे कहते हैं कि “विचारों का सृजन धरती पर होता है, वे श्रम की मिट्टी से फूटते हैं और वे पर्यवेक्षण, तुलना तथा अध्ययन की सामग्री का और तथ्यों और बार-बार तथ्यों का प्रयोग करते हैं।”<sup>23</sup>

जितने भी बड़े समाजविज्ञानवेत्ता एवं समाजशास्त्री हुये हैं वे सभी यही मानते हैं कि विचारों एवं कल्पनाओं का सृजन भूतल पर ही होता है। मार्क्स, मैन्हीम, आदि चिंतकों की धारणाये इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। कार्ल मार्क्स का स्पष्ट कहना है कि “चेतना स्वयं पदार्थ की सर्वोत्तम उपज है।”<sup>24</sup>

इस तरह से देखा जाय तो एक सफल एवं जागरूक साहित्यकार की दृष्टि से साहित्यकार को समाजशास्त्री, समाजविज्ञानवेत्ता, समाजसुधारक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से परिपूर्ण होना चाहिये तभी वह भावी जीवन के लिये सार्थक एवं समीचीन होगा और उसका वाङ्मय भी भावी पीढ़ी को प्रेरित, प्रभावित एवं प्रोत्साहित कर सकेगा। कबीर ने इस लक्ष्य में अपने को खरा ही उतारा। वे और उनका काव्य किसी एक आयाम में परिबद्ध नहीं हैं प्रत्युत उनकी दृष्टि एवं उनका काव्य इस दृष्टि से

बहुआयामी परिलक्षित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। उनके काव्य ने समाज को एक दिशा ही नहीं दी अपितु कुत्सित, कुंठित समाज को परिष्कृत एवं परिमार्जित करके एक नूतन चेतना से संचरित भी किया।

मनुष्य ने प्रकृति पर कितना काबू (नियंत्रण) पा लिया है कि उसे जब चाहता है और जिस ओर चाहता है अपनी ओर उन्मुख कर लेता है। तभी तो 'मनुष्य प्रकृति को अनुकूल बनाने वाला अद्भुत प्राणी है' ठीक ही कहा जाता है। लेकिन वैज्ञानिकों का दूसरी तरफ यह भी मानना है कि मनुष्य यदि इस तरह प्रकृति पर जय पाता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब उसे भी अपने को मरता मिटना देखना पड़े। यह सही भी है प्रारंभ से अब तक प्रकृति के जितने भयाभह तीव्र प्रकोप एवं प्रलय हुये हैं? वे इसी बात के उदाहरण हैं कि मनुष्य प्रकृति का जितना अधिक प्रयोग करता रहता है कि सीमाओं को भी अतिक्रमित एवं पार कर देता है तो फिर ईश्वरीय प्रकृति भी उस पर मृत्यु रूपी काल बनकर उस पर बरस पड़ती है और मनुष्य को उसमें मर मिटना पड़ता है। इसी तरह समाज में जब उच्चादर्यों, मानदण्डों, मूल्यों का अतिक्रमण होने लगता है और उसके स्थान पर पापाचार, अनाचार अत्याचार, बाह्याचार इत्यादि जैसी कलुषित परिस्थितियाँ जन्म लेने लगती हैं और इनकी सीमाओं की इतिहा हो जाती है तब कबीर की वाणियों में एक वैज्ञानिक एवं समाजसुधारक की ध्वनियाँ गूँजती हुई दिखाई देती हैं। जो मनुष्य को पूर्णतः सचेत करती हैं-और उस समय कबीर उदासीन होकर लोगों को सचेष्ट करते हैं-

हाड़ जलै ज्यूँ लाकड़ी, कंस जलै ज्यूँ घास।

सब तन जलता देखिकरि, भया कबीर उदास।।<sup>१०</sup>



इतना ही नहीं कबीर ने समाज की विषम परिस्थितियों से जिस तरह प्रतिशोध लिया है या उनका दृढ़तापूर्वक सामना किया है यह हर कवि या साहित्यकार के वश की बात नहीं। कबीर ने जहाँ एक ओर एक अन्वेषक की भाँति तीव्र दृष्टि से देखकर लोगों को सत्पथ पर लाने का प्रयास किया है वहीं दूसरी ओर उन्होंने एक समाज सुधारक की हैसियत से लोगों को सुप्तावस्था से जाग्रतावस्था में लाने का प्रयास भी किया है। किन्तु बेचारे कबीर किंकर्तव्यविमूढ़ की स्थिति में हैं कि वे लोगों को कैसे समझायें? लोग तो सुख-समृद्धि, भोग-विलास में ही रत हैं दुःखी, उदासीन तो कबीर हैं जो रात-दिन रोते रहते हैं न खाते हैं और न पीते हैं। लेकिन लोगों पर फिर भी उनके उपदेशों का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता। यह दिशा किस तरह कबीर वाङ्मय में द्रष्टव्य है कि लगता है कि कबीर नहीं बल्कि किसी समाज-सुधारक की हृदय से निस्सृत अनगूँजे हैं-

सुखिया सब संसार है, खायें अरू सोइ।

दुखिया दास कबीर है, जागै अरू रोइ।।<sup>१०</sup>

कबीर समाजसुधारक है या नहीं इस पर विद्वानों में मतभेद हैं। लेकिन कबीर के समाज-सुधारक रूप को पूर्णरूपेण अस्वीकृत कर देना भी न्याय नहीं होगा। वस्तुतः कबीर की साधना व्यक्तिगत है और वे व्यक्तिगत साधना के द्वारा ही इसे समष्टिगत बनाने में सफल भी रहे हैं। उन्होंने सर्वप्रथम अपने को सुधारने पर बल दिया। उसके पश्चात् जब वे स्वयं सत्पथ पर आ जाते हैं तब वे अपने को संबोधित कर समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उस पथ पर लाने के लिये प्रयत्नरत रहते हैं। जब वे स्वयं को अन्य की तुलना में बुरा समझते हैं तो इससे व्यंजित यही होता

है कि हर वह व्यक्ति जो अपनी ओर न देखकर अन्य पुरुषों के अवगुणों की ओर देखकर उसे बुरा-भला कहता है तब कबीर उस समय बुरा कहने वाले को ही बुरा समझते हैं। क्योंकि जो स्वयं को भला और दूसरों को बुरा समझता है उसने अभी तक अपने अन्तःकरण को शोधित नहीं किया है। जो स्वयं को बुरा और दूसरों को अच्छा और सज्जन समझता है कबीर उसी व्यक्ति को उच्चादर्शी वाला एवं सद्जन समझते हैं और स्वयं को सबसे बड़ा बुरा कहते हुये इसी बात की पुष्टि करते हैं-

*बुरा जो देखण मैं चला, बुरा न दीख्या कोइ।*

*जो दिल खोजा आपणों, मुझसा बुरा न कोइ।।*

*बुरा बुरा सब को कहै, बुरा न दीसा कोइ।*

*जे दिल खोजौ आपणों, मुझसा बुरा न कोइ।।”*

इस तरह कबीर व्यक्तिगत भक्ति एवं साधना के माध्यम से संपूर्ण विश्व को समष्टिगत रूप में अन्तर्निहित करते हुये एक समाज-सुधारक के रूप में अपनी दायमी (स्थाई) भूमिका का निर्वहन करते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर को मूलतः भक्त मानते हैं, समाज सुधारक कम। कबीर को समाज सुधारक आचार्य द्विवेदी वहीं तक मानते हैं जहाँ तक कबीर उपादेय सिद्ध ठहरते हैं। उनका कथन है- “कबीर ने ऐसी बहुत सी बातें कही हैं जिनसे (अगर उपयोग किया जाय तो) समाज सुधार में सहायता मिल सकती है, पर इसलिये उनको समाज सुधारक समझना गलती है। वस्तुतः वे व्यक्तिगत साधना के प्रचारक थे।”<sup>28</sup>

कबीर ने जीवन भर जिस साधना को अपनाया था उसमें कोरी काल्पनिकता या गलदश्रु भावुकता नहीं थी, अपितु वह उनके स्वयं के ‘अनुभव सत्य’,

‘अनभै सत्य’ एवं प्रयोगों पर पूर्णतः आधारित थी। वे प्रत्येक बात को पहले स्वयं सत्यानुभूति की तुला पर पूर्णरूपेण कस लेते थे तभी उस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते थे। इसीलिये तो वे एक समाज सुधारक होने के साथ एक वैज्ञानिक या अन्वेषक कहलाने के अधिकारी ठहरते हैं। डॉ० राजेश कुमार के शब्दों में- कबीर की साधना-पद्धति भी प्रयोग पर आधारित है। ..... वे जीवन पर्यावरण के शोधक हैं, अन्वेषक हैं, आविष्कारक हैं।<sup>29</sup>

### युगांतकारी कवि, साहित्यकार

प्रत्येक बड़ा कवि अपने समय और समाज का प्रतिष्ठित एवं प्रतिनिधि (Representative) होता है। वह अपने काव्य द्वारा एक नये युग का सूत्रपात करता है। बाबू गुलाबराय का कथन है “कवि की पुकार समाज की पुकार होती है। ... कवि की बनाई हुई सामाजिक भावों की मूर्ति समाज की उन्नायिका बन जाती है। .... समाज के प्रतिनिधि स्वरूप कवियों और लेखकों के विचार ही संग्रहीत हो साहित्य बनते हैं।”<sup>30</sup>

जब साहित्यकार किसी युग विशेष को संचालित कर उसका नेतृत्व करता है तब उसकी वाणी को सत्यं शिवं सुन्दर (Truth, Good, Beauty) से भी युक्त होना पड़ता है। यदि ऐसा नहीं होगा तो वह (कवि) और उसका काव्य (साहित्य) समाज का सर्वांगीण विकास करे ऐसा असंगत ही नहीं अपितु असंभव भी होगा। छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा का कथन बड़ा ही उल्लेखनीय है। वे कहती हैं कि “समष्टि की इकाई होने के कारण साहित्यकार के जीवन दर्शन और आस्था का निर्माण भी समाज विशेष और युग विशेष में होता है। साहित्यकार का लक्ष्य ‘मनुष्य का

सर्वांगीण विकास, मनुष्य के जीवन की दुख-दैन्य रहित गरिमा, शिवता, सौंदर्य,..... है।<sup>31</sup> आगे कहती हैं “वह समसामयिक परिस्थितियों से संघर्ष कर उन्हें लक्ष्योन्मुख बना देने की शक्ति रखता है। कलाकर के निर्माण में जीवन के निर्माण का लक्ष्य निहित रहता है।”<sup>32</sup>

साहित्यकार जब अपने काल की घटित घटनाओं में लिप्त रहकर समस्याओं का समाधान अन्वेषित कर उन्हें दूर करना चाहता है और वह उन घटित घटनाओं की विसंगतियों एवं समस्याओं का विश्लेषण करने में सक्षम भी रहता है इस प्रकार प्रत्येक युग का साहित्यकार अपने युग के अनुरूप ढलकर युगांतकारी या युग का प्रतिनिधि कहलाता है। यह व्यक्तित्व विरले कवियों में ही पाया जाता है कबीर जैसा शक्तिशाली व्यक्तित्व अपने युग के बनाने से ही बना। ऐसा व्यक्तित्व अन्यत्र प्राप्य ही नहीं है। उन्होंने अपने काव्य द्वारा समाज को पुनर्गठित कर उसे नवीनता की ओर उन्मुख ही नहीं किया अपितु उसके चरमराये हुये ढाँचे (Structure) को व्यवस्थित कर एक नव्य रूप दे दिया।

एक साहित्यकार को समाज का जीवंत चित्र प्रस्तुत करने के लिये इंजीनियर की भूमिका का निर्वहन भी करना पड़ता है। मैक्सिम मोर्की के शब्दों में “वह मानव आत्मा के इंजीनियर की संज्ञा से प्रतिष्ठित होता है।”<sup>33</sup> इंजीनियर जिस तरह से अनेक आँकड़ों का विश्लेषण कर नव्य-शालीन भवन को रूपायित करता है उसी तरह एक साहित्यकार भी अपने काव्य से जीवन के विविध अनुभवों को संचित कर नव्य जीवन एवं समाज का जीवंत एवं अमिट चित्र प्रस्तुत करता है।

कबीर ने भी अपने समय एवं समाज को भली भाँति जाँचा परखा था

और अपने उन्मीलित नयनों से उसमें निहित विसंगतियों, समस्याओं से जूझ रहे एक बहुत बड़े समुदाय को देखा था। उन्होंने इन बिंडबनाओं से ऊबकर जिस काव्य का सृजन किया है वह किसी इन्जीनियर की भवन निर्माण कला से कम नहीं है। उन्होंने अपने साहित्य से एक नव्य जीवन को संचारित करने की अतीव चेष्टा की है जो उनकी अमिट, अमर वाणियों में सस्वर सुनाई देती हैं।

भावी जीवन में व्यवस्थायें भले ही बदल जायें परन्तु जातीय भेदभाव, सांप्रदायिक विद्वेष, असमानता, और अंधविश्वासों में निरंतर वृद्धि होती रही है और होती रहेगी। कबीर ने इनके प्रति अतीव विरोध एवं विद्रोह किया। लोग धन-संपत्ति के संचयन में कैसी-कैसी करतूतें करते हैं कि जानवरों से भी गये गुजरे हो जाते हैं। वे मनुष्य को मनुष्य नहीं समझते। पापाचार, अनाचार, भ्रष्टाचार फैलाने के लिये रिश्वत लेते हैं और समुदायों के मध्य सांप्रदायिक अग्नि की धधकती ज्वाला को जलाकर स्वयं उस पर प्रसन्न होते हैं। लेकिन कबीर का ऐसे लोगों से बड़ा तीव्र एवं प्रखर विद्रोह है कबीर ऐसे लोगों को समझाते हैं कि अधिकाधिक धन-संचयन ठीक नहीं है। यदि आपके पास धन का आधिक्य है तो उसका उचित उपयोग एवं सेवन कीजिये जिससे आपको पुण्य मिले जो स्वर्ग में सहायक बने। अधिकाधिक धन-संचयन करने वाले जितने भी लोग इस संसार में थे वे उसे अपने साथ मृत्यु के समय लेकर नहीं चले गये बल्कि वह सारी की सारी संपत्ति यहीं पड़ी की पड़ी रह गई। कोई भी उसे अपने सिर पर पोटली बाँधकर नहीं ले जा सका। कबीर स्पष्टतः कहते हैं-

कबीर सो धन संचिये, जो आगै कूँ होइ।

सीस चढ़ाये पोटली, ले जात न देख्या कोइ।<sup>14</sup>

कबीर ने वस्तुतः एक ऐसे युग का नेतृत्व किया है जो सर्वदा समीचीन एवं प्रासंगिक रहेगा। आज भी जब कभी संप्रदाय विशेष के नाम पर फसाद होते हैं, राजनेता इन फसादों के द्वारा कुर्सी की राजनीति में सक्रिय दिखते हैं और भ्रष्ट निकृष्ट कार्यों में लीन धर्माचारों एवं मठाधीशों के कारनाम उजागर होते हैं ऐसे समय में संत महात्मा कबीर की वाणियाँ स्वतः ही स्मृति में आने लगती हैं। इस संबंध में कबीर साहित्य के अध्येता डॉ० नजीर मुहम्मद का कथन संगत प्रतीत होता है “कबीर एक सफल साधक, प्रभावशाली उपदेशक, महान नेता एवं युगद्रष्टा थे। उन्होंने कविता के सहारे अपने विचारों को युगांतर के लिये अमरता प्रदान की।”<sup>35</sup>

### शिक्षक एवं पथप्रदर्शक

लोकप्रिय साहित्यकार वही होता है जो जनता को चेतनावस्था में लाये, उसे प्रेरित, प्रोत्साहित करे, शिक्षित करे। इसके पश्चात् फिर वह जनता को सन्मार्ग पर चलने के लिये पथप्रदर्शक का कार्य करे। ऐसे साहित्यकार के दिल और दिमाग में यह पूर्वाग्रह कदापि नहीं रहता कि उसका पाठक कुछ सोचने-समझने की शक्ति ही नहीं रखता बल्कि उसे पाठक से यही अपेक्षा रहती है कि वह अपने मस्तिष्क का सही और संजीदगी से उपयोग करे। इसके लिये साहित्यकार उसे राह दिखलाता है, पहला कदम उठाने में उसकी सहायता करता है और फिर स्वतंत्र रूप से आगे बढ़ने की शिक्षा भी देता है। इससे स्पष्ट होता है कि एक सांस्कृतिक समाज का महत्वपूर्ण अंग होने कि नाते वह अपने पाठकों, जनता के सामाजिक धार्मिक, सांस्कृतिक संबंधों के साथ उसमें निहित अनेक विकृतियों एवं परिवर्तनों से परिचित कराता है और

फिर उन्हें सत्पथ पर चलने को उन्मुख करता है।

साहित्यकार अपनी लोकप्रियता का प्रमाण वहाँ भी देता है जब वह अपने पाठकों को अतीत, वर्तमान एवं आगत (भावी) जीवन की संभावनाओं से परिचित कराकर उनके भीतर की क्षमताओं का विकास करता है जिससे वे गतिशील दिशान्मुख बने रहें। डॉ० भगीरथ मिश्र कहते हैं कि “साहित्यकार अद्भुत चेतना असाधारण जागरूकता और विलक्षण सामंजस्य के द्वारा समाज व व्यक्ति के जीवन की आलोचना करता है, साथ ही साथ उसको प्रोत्साहित और प्रगतिमान भी करता है वह समाज को झकझोरता भी है और उसका निर्माण भी करता है।”<sup>36</sup>

इस तरह से देखें तो साहित्य मानव प्रकृति के परिष्कार और मानवजीवन को ऊर्ध्वगामी बनाता है और यह साहित्य किसी किसी विरले कवि या साहित्यकार का ही होता है जो लोगों को शिक्षित कर उन्हें सत्य-मार्ग पर लाने की चेष्टा करता है। कबीर का काव्य (साहित्य) इस दृष्टि से पूर्ण सक्षम है। कबीर अपने काव्य-सागर की वाणियों से सोई जनता को झकझोरते ही नहीं प्रत्युत उनके हृदय में संचेतना स्वरूप तरंगों को संचारित भी कर देते हैं। जो लोग इस संसार में आकर व्यर्थ ही अपना जीवन नष्ट कर देते हैं उनकी दशा धोबी के कत्ते जैसी होती है। जो न घर का ही होता है और न घाट का ही। लोगों ने व्यर्थ ही अपना अमूल्य समय नष्ट कर दिया कितने पापाचार कर लिये, कुछ भी पुण्य कार्य नहीं किया। ऐसे लोग यहाँ (इस संसार) में और यहाँ के बाद अर्थात् मृत्यु के उपरांत दुख से ग्रस्त ही रहे, वे भवसागर में लटके ही रह गये। ऐसे लोगों को कबीर किस तरह सन्मार्ग की ओर उन्मुख करके शिक्षा दे रहे हैं देखिये-

कहा कियो हम आइ करि, कहा करेंगे जाइ।

इत के भये न उत के, चाले मूल गँवाइ।।<sup>37</sup>

### क्रांति स्रष्टा

साहित्यकार को समाज सुधारक, शिक्षक पथप्रदर्शक होने के साथ साथ क्रांत सर्जक भी होना अपेक्षित होता है। एक क्रांतिकारी साहित्यकार की अपने सृजन के प्रति क्या भूमिका एवं दायित्व होता है? इस बात पर पाश्चात्य विद्वान् काडवेल अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये कहते हैं कि “वह जनता के क्रांतिकारी नेतृत्व का अभियान करे।”<sup>38</sup>

एक क्रांतिकारी साहित्यकार की वाणी सुप्तावस्था में पड़े हुये समाज और जीवन में प्राणों का संचार करती है, एक कम्पन्न उत्पन्न करती है, एक उथल-पुथल को जन्म देती है, जो क्रांति का बीजारोपण कर नये समाज एवं जीवन के सृजन का आधार बनती है। पाठक भी उससे यही आकांक्षा रखता है ‘कवि कुछ ऐसी तान सुनाओं जिससे उथल-पुथल मच जाये’ यथार्थतः कवि की वाणी नये विचारों को जन्म देकर सामाजिक संबंधों को नया रूप प्रदान करती है।

साहित्यकार केवल क्रांति का सर्जक ही नहीं अपितु वह क्रांतदर्शी भी होता है। उसको घर फूँक तमाशा देखने की अतीव एवं बलवती आकांक्षा होती है। वह समाज में नवीन सूत्रों के द्वारा नव-जागरण और नव्य चेतना को निर्मित करता है। साहित्यकार अपने देश एवं समाज की आवाज़ के रूप में लोकप्रियता प्राप्त करता है। गोकर्नी के शब्दों में “कलाकार अपने देश तथा वर्ग का संवेदनशील ग्रहणकर्ता है-उसका कान, आँख तथा हृदय है। वह अपने युग की आवाज है। उसका कर्तव्य



है कि जितना कुछ जानता हो जाने और अतीत को वह जितनी भली-भाँति जानेगा, वर्तमान को भी उतना ही अधिक अच्छी तरह समझेगा और उतनी ही गहराई और सूक्ष्मता से वह हमारे समय की सर्वव्यापी क्रांतिकारिता तथा उसके कार्यभारों की व्यापकता को बोधगम्य कर सकेगा।”<sup>39</sup>

कबीर भी एक ऐसे ही क्रांतिस्रष्टा एवं क्रांतिकारी कवि या साहित्यकार थे जिन्होंने समाज के प्रत्येक क्षेत्र में एक नव्य चेतना को जाग्रत कर लोगों के भीतर क्रांति को जन्म दिया। एक चिंतक और समाजसुधारक की भूमिका में वे सामाजिक सांस्कृतिक क्रांति के संवाहक बनकर सामने आते हैं। वस्तुतः एक भक्त होने के साथ-साथ उन्हें अपने समाज की अतीव एवं पर्याप्त चिंतायें थीं। डॉ० त्रिलोकीनाथ दीक्षित संत काव्य को साहित्यिक दृष्टि से महत्त्व न देकर कहते हैं “संत काव्य का जो महत्त्व सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक दृष्टि से है, वह साहित्यिक दृष्टि से नहीं है।”<sup>40</sup> लेकिन साहित्यिक दृष्टि से विलकुल नगण्य मानना उचित नहीं है। यह ठीक है कि कबीर आदि संत कवियों ने अपने काव्य में सीधे-सीधे तीव्र, प्रखर एवं शुष्क व्यंग्य वाणों से लोगों के हृदय को विदीर्ण किया है जिससे संतों के प्रति एक उदासीन एवं अमूक दृष्टि जन्म लेने लगती है। इससे उनके काव्य को साहित्यिक खाने से निष्कासित कर दें यह अन्याय ही होगा। डॉ० दीक्षित की संतों के प्रति जो साहित्यिक दृष्टि नहीं बन पाई उसका विरोध करते हुये डॉ० जगतसिंह बिष्ट कहते हैं। “किंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि संत काव्य का महत्त्व साहित्यिक दृष्टि से नगण्य है। इतना अवश्य है कि संत काव्य में वैचारिक क्रांति की अतिशयता से उसका साहित्यिक पक्ष दब-सा गया है फिर भी संत कवि अपनी कविताओं के

द्वारा जिस सामाजिक-सांस्कृतिक क्रांति को व्यक्त करते हैं वह साहित्यिकता के बिना संभव नहीं है।”<sup>41</sup>

कबीर के समूचे वाङ्मय को हृदयंगम करने के पश्चात् लगता है कि उन्होंने क्रांति का मुराड़ा अपने हाथों में तब-तब लिया है जब-जब उन्होंने देखा कि अब सहज, शांति से काम चलने वाला नहीं है। फिर उन्होंने सहज, शांति के स्थान पर विद्रोह एवं क्रांति का डंका बजाकर लोगों को उस पथ का अनुगमन करने के लिये प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया है जिस पर कबीर स्वयं चल रहे हैं, और इस पथ का अनुशरण वही कर सकता है जो कबीर की भाँति अपना सर्वस्व त्याग दे-

हम घर जाल्या आपणाँ, लिया मुराड़ा हाथि।

अब घर जालौं तासु का, जे चलै हमारे साथि।।<sup>42</sup>

कबीर ने जिस वातावरण में अवतरण लिया था, उसमें सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियाँ अच्छी नहीं थी। चारों ओर भयावहता के कालिमायुक्त बादल आच्छादित थे समूचा भारतीय समाज-हिन्दू, मुस्लिम, जैन, बौद्ध इत्यादि संप्रदायों में विभक्त था। समाज का प्रत्येक व्यक्ति सांप्रदायिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों, मिथ्याचारों, बाह्याडम्बरो, अमानवीय, अंधविश्वासों, असंगत रीति-रिवाजों में पूर्णरूपेण लिप्त था। अर्थात् दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अप्रासंगिक संस्कारों के मकड़जाल में बुरी तरह उलझा हुआ था। ऐसे अराजक परिवेश में कबीर ने लोगों को कुत्सित दलदल रूपी पंक (कीचड़) से निष्कासित करने को केवल समझाया ही नहीं अपितु कबीर के सत्गुरु (सच्चे गुरु, ईश्वर) ने उन्हें स्वयं बताया कि हे! कबीर तू इन लोगों को इस भवसागर से बचाने के लिये भेजा गया

है। अतः तू इनको समझा और नरकाग्नि से बचाकर स्वर्ग प्राप्ति के लिये पुकार-

सत्गुरु इहै विचारिया, साखी कहों कबीर।

भौसागर में जीव हैं, जे कोइ पकड़ै तीर।।

हरि जी यहै बिचारिया, साधी कहों कबीर।

भौसागर में जीव हैं, जे कोइ पकड़ै तीर।।<sup>13</sup>

वस्तुतः कबीर ने ईश्वर के बताये हुये दायित्व का जीवन पर्यंत निर्वाह भी किया।

कबीर ने ऐसे लोगों के ऊपर वज्रघात किया जो स्वयं को वैष्णव भक्त कहते थे किंतु उनकी करतूतियाँ ऐसी थीं कि कबीर उनसे खिन्न होकर दो टूक शब्दों में अपना रोष प्रकट करके हृदयविदीर्ण करके ही छोड़ते, कबीर बालों को बार-बार मुंडन करने के स्थान पर मन मुंडन पर सर्वाधिक बल देते हैं क्योंकि बाल मुड़ाने से लोग अपनी करतूतियों, कुप्रवृत्तियों से बाज आते ही नहीं तो फिर उससे क्या लाभ? अर्थात् उन्हें सर्वप्रथम अपने मन को स्वच्छ, पवित्र एवं परिष्कृत करना चाहिये क्योंकि यदि मन परिष्कृत हो जायेगा तो उसमें निहित कुसंस्कार, पापाचार, अनाचार, बाह्याचार आदि स्वयं ही विनिष्ट हो जायेंगे। अतः कबीर कह उठते हैं-

कैसों कहा बिगाड़िया, जे मूँड़े सौ बार।

मन को न काहे मूँड़िये, जामें विषै विकार।।<sup>14</sup>

कबीर ने जीवन भर ऐसे लोगों को खूब खरी-खेटी सुनाई जिनसे उनका दिल तिलमिला जाता था। तभी तो आचार्य प्रवर हजार प्रसाद द्विवेदी का कथन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है- “सब बाहरी धर्माचारों को अस्वीकार करने का अपार साहस

लेकर कबीरदास साधना के क्षेत्र में अवतीर्ण हुये.....उन्होंने अटल विश्वास के साथ प्रेम मार्ग का प्रतिपादन किया। रूढ़ियों और कुसंस्कारों की विशाल वाहिनी से वह आजीवन जूझते रहे।<sup>45</sup>

### समाज का सजग प्रहरी

साहित्यकार समूचे समाज का सजग प्रहरी होता है। वह अपने समय एवं समाज में होने वाली उन तमाम गतिविधियों से परिचित होता है जो घट रही होती हैं वह समाज की समस्याओं, दैन्यपूर्ण एवं संक्रामक स्थितियों में स्थिरता तथा उत्थान एवं पतन में सत्यं, शिवं, सुन्दरं का अनुपम अलख जगाता है। लोक कल्याण के लिये अग्रसित रहता है। समाज के सुख में सुख एवं दुख में दुख का अनुभव करता है। वह स्वयं संघर्षरत रहकर उपेक्षित, निरुपाय, व्यथित, पीड़ित प्रताड़ित इत्यादि कठिनाइयों से जूझते हुये व्यक्तियों को लोक-मंगल कामना का चिरानंद प्रदान करता है। वह लोगों को अंधकार से निकालकर प्रकाश में लाता है। कथाकार भीष्म साहनी के अनुसार “लेखक जीवन की परतों को हमारे सामने खोलता है, एक नजरिया देता है, समाज के भीतर सक्रिय शक्तियों की भूमिका को समझने में मदद देता है, हमें सजग और सचेत करता है”<sup>46</sup>

यथार्थतः साहित्य सृजन संगत एवं प्रासंगिक तभी रहता है जब उससे समूची जनता राहत एवं संतोष प्राप्त करती है। विमल मित्र के शब्दों में “मैं चाहता हूँ कि आने वाली पीढ़ी मेरी कृतियाँ पढ़कर तृप्ति का अनुभव करें, उस पर सोच विचार कर उससे कुछ अपनाये। वर्तमान जटिल और तनावपूर्ण जीवन में मेरी रचनाएँ

पाठकों को जरा भी राहत पहुँचाये तो यह मेरे लिये परम संतोष की बात होगी और मैं अपने लेखन को सार्थक समझूँगा।<sup>47</sup>

एक जागरूक एवं जुझारू साहित्यकार होने की हैसियत से उसे सकल विश्व-निवासियों को 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का अमूक संदेश देना चाहिये। बाबू गुलाबराय की मान्यता इस संदर्भ में उल्लेखनीय ही होगी। वे कहते हैं "साहित्यिक भू के कौने-कौने में सौंदर्य के दर्शन करता है और अपेक्षाकृत असुंदर को भी सुंदर बनाने की प्राण-पण से चेष्टा करता है।.....वह अज्ञान, उपेक्षा और तिरस्कार के आवरण को हटाकर स्वयं अपने को ही नहीं वरन् सारे संसार को उस दिव्य ज्योति का पावन प्रकाश प्रदान करता है।"<sup>48</sup>

कबीर वस्तुतः ऐसे ही 'कविर्मनीषी' थे जिन्हें स्वयं की ही नहीं अपितु समस्त मानव जाति की चिंता थी। वे सदैव इसी आशा एवं आकांक्षा में लिप्त रहते थे कि सकल वसुंधरा पर 'वसुधैव कुटुम्बकम्,' की साकार कल्पना स्थापित हो जाये। कबीर जिस परिवेश में सांस ले रहे थे उसके चारों ओर का वातावरण प्रायः उन्हें उदासीन प्रतीत हो रहा था। उसमें मनुष्य दुश्चिंताओं, अवसादों और आतंको से ग्रसित था। चारों ओर क्रूरता, छल, -प्रपंच, दुःरभि संधियां, सत्ता की विश्वासघाती आशाये संहारक अस्त्र-शास्त्रों से लिप्त मनुष्य प्रायः आत्मविपन्न हो चला था। आज के संदर्भ में इसे बखूबी देखा जा सकता है और आगामी समय में भी देखा जा सकेगा इससे इनकार नहीं किया जा सकता क्योंकि आज से पहले और अब तक जितने भी प्रयास इस दिशा में होते रहे हैं और हो रहे हैं उन सबका परिणाम पूर्णतः सफल एवं सार्थक नहीं हो पाया है अर्थात् इस दिशा में और हमें प्रयासरत रहने की आवश्यकता है।

हमें प्रयासरत बने रहने के लिये किसी न किसी का संबल प्राप्त होना ही चाहिये, तभी हम उससे प्रेरित एवं प्रोत्साहित होकर आगे बढ़ सकेंगे। इस दृष्टि से कबीर साहित्य या उनकी असीम, अमिट, अमूक वाणियाँ सदैव अपनी तान से युक्त हो सस्वर गुंजायमान प्रतीत होती हैं।

आज धर्म, नस्ल, जाति, प्रजाति एवं वर्ग के आधार पर आम जनता अपने अतीत से वंचित एवं भावी जीवन को सरल, सुगम्य बनाने के लिये कितनी तृषित होती जा रही है कि आने वाले समय में इसकी दिशा एवं दशा क्या होगी? इसका अनुमान अनायास ही लगाया जा सकता है। ऐसी स्थिति में कबीर की अमूक वाणियाँ ही मनुष्य को आत्मतोष एवं संयम का अनुपम संदेश देती हुई प्रतीत होंगी-

*आधी अरु रूखी भली, सारी सो संताप।*

*जो चाहेगा चूपड़ी, बहुत करेगा पाप।<sup>10</sup>*

कबीर तो वस्तुतः एक श्रमिक (Worker) थे। उन्हें श्रम करके खाने में जो आनंदानुभूति होती वह बैठे-बिठाये में नहीं मिलती थी। लोभ, लालच तो उनको छू भी नहीं सकता था। श्री प्रताप दीक्षित का कहना है कि “कबीर की वाणी उनकी अस्मिता का संघर्ष थी। उनकी आवाज दबाने की बहुत कोशिश की गई। परन्तु यह आवाज दबती कैसे? यह आवाज तो उस जाति कुल विहीन आम महनतकश फक्कड़ इंसान की थी जिसे न तो राजदरबार में राजकवि के पद की चाहत थी, जिसे न अकादमियों के पुरस्कार वाइसचांसलरी, विदेशी डेलीगेशनों की यात्रा की दरकार या अवकाश ग्रहण के बाद संस्थानों में सलाहकार बनने की जरूरत।”<sup>10</sup>

कबीर तो आत्मसंयम पर बल देकर सज्जन पुरुष बनने की ओर प्रेरित

करते हैं कि लोगों को अधिकाधिक धन-संपत्ति एकत्र करने के फेर में न पड़कर जितना उसे ईश्वर ने दिया है उसका सदुपयोग कर अपना जीवनयापन संयमतापूर्वक करते रहना चाहिये। ऐसा जो लोग करते हैं उनसे ईश्वर भी प्रसन्न रहता है और फिर उन्हें स्वमेव समयानुसार देता रहता है। इस तरह से कबीर धन संचयन के स्थान पर मनुष्य का जितने से जीवन निर्वाह सुगमतापूर्वक चल सके—पर बल देते हुये कहते हैं—

संत न बाँधैं गाँठड़ी, पेट समाता लंड।

साँई सँ सनमुख रह, जहाँ माँगें तहाँ देइ।<sup>1</sup>

कबीर ने आत्मतोष, आत्मसंयम एवं अपरिग्रह की महत्ता को और भी अधिक स्पष्ट करते हुये बताया कि ईश्वर मुझे उतना ही दे जिससे मेरा एवं मेरे परिवारीजनों का कल्याण हो जाय और घर पर जो भी अतिथि आये तो मैं उसका आतिथ्य, आदर, सत्कार ठीक से कर सकूँ अर्थात् वह मेरे यहाँ से उदासीन होकर न जाये—

साँई इतना दीजिये, जामैं कुटुम समाइ।

मैं भी भूँखा न रहूँ, साधु भूँखा न जाइ।<sup>2</sup>

कबीर का उद्बोधन मात्र सामयिक न होकर शाश्वत है वे युग युग तक प्रासंगिक रहेंगे। प्रत्येक युग उनसे प्रकाश पाता रहेगा। महात्मा गाँधी, कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ (टैगोर) असम के वैष्णव संत शंकर देव, तमिल कवि तिरुवल्लुवर, बंगाल के वाउल और हिन्दी साहित्य में दिनकर, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', नागार्जुन, धूमिल एवं मुक्तिबोध इत्यादि कवियों पर कबीर का प्रभाव ही नहीं अपितु उनके संस्कार भी

परिलक्षित होते हैं। यही वजह है कि उनके विरोधियों को भी कबीर की सत्यता में संदेह नहीं होता। उनकी मुखरित शाश्वत वाणियाँ संसार के कौने कौने में श्रद्धा के साथ सुनी जाती हैं और भविष्य में भी अबाध्य रूप से सुनाई देती रहेंगी ऐसी आशा है। तभी तो सरदार अली जाफरी कबीर की असीम, अमिट शाश्वत वाणियों के बारे में जो मत व्यक्त करते हैं वह सर्वदा एवं सर्वथा अप्रासंगिक नहीं रहेगा—  
“परिस्थितियों और घटनाओं का कबीर सन् और तारीख का कबीर जिंदा नहीं है लेकिन विचार और चेतना का कबीर, भावनाओं और अनुभूतियों का कबीर, कविता और गीत का कबीर जिंदा है। हर दोहा (साखी) उसका अस्तित्व है, हर पद उसका व्यक्तित्व, हर विचार उसकी ज़बान। और जब हम उसके बोले हुये शब्दों को दुहराते हैं तो कबीर का साज बजने लगता है। शाही फ़रमान और डंकों की आवाजें गूंगी हो जाती हैं और कबीर के दिल से निकलने वाले अनाहतनाद से आत्मा मस्त हो जाती है।”<sup>53</sup>

भावी जीवन के निर्माण में एक साहित्यकार के जितने रूप हो सकते हैं उनका हमने कृमशः विवेचन विश्लेषण किया जो कबीर के परिप्रेक्ष्य में रखकर किया गया। कबीर के ये वैविध्य रूप हमें उनके काव्य-सागर में देखने को मिलते हैं उनके इस वैविध्य स्वरूप को सामने रखकर अब हम कुछ मानदण्डों को रेखांकित कर सकते हैं जिनसे भावी मानस उनसे शिक्षित होकर सन्मार्ग की ओर उन्मुख हो सके—

- \* कबीर अपने युग-सत्य के चितरे कवि हैं जो सत्य के साथ-साथ शिवं, सुंदरं की भावना से लोगों का पथ आलोरित करते हैं।



- \* कबीर समाज की शक्ति संरचना को प्रभावित कर अपने कौशल से समाज को गतिमय, परिवर्तनशील एवं पुनर्निमित करने के लिये चहल-कदमी करते हैं
- \* कबीर की वाणी दलित, पीड़ित-प्रताड़ित व शोषित मानव का संवाहक एवं संबल बनकर समाज में नवीन आंदोलनों को संगठित करने तथा जन्म देने में सहायक सिद्ध होती है।
- \* कबीर ने परंपरित मानदण्डों को परिष्कृत परिभाषित कर जिन नवीन मूल्यों की स्थापना की है उनका उपयोग जीवंत एवं समीचीन है।
- \* कबीर ने सर्जक के रूप में ही नहीं अपितु समाज के अस्त-व्यस्त ढाँचे को पुनर्गठित करके भावी संभावनाओं को भी निरूपित किया है।
- \* कबीर का आगमन एक स्रष्टा एवं शक्ति के रूप में हुआ है। उनकी अलख वाणियों ने मृत लोगों की आत्मा में संजीवनी का संचार किया है जो इतिहास, संस्कृति, समाज एवं युग को अक्षुण्न बनाना मृत कबीर को अमृतत्व प्रदान करती है।

उपर्युक्त जितने भी मानदण्ड निर्धारित किये गये हैं उन सब का बहुत ही सजीव चित्रण हमें कबीर वाङ्मय में देखने को मिलता है। यदि इन मूल्यों एवं मानदण्डों को आज का प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में उतारे और फिर दूसरों तक पहुँचाने का प्रयास करे तो निश्चित ही समाज निविडोधकार से ज्योतिर्मयी पथ पर अग्रसर हो सकेगा। कबीर और उनके काव्य ने समय-समय पर लोगों का पथ आलोकित किया है, उनसे प्रेरणा ली जाती है, और वे भावी जीवन में भी अपनी प्रेरणादायिनी शक्ति से लोगों को लाभान्वित करते रहेंगे। इस संबंध में श्रीमान् राममूर्ति

त्रिपाठी का कथन बड़ा ही सटीक है कि "उस विश्व दृष्टि और जीवन दृष्टि में आस्था जगाई जाय जिसको जीने से हममें अंधकार का सामना करने की अदम्य क्षमता और अभिव्यक्ति के खतरे उठाने का साहस मिल सके। बिना इस पाथेय के हम साहित्य द्वारा समाज में परिवर्तन नहीं ला सकते। आज कबीर हमारे आलोक स्तम्भ हैं।"<sup>54</sup>

वस्तुतः कबीर जीवन-पर्यावरण के शोधक हैं, अन्वेषक हैं और सजग प्रहरी हैं। यदि मानवीयता को जीवित रखना है तो कबीर और उनके काव्य से हमें बार-बार सबक लेना पड़ेगा। तभी हम सभ्य, शिष्ट और परदुःखकातर बन सकेंगे। इस दृष्टि से संत कबीर एक युगपुरुष ही नहीं, अपितु युगम्रष्टा एवं युगद्रष्टा भी हैं उनकी प्रखर दृष्टि नवीन युग की दूरदर्शी है जो युगों-युगों तक अपनी प्रासंगिकता को निरंतर कायम रखेगी।

#### संदर्भ:-

1. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद 1954 पृ० 2
2. वही पृ० 5
3. डॉ० विश्वम्भरदयाल गुप्ता, सामाजिक पुनर्निर्माण का समाजशास्त्र और साहित्य, सीता प्रकाशन, मोती बाजार हाथरस, प्रथम संस्करण 1984, पृ० 50
4. वही पृ० 50
5. उपेन्द्रनाथ अशक, कादम्बिनी, जनवरी 1974, पृ० 72
6. सं० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 19
7. वही पृ० 36
8. रांगेय राघव, काव्य, यथार्थ और प्रगति, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, सं० 2012, पृ० 116
9. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 37
10. डॉ० मुंशीराम शर्मा, साहित्यशास्त्र, श्री भारत भारती प्रकाशन प्रा० लि०, दिल्ली, 1963, पृ० 15
11. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 82

12. प्रेमचंद, कुछ विचार, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1982, पृ० 83
13. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 133
14. वही पृ० 35
15. वही पृ० 203
16. वही पृ० 53
17. वही पृ० 19
18. कोन्स्तान्तिन के दिन: लेखनकला और रचना कौशल, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1977 पृ० 329
19. सं० डॉ० कामता कमलेश, डॉ० रामकिशोर शर्मा, हिन्दी अनुशीलन, संयुक्तांक 1999, अंक 1,2,3,4, वर्ष 41, भारतीय हिन्दी परिषद, इलाहाबाद, पृ० 237
20. अलेक्सेई तोल्सतोय: लेखनकला और रचनाकौशल पृ० 211
21. गुलाब राय, काव्य के रूप, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1954, पृ० 07
22. मैक्सिम गोर्की, लेखनकला और रचनाकौशल, पृ० 78
23. वही पृ० 102
24. Karl Marx's, Selected works, vol. 1 PP. 332-335
25. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 17
26. वही पृ० 9
27. वही पृ० 51
28. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पटना प्रथम संस्करण, 1971, पृ० 223
29. सं० डॉ० एम० फीरोज अहमद, वाङ्मय, वर्ष 2, अंक 5, अप्रैल-जून, 2005, अमीरनिशां, अलीगढ़, पृ० 110
30. गुलाबराय, काव्य के रूप, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1954, पृ० 6
31. महादेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962, पृ० 27-29
32. वही पृ० 46
33. Maxim Gorky-on socialist Realism in socialist realism in literature and art, progress publisher.. moscow, 1971. page 44.
34. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 26
35. डॉ० नजीर मुहम्मद, कबीर के काव्य रूप, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, 1971, पृ० 01
36. भगीरथ मिश्र, कला, साहित्य और समीक्षा, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1963, पृ०

- 15-16
37. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 18
38. C. Caudwell- Illusion and reality, people publishing house ltd. Bombay. 1956, page 286
39. मैक्सिम गोर्की, लेखनकला और रचनाकौशल, पृ० 42
40. सं० डॉ० नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर प्रेस, बैंकस, नौएडा, 1997, पृ० 124
41. सं० डॉ० फीरोज अहमद, वाड्.मय, वर्ष 2, अंक 5, अप्रैल-जून 2005, अमीरनिशां, अलीगढ़, पृ० 95
42. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, क०ग्रं०, पृ० 53
43. वही पृ० 44
44. वही पृ० 36
45. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1971, पृ० 191-192
46. भीष्म साहनी, सारिका, 1 नवम्बर, 1978, अंक 1, पृ० 11
47. विमल मित्र, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 25 नवम्बर से दिसम्बर 1953, पृ० 79
48. गुलाबराय, अध्ययन और आस्वाद, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1957, पृ० 16
49. कबीर से संबंधित आलोचनात्मक ग्रंथों एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित।
50. सं० डॉ० एम० फीरोज अहमद, वाड्.मय, वर्ष 2, अंक 5, अप्रैल-जून 2005, अमीरनिशां, अलीगढ़, पृ० 138
51. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 45
52. कबीर से संबंधित आलोचनात्मक ग्रंथों एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित।
53. सरदार अली जाफरी, कबीर बानी, हिन्दुस्तानी बुक ट्रस्ट, खेतान भवन, जे०टाटा० रोड, बम्बई नं-1, 1965, पृ० 9 (भूमिका से)
54. सं० डॉ० राधेश्याम शर्मा, मधुमती, राजस्थान साहित्य अकादमी, मासिक पत्रिका, उदयपुर, 1995, वर्ष 35, नवम्बर, पृ० 31

उपसंहार

## उपसंहार

भारतीय समाज में जब-जब विषम और हानिप्रद परिस्थितियों ने जन्म लिया है तब-तब समाज में सजग प्रहरी कवियों ने अवतार लेकर समाज को सही दिशा और दशा का सम्बल प्रदान किया है। संत कबीर का आविर्भाव भी निराशा तथा हतोत्साहित वातावरण में हुआ, जिसमें विषमतायें, नैराश्य, विश्वासघात तथा विसंगतियाँ व्याप्त थीं। चारों ओर समाज में कुत्सित विचारों एवं बाह्याचारों की प्रधानता थी। समाज का ढाँचा प्रत्येक दृष्टि से चरमराया हुआ था। समाजचेता कबीर से यह देखा नहीं गया इसलिये कबीर ने आजीवन हिंदुओं और मुसलमानों की कुरीतियों और बाह्याडम्बरों के विरोध में आवाज उठाई। कबीर ने लोगों को मानवीय एकता, अखण्डता और समानता का संदेश सुनाया।

भक्त कबीर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व सांप्रदायिक सद्भाव का पोषक एवं आधारबिन्दु हैं। वे व्यक्तित्व से न हिंदू हैं और मुस्लिम, अपितु मानव हैं। इस प्रकार उनके व्यक्तित्व की दिशाये मानवीयता का स्वरूप अंकित करती हैं।

संत कबीर भारतीय जीवन के एक महान पोषक और चितरे कवि हैं। उनकी सहजता, सरलता तथा स्वाभाविकता की प्रवृत्ति उन्हें जनता का कवि बना देती है और ऐसा होना एक भारतीय महान् आत्मा का चारित्रिक गुण भी है।

साहित्य का परम कर्तव्य एवं लक्ष्य होना चाहिए कि वह मनुष्य को मनुष्य से जोड़े और पारस्परिक वैमनस्य की खाई को उच्चादशों से पाटे। हिन्दी साहित्य का भक्ति कालीन काव्य वस्तुतः मानवता को एकता के मूत्र में बाँधने वाला काव्य

है। कबीर जैसे संत कवि ने इस भावना को भलीभाँति जान बूझकर भारतीय जनमानस को एकसूत्र में पिरोकर मानवीय एकात्म की भावना को साकार करने का स्तुत प्रयास किया।

संत कबीर एक क्रांतिकारी महापुरुष थे। परंपरा से आने वाली सभी मान्यताओं को युगानुकूल कैसे बदला जाये? और कहाँ तक उनका खंडन-मंडन किया जाए? यह अन्तर्दृष्टि उनमें निहित थी। यही वजह है कि उन्होंने शास्त्रीय ज्ञान की उपेक्षा करके जन-मानस को समझा और जातिगत भेदभाव एवं कर्मकांडों का विरोध करके ऐसे विश्व-धर्म की स्थापना की जो सबके लिये सुगम एवं सरल था। उसमें ऊँचे-नीचे के लिये स्थान नहीं था।

कबीर कवि होने के साथ-साथ उच्चकोटि के साधक, सत्य के उपासक एवं ज्ञानी थे। इसलिये उन्होंने सत्य के निरूपण हेतु परमसत्ता का कल्याणकारी उपदेश अपनी वाणियों द्वारा जनता तक पहुँचाया। उनकी वाणी में साहित्य-नवरसों की अपेक्षा आध्यात्मिक रस की प्रधानता है। उनकी वाणियाँ जीवन मुक्त संत के गूढ़ एवं गंभीर अनुभवों का संचित भण्डार हैं। उनसे हमें उनकी विचारधारा और चिंतन-परिणामों का ज्ञान होता है।

संतकाव्य परंपरा में कबीर सर्वाधिक प्रतिभाशाली कवि हैं वे अपने काव्य में एक साथ भक्त, कवि, विचारक एवं समाज सुधारक की भूमिका में दिखाई पड़ते हैं। उनकी वैचारिक और समाज सुधारक की भूमिका ही, उन्हें सामाजिक-सांस्कृतिक क्रांति का सम्वहक बनाती है।

सामाजिक समरसता भारतीय संस्कृति की आत्मा है। धर्म सापेक्षीकरण,

धर्म निरपेक्षीकरण, सर्व धर्म समभाव, मानवतावाद, बहुजनहिताय बहुजनसुखाय आदि अवधारणाएँ सामाजिक समरसता की पोषक व परिणाम रही हैं। विविधता में एकता की भावना 'समरसता को ही प्रतिनिधित्व करती है। संत, साहित्यकार, समाजसेवी आदि सभी व्यवस्था एवं प्रगति हेतु-सामाजिक संगठन की स्थिरता हेतु सामाजिक समरसता की अपेक्षा करते रहे हैं। मानव संगठित हों, रागद्वेष वैरभाव को त्यागकर परस्पर सहयोगी हों, समाज द्वारा निर्धारित कर्तव्यों का पालन करते हुये समृद्धि एवं समानता को प्राप्त करें। ये सभी समरसता की आधारभूमि के उर्वरक तत्व हैं जो कबीर के काव्य में दिखाई देते हैं। उनका काव्य मानव को दैहिक, दैविक, भौतिक तापों-सांसारिक दुख एवं क्लेशों से मुक्ति भाव पर केन्द्रित है। वस्तुतः उनका सृजन मानव कल्याण के लिये ही हुआ है।

कबीर को आधुनिकता का सम्बाहक भी कहा जाता है, क्योंकि उन्होंने अंधविश्वासों के स्थान पर तर्क का सहारा लिया है। उन्होंने धर्म की जनवादी रणनीति बनाकर अपने आंदोलन का सूत्रपात किया। सर्वधर्म समन्वय उनकी विशिष्ट देन है, जिसे गाँधी, टैगोर ने अपनाया। कबीर सहजता के कायल हैं उन्होंने जनता को प्रबोधन के लिये जिस 'सुधककड़ी पंचमेय खिचड़ी' भाषा का प्रयोग किया वस्तुतः वह विकसित होकर आज खड़ीबोली बन गई है। वे एक कालजयी कवि हैं क्योंकि एक कालजयी कवि या रचनाकार युग में जो घटित होता है उसे व्यक्त करने के लिये वह जिस भाषा का विधान करता है उसमें एक समूचे युग को व्यक्त करने की अपूर्व शक्ति होती है और यह रचना प्रक्रिया अपना इतना तीव्र दबाव बना देती है कि फिर कवि अघटित को भी घटित की भाँति अभिव्यक्ति दे देता है। इसे



रचनाकार की क्रांतिदर्शिता भी कह सकते हैं।

भक्तिकालीन धर्म साधना के इतिहास में कबीर ऐसे माहन विचारक एवं संत-कवि हैं जिन्होंने शताब्दियों की सीमा का अतिक्रमण कर दीर्घकाल तक भारतीय जनता का पथ आलोकित किया। भक्ति आंदोलन का इतिहास कबीर के बिना अपूर्ण है। वाणी के बादशाह कबीर भाषा को इस तरह प्रयुक्त करते हैं कि उनकी साखी, सबद और रमैणियाँ सामान्य जन तक पहुँच गईं। भक्ति की स्रोतस्विनी धारा कबीर की वाणी द्वारा भारत के कोने-कोने तक पहुँची।

कबीर ने कथनी और करनी पर विशेष बल दिया। जो लोग मुँह से कुछ कहते हैं और करते कुछ और हैं। कबीर उन्हें धूर्त, पाखण्डी मानते हैं। उनका मानना है कि मनुष्य को तन से वैराग्य न धारण कर मन को शोधित करना चाहिए, बाह्य वेशभूषा के बदलने में आस्था कबीर की बिलकुल न थी।

कबीर ने गृहस्थ होकर भी वैराग्य को और वैराग्य होकर भी गृहस्थ को अपनाया अर्थात् उन्होंने मध्यम मार्ग का अनुसरण किया और दूसरे लोगों के लिये इस पथ को प्रशस्त किया। वे जीवन भर 'आँखिन देखी' को ही सत्य मानते रहे, परंपरा प्रसूत, शास्त्रीय विचारों को उन्होंने अक्षरशः स्वीकृत न करके अपने निजी अनुभवी ज्ञान चक्षुओं से भली-भाँति परखा तब जाकर उन्हें स्वीकृति प्रदान की।

कबीर एकेश्वरवादी थे। उनकी दृष्टि में राम, रहीम, एक हैं और कोई अन्य नहीं। ईश्वर एक ही है बस नाम अलग-अलग है। यही उनकी सद्भावना थी कि उन्होंने समस्त धर्मों एवं संप्रदायों के सारतत्वों को ही अपनाया। उनमें निहित बुराइयों और कुरीतियों को दूर करने का प्रयास भी किया। उन्होंने पंडितों, मठाधीशों

और धर्म के ठेकेदारों जिन्हें अपने और अपने ज्ञान पर पर्याप्त गर्व था, साधारण जनता उनके वाग्जाल से आतंकित थी। ऐसे लोगों के आतंक से कबीर न मुक्ति दिलाई। समाज के प्रति कबीर की जागरूकता और अन्याय के प्रति तीव्र विद्रोही भावना बड़ी प्रखर थी। उन्होंने परंपरागत संकीर्ण वर्ण व्यवस्था, अस्पृश्यता, कर्मकांड, मिथ्याचारों एवं सांप्रदायिक विद्वेष की समाप्ति के लिये वैज्ञानिक और आध्यात्मिक तर्कों का आधार ग्रहण किया। सांप्रदायिक कट्टरता और सामाजिक असमानता से लोग आज भी पीड़ित हैं, अतः कबीर समसामयिक दृष्टि से जितने प्रासंगिक हैं उतने आज भी हैं। इसलिये उन्हें भगवान बुद्ध के बाद उत्तर भारत के धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में नीवन चेतना का स्वर फूंकने वालों में तथा आद्यशंकराचार्य के बाद सर्वप्रथम, सर्वश्रेष्ठ महापुरुषों में भी परिगणित किया जाता है।

आज का समाज वस्तुतः अत्यंत आधुनिक है, उसमें सुविधा-साधनों का बाहुल्य है फिर भी मनुष्य दुश्चिंता, अवसाद और आतंक से ग्रस्त है। चारों ओर क्रूरता, छल-प्रपंच, सत्ता की विश्वासघाती आकांक्षाओं, विनाशकारी अस्त्र-शस्त्रों से लैस घिरा मनुष्य आत्मविपन्न हो गया है। निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिये जाति, धर्म, नस्ल और वर्ग के नाम पर कठपुतली की भांति उसका उपयोग किया जाना उसकी नियति एवं विडम्बना बन गई है। अतीत से वंचित और भविष्य के नाम पर आंशकित आम आदमी आज जितना अप्रासंगिक हो गया है उतना पहले नहीं था। निरंतर भौतिक एवं पूंजीवादी व्यवस्था के साथ-साथ यांत्रिक और तकनीकी शक्तियों का विकास होता जा रहा है जिससे स्वयं हम भी यांत्रिक और जड़वत् होते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप हमारी संवेदनायें और विचार मरते जा रहे हैं आज का आधुनिक या कहें कि

अत्याधुनिक मानव स्वयं को अकेला महसूस करने लगा है। भीड़ तो निरंतर प्रगति पथ पर है परन्तु समुदाय नहीं बन पा रहा है। प्रत्येक मानव मोहन राकेश के - आधे-अधूरे' की तरह अपूर्ण एवं अधूरापन लिये हुये हैं। आज हम 'संशय की रात' और 'अंधेरे में' भटक रहे हैं, हमें अपने संशय और अंधेरे को दूर भगाने के लिये प्रकाश की आवश्यकता है। समाज में अमानवीयता आच्छादित है, मातृत्व एवं भ्रातृत्व प्रायः समाप्त हो चला है। सामाजिक एवं पारिवारिक संबंध विखंडित हो रहे हैं। मनुष्य कुंठा, संत्रास, अविश्वास, संदेह एवं अजनबीपन की स्थिति में है। इससे मुक्ति पाने हेतु हास्य संस्थाओं का निर्माण दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। परन्तु फिर भी मनुष्य स्वयं को परितोष नहीं दिला पा रहा। संचार माध्यमों द्वारा जो कुछ हमें परोसा जा रहा है, उससे हमारी मौलिक जीवन शैली तो नष्ट हो ही रही है साथ ही अवांछित वस्तुओं के संग्रह की लालसा आम हो गई है। जिसने असंतोष ने जन्म ले लिया है। व्यक्ति स्वयं को समाज से काटकर अपनी पृथक् 'आइडेंटिटी' बनाना चाहता है। इसी कारण वह इतना एकाकीपन एवं अजनबीपन महसूस करता है कि उससे बचना चाहता है परन्तु वह इतना उदासीन है कि कुछ कर भी नहीं पाता क्योंकि उसके पीछे उसकी स्वार्थलोलुपता और अस्मिता का गहरा प्रभाव है। इसीलिये दिन-प्रतिदिन नई-नई समस्याएँ उत्पन्न हो रहीं हैं। ऐसे में हमें संत एवं भक्त कवि याद आते हैं जिनकी रचनाओं में हमें जीवन की वास्तविकता, पारिवारिक संवेदना, मूल्यों और आदर्शों की स्थापना एवं जीवन-जगत की वे अनेक बातें जो रोजमर्रा के जीवन में पाई जाती हैं। अब हमें फिर कबीर की आवश्यकता है जो हमें जीवन का राग सुनाते हैं। आज पाँच छः सौ वर्षों के बाद इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में उनके संदेशों की प्रासंगिकता

बनी हुई है। आज भी जातीय आग्रह, सांप्रदायिकता, वर्ग वैषम्य कम नहीं हुये हैं।

कबीर की प्रासंगिकता व्यापक एवं बहु आयामी है। यह समसामयिक सार्थकता तक ही सीमित होने वाली नहीं है। कबीर त्रिकालदर्शी कवि एवं संत हैं वे जितना वर्तमान में जीते हैं उससे ज्यादा भविष्य में जीते हैं। इस संदर्भ में कबीर की प्रासंगिकता का प्रश्न बना ही रहेगा, लेकिन उनकी प्रासंगिकता प्रत्येक युग एवं समाज में निरंतर बनी रहेगी। कबीर अपनी वाणियों से भावी पीढ़ी को आलोकित करते रहेंगे। वस्तुतः उनकी वाणियाँ असहाय, निरुपाय, पीड़ित, व्यथित एवं व्यग्र तथा संत्रास, कुंठा, अजनबीपन, एकाकीपन आदि से मुक्त होने के लिये सदैव सहायक बनी रहेंगीं तभी मनुष्य को आत्मशांत्वना और चिरानंद की अव्यक्त अनुभूति प्राप्त होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

## संदर्भ ग्रंथ सूची:

## (क) हिन्दी ग्रंथ

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1971
2. संपादक डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, ना० प्र० सं० काशी, संवत् 2041 वि०, पंद्रहवाँ संस्करण।
3. संपादक-अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कबीर बचनावली, ना० प्र० सं० काशी, 11वाँ संस्करण, संवत् 2015 वि०
4. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य की परख, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, संवत् 2011 वि०
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 34 वाँ संस्करण सं० 2056 वि०
6. अनु० परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, सं० 2007 वि०
7. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य
8. डॉ० धर्मवीर, कबीर के आलोचक, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1998
9. डॉ० राम कुमार वर्मा, संत कबीर, साहित्य भवन, प्रा० लि० इलाहाबाद, चतुर्थ आवृत्ति, 1957 ई०
10. डॉ० गोविंद त्रिगुणायत, कबीर की विचारधारा, साहित्य निकेतन, कानपुर, प्रथम

- संस्करण, सं० 2009 वि०
11. भाई लहनासिंह, कबीर कसौटी
  12. डॉ० सरनाम सिंह शर्मा, कबीर व्यक्तित्व, व्यक्तित्व एवं मिहान्त, भारतीय शोध संस्थान, गुलाबपुरा राजस्थान, 1969
  13. संपादक डॉ० रामकिशोर शर्मा, कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2002
  14. डॉ० भोलानाथ तिवारी, कबीर और उनका काव्य
  15. डॉ० गोविंद त्रिगुणायत, हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, शोध प्रबंध, आगरा विश्वविद्यालय, 1961
  16. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य चिंतन, स्मृति प्रकाशन, 61 महाजनी टोला, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1970.
  17. संपादक-हरदास शास्त्री, कबीर बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन, महावीर प्रसाद समिति मु० पो० हरक बाराबंकी
  18. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परंपरा, भारती लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 2021 वि०
  19. संपादक विजयेन्द्र स्नातक, कबीर, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा० लि० 2/38 अंसारी मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली, 7वीं आवृत्ति, 1999
  20. संपादक डॉ० जयदेव सिंह व डॉ० वासुदेव सिंह, कबीर वाङ्मय, खण्ड तीन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, तृतीय संस्करण 2000ई०
  21. कबीर साहेब का बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति

22. पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव, कबीर साहित्य का अध्ययन, साहित्य रत्नमाला कार्यालय, बनारस
23. संपादक आचार्य महंत गंगाशरण शास्त्री, महावीरजी, कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र, कबीर चौरा मठ, वाराणसी
24. डॉ० एल० बी० राम अनंत, कबीर ग्रंथावली, अखिलेश प्रकाशन, नई दिल्ली, नवीन संस्करण, 1999
25. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1969
26. डॉ० बाबूराम सक्सेना, दक्खिनी हिन्दी, हिन्दुस्तानी एंक्लोपी, इलाहाबाद, 1952
27. संपादक आनन्द प्रकाश दीक्षित, कबीरदास: चिंतन और सर्जन, मनीषी प्रकाशन, मेरठ, 1981
28. आचार्य हजारी द्विवेदी, साहित्य सहचर, नैवेद्य निकेतन, वाराणसी, 1965
29. प्रेमचन्द, कुछविचार, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1982
30. रमेश चंद्र शाह, छायावाद की प्रासंगिकता
31. कबीर संतबानी संग्रह भाग-2, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, 1955
32. डॉ० मैनेजन पाण्डेय, आलोचना की सामाजिकता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2005
33. एस० आर० शर्मा, भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास
34. संपादक नामवर सिंह, चिंतामणि भाग 3 राजकमल प्रकाशन प्रा० लि० 8, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 1983



35. डॉ० गोविंदलाल छावड़ा, क्रांतिकारी कबीर, गणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1971
36. संपादक पारसनाथ तिवारी, कबीर ग्रंथावली
37. संतबानी संग्रह (कबीर) भाग-1
38. संपादक आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, संतकाव्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीय संस्करण, संवत् 2007
39. कबीर बीजक
40. संत सुधारक, खण्ड-1
41. डॉ० मोती सिंह, निर्गुण साहित्य, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ना० प्र० सभा, वाराणसी, सं० 2019 वि०
42. संत सुधारक, रैदास, खण्ड-1
43. संपादक डॉ० विनय मोहन शर्मा, हिन्दी को भारती संतों की देन, शोध प्रबंध, नागपुर विश्वविद्यालय, 1957
44. कबीर ज्ञान गूदड़ी
45. मेरे सपनों का भारत (गाँधी जी), सं० आर० कें० प्रभु, न० प्र०
46. बापू के आशीर्वाद, रामनाथ सुमन, गाँधी जी सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
47. दिल्ली डायरी-1, गाँधी जी, रामजी भाई पटेल, अहमदाबाद
48. बापू के पत्र बजाज परिवार के नाम, गाँधी जी सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
49. स्त्रियों की समस्याएँ, गाँधी जी सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

50. विद्यार्थियों से, गाँधी जी, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
51. सर्वोदय, गाँधी जी, अमृतलाल नागावती, १०० प्र०
52. प्रार्थना प्रवचन, भाग प्रथम, गाँधी जी सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
53. बिप गाँधी इन सीलोन, गाँधी सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
54. डॉ० राजजीलाल सहायक, महात्मा कबीर एवं महात्मा गाँधी के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन
55. प्रेमचन्द, साहित्य का उद्देश्य, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद 1954
56. डॉ० विश्वम्भरदयाल गुप्ता, सामाजिक पुनर्निर्माण का समाजशास्त्र और साहित्य, सीता प्रकाशन, मोती बाजार, हाथरस, प्रथम संस्करण, 1984
57. रांगेय राघव, काव्य, यथार्थ और प्रगति, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, सं० 2012 वि०
58. डॉ० मुंशीराम शर्मा, साहित्यशास्त्र, श्री भारत भारती प्रकाशन प्रा० लि०, दिल्ली, 1963
59. प्रेमचन्द, कुछ विचार, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1952
60. कोन्सतान्तिन के दिन: लेखन कला और रचना कौशल, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1977
61. अलेक्सेई तोल्सतोय: लेखन कला और रचनाकौशल
62. गुलाबराय, काव्य के रूप, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1954
63. मैक्सिम गोर्की, लेखनकला और रचना कौशल
64. महादेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962

65. डॉ० नजीर मुहम्मद, कबीर के काव्य रूप, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, 1971
66. प्रोफेसर अब्दुल अलीम, नजीर अकबरावादी और उनकी विचार धारा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1992
67. भगीरथ मिश्र, कला, साहित्य और समीक्षा, भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1963
68. संपादक डॉ० नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 1997
69. गुलाबराय, अध्ययन और आस्वाद, आत्माराम पण्ड संम, दिल्ली, 1957
70. सरदार अली जाफरी, कबीर ज्ञानी, हिन्दुस्तानी बुक ट्रस्ट, खेतान भवन, जे० टाटा० रोड, बम्बई नं० 1, 1965
71. प्रोफेसर रमेश शर्मा, आगम और कबीर, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, 1983
72. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य की परख, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सं० 2011 वि०
73. अमृतराय, आधुनिक भावबोध की संज्ञा, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1987
74. धनंजय वर्मा, आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय, विद्या प्रकाशन मंदिर, नई दिल्ली, 1984
75. रवीन्द्र कुमार सेठ, तिरुवल्लुवर एवं कबीर का तुलनात्मक अध्ययन, नेशनल पीब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1996
76. विष्णुचंद शर्मा, कबीर की डायरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996
77. संपादक डॉ० आनंद प्रकाश दीक्षित, कबीरदास: चिंतन और सर्जन, मनीषी

प्रकाशन मेरठ

78. रवीन्द्र कुमार सिंह, संतकाव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1994

(ख) अँग्रेजी ग्रंथ:

1. Karl marks, selected works, Vol. I

2. Maxim Gorky, on Socialist Realism in Socialist Realism in Literature and art.

progress Publisher Moscow. 1971

3. C. Caudwell Illusion and Reality, People Publishing House Ltd. Bombay. 1956

**कोश:**

मानक हिन्दी कोश: हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग प्रथम संस्करण 1985

सं० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, महेन्द्र: कबीर कोश, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973

डॉ० वासुदेवसिंह, कबीर काव्य कोश, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1987

**पत्र-पत्रिकाएँ:**

अतएव 1994 (मासिक)

मधुमती 1995 (मासिक)

कादम्बिनी 1974

सारिका 1978 (मासिक)

हिन्दुस्तानी 1932 (त्रैमासिक)

वाङ्मय 2005 (त्रैमासिक)

साप्ताहिक हिन्दुस्तान 1953

हिन्दी अनुशीलन 1999 (संयुक्तांक)